

# हीरा-प्रवचन पीयूष

## भाग-1



प्रवचनकार  
आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संस्थक : अ.धा. श्री जैवरत्न हितेशी शावक संघ)

# हीरा-प्रवचन-पीयूष

भाग-1

प्रवचनकार

आचार्यप्रदर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.



-::: प्रकाशक :::-

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

( संरक्षक : अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ )

**पुस्तकः**  
**हीरा-प्रवचन-पीयूष (भाग-1)**

**प्रवचनकारः**  
**आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.**

अन्य प्राप्ति स्थल :

**सम्पादकः**

डॉ. धर्मचन्द्र जैन

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ  
घोड़ों का चौक, जोधपुर-342001  
(राजस्थान)  
फोन: 0291-2624891

**आशुलेखक सम्पादन :**  
**नौरतन मेहता, जोधपुर**

**प्रकाशकः**

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल  
दूकान नं. 182 के ऊपर,  
बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)  
फोन : 0141-2575997, 2571163

फैक्टरी : 0141-2570753

Email : sgpmandal@yahoo.in

**Shri Navratan ji Bhansali**  
C/o. Mahesh Electricals,  
14/5, B.V.K. Ayangar Road,  
**BANGALURU-560053**  
(Karnataka)  
Ph. : 080-22265957  
Mob. : 09844158943

© सर्वाधिकार सुरक्षित

पंचम संस्करण : 2014

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

**Shri B. Budhmal ji Bohra**  
Raj Gharana,  
29, Ayallur Muthia Mudali  
Street, Kondittop,  
Sowcarpet, **CHENNAI-600 079**  
(Tamilnadu)  
Mob. : 09840069916

**मूल्यः**

**30-00 (तीस रुपये मात्र)**

लेजर टाइपसैटिंग :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल  
आवरण सज्जा : अनिल कुमार जैन

**मुद्रकः**

दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर  
फोन : 0141-2562929

श्रीमती विजया नंदिनी जी मल्हारा  
“रत्न सागर” बिल्डिंग,  
कलेक्टर बंगला रोड, चर्च के सामने,  
जलगाँव - 425 001 (महा.)  
फोन: 0257-2223223

श्री दिनेश जी जैन  
1296, कटरा धुलिया, चौंदनी चौक,  
**दिल्ली-110006**  
फोन: 011-23919370  
मो. 09953723403

## प्रकाशकीय

आगमज्ञ, प्रवचन-प्रभाकर, आचारनिष्ठ, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक आचार्यप्रवर 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. रत्नवंश के अष्टम पट्टधर हैं। आपकी निर्व्यसनता, रात्रि-भोजन-त्याग, सामायिक, स्वाध्याय और संयम हेतु प्रबल प्रेरणा रहती है। निर्व्यसनता को आप सम्यक् आचरण का प्रथम सौपान मानते हैं। रात्रि-भोजन-त्याग को आप जैनत्व की पहचान, स्वास्थ्य के रक्षण, संयम और अहिंसा की पालना के लिए आवश्यक मानते हैं। समर्भाव की प्राप्ति हेतु सामायिक को, ज्ञानार्जन हेतु स्वाध्याय को, आस्रव-निरोध हेतु संयम को तथा कर्म-निर्जरा हेतु तप को आधार रूप में प्रतिपादित करते हैं। आपकी प्रेरणा से सैकड़ों बारहन्ती एवं सैकड़ों ही ब्रह्मचर्यव्रती बने हैं और बन रहे हैं। निर्व्यसनता को जैनों और अजैनों में प्रसारित किया जा रहा है।

आचार्य श्री की प्रवचन शैली में ओजस्विता, स्पष्टता, निर्भीकता, हृदयस्पर्शिता आदि अनेक गुण हैं। आपके प्रवचन शास्त्रीय आधार के साथ जीवन-निर्माण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा “जिनवाणी” मासिक पत्रिका का प्रकाशन एवं वीतराग ध्यान साधना केन्द्र, जैन विद्वत् परिषद् संगोष्ठी की विभिन्न गतिविधियों के संचालन के अतिरिक्त सत्साहित्य के प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया जाता है। उसी शृङ्खला में आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के तीस प्रवचनों का प्रकाशन “हीरा-प्रवचन-पीयूष के भाग-1” पुस्तक के रूप में प्रकाशन किया गया है। आचार्यप्रवर के इन प्रवचनों में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आचरण, संयम, दान, शील, तप, भावना, क्षमा, अहिंसा, रात्रि-भोजन-त्याग, संस्कार, विनय, आत्मानुशासन आदि

अनेक तत्त्वों पर प्रकाश मिलता है। ये प्रवचन मानव को सत्संस्कारी और अध्यात्ममुखी बनने की प्रेरणा करते हैं।

पुस्तक के प्रवचनों का आशुलेखन संघ कार्यालय प्रभारी श्री नौरतन जी मेहता, जोधपुर ने एवं सम्पादन में डॉ. धर्मचन्द जी जैन का सहज सहयोग रहा है। इस संस्करण में कम्प्यूटर कम्पोजिंग में मण्डल कार्यालय में कार्यरत श्री प्रह्लाद नारायण जी लखेरा का सहयोग प्राप्त हुआ है, एतदर्थे मण्डल परिवार कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

आशा है यह पंचम संस्करण भी पाठकों का मार्ग-दर्शन करने एवं जीवन को सही दिशा में समुन्नत बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

:: निवेदक ::

कैलाशमल दुगड़

अध्यक्ष

सम्पतराज चौधरी

कार्याध्यक्ष

विनयचन्द डागा

मंत्री

**सम्यज्ञान प्रचारक मण्डल**

## सम्पादकीय

जीवन को सम्यक् मोड़ देने के लिए सन्तों का एक वाक्य भी पर्याप्त होता है। इसीलिए सत्साहित्य का स्वाध्याय किया जाता है। हमारा सांसारिक जीवन मोह, ममता, तनाव, द्वन्द्व, ईर्ष्या, द्वेष आदि से आच्छन्न है। इसे सम्यक् दिशा मिल जाय तो इन दुःखों से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है। इनमें थोड़ी कमी होने पर भी हमें शान्ति का अनुभव होता है। इसमें चारित्रनिष्ठ सन्तों की वाणी सहायक बनती है।

रत्नसंघ के अष्टम पट्ठधर जैनाचार्य 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के 30 प्रवचनों के संकलन के रूप में यह पुस्तक 'हीरा प्रवचन-पीयूष' का प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है। आपके ओजस्वी एवं मार्ग-दर्शक प्रवचनों में असंस्कारित और असंयमी-जीवन के प्रति पीड़ा प्रकट हुई है तथा निर्व्यसनता, सामायिक, स्वाध्याय, संयम, रात्रि-भोजन-त्याग और सत्संस्कारों के रक्षण की प्रेरणा की गई है। आचार्यप्रवर का इस बात पर बल है कि हमें शरीर, सम्पत्ति एवं सत्ता से अधिक मूल्यवान आत्मा को समझकर उसके सम्यक् पोषण के लिए समुचित उपाय करना चाहिए। जिन-वचनों का जीव पर वास्तविक प्रभाव हो जाय तो जीवन को सच्ची राह मिल जाय। आचार्यप्रवर के इन प्रवचनों में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आचरण, संयम, दान, शील, तप, भावना, क्षमा, अहिंसा, रात्रि-भोजन-त्याग, संस्कार, विनय, आत्मानुशासन आदि अनेक तत्त्वों पर प्रकाश मिलता है। आचार्यप्रवर द्वारा अपने प्रवचनों में स्पष्टता एवं निर्भकिता के साथ हृदय को प्रेरित किया जाता है। प्रवचनों का आनन्द जितना श्रवण में आता है, उतना लिपिबद्ध होने पर नहीं, क्योंकि बहुत-सी बातें प्रवचन में अकथित भी कथित जैसी प्रतीत होती है, लिपिबद्ध होने पर इस ध्वनि का अनुभव विरले ही पाठक कर पाते हैं।

प्रवचनों का यह संकलन जिनवाणी में प्रकाशित प्रवचनों में से किया गया है। आगे भी शृङ्खला जारी रहेगी।

आशा है पाठकों के चित्त को अध्यात्ममुखी बनाने के साथ यह पुस्तक उन्हें शान्ति, समता, सहिष्णुता और संयम के पथ पर बढ़ने में सहायक सिद्ध होगी।

—डॉ. धर्मचन्द्र जैन

## प्रवचनानुक्रमणिका

**क्र.सं.**

**प , व च न**

(1) प्रकाशकीय	iii
(2) सम्पादकीय	v
(3) प्रवचनानुक्रमणिका	vii
1. जीव पर हो जिनवाणी का प्रभाव	1-6
2. आत्मा का मूल्य पहचानें	7-14
3. बोध पाएँ और आचरें	15-20
4. सम्यगदर्शन	21-30
5. तप : आत्मशोधन का साधन	31-41
6. तप के प्रति श्रद्धा और प्रेम	42-50
7. जीवन-निर्माण के तीन सूत्र	51-58
8. शान्ति का मन्त्र : संयम	59-63
9. दान	64-81
10. हाथ को दीधो, ऐलो नहीं जावे	82-90
11. शील से सुवासित हो नारी	91-99
12. दान-शील-तप-भावना	100-104
13. चातुर्मास का मंगल सन्देश	105-120
14. मुक्ति पथ : क्षमा और अहिंसा	121-133
15. श्रद्धा बिन सब सून	134-144
16. ज्ञान-प्राप्ति में बाधक कारण	145-152

17.	ज्ञान-प्राप्ति के लिए हास्य का त्याग क्यों ?	153-163
18.	अपने को सुधारिए, राष्ट्र सुधर जाएगा	164-168
19.	क्यों करें रात्रि-भोजन का त्याग	169-180
20.	संस्कारित नारी से समाज को दिशा	181-188
21.	स्वतन्त्रता को स्व-तन्त्रता में बदलें	189-198
22.	शान्ति के विविध रूप	199-209
23.	उत्तराध्ययन सूत्र : महावीर की अन्तिम सीख	210-217
24.	विणयं पाउकरिस्सामि	218-227
25.	जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय	228-238
26.	जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय (2)	239-246
27.	जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय (3)	247-257
28.	सुख का द्वार : अनुशासन	258-270
29.	अहंकार को त्यागें, आत्मानुशासित बनें	271-279
30.	परीषह से साधक का समत्व परीक्षण	280-288



## जीव पर हो जिनवाणी का प्रभाव

(जलगाँव चातुर्मास में 10 सितम्बर, 2000 को श्री योगेश जी (यशवन्त मुनि जी) की दीक्षा-तिथि तय होने के समय दिया गया यह प्रवचन जीव एवं जड़ के पारस्परिक प्रभाव की विवेचना करने के साथ जीव पर जिनवाणी के प्रभाव की प्रेरणा करता है।)

तीर्थकर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी “परस्परोपग्रहो जीवानाम्” का सन्देश देती है। हर जीव दूसरे जीव का सहयोगी है। एक जीव दूसरे जीव का सहकार करने वाला है। एक-दूसरा, एक-दूसरे के काम आने वाला है और एक-दूसरा, एक-दूसरे पर प्रभाव डालता है। जड़ भी जड़ पर प्रभाव डालता है। पानी के साथ जैसा रंग मिलाया जाय, पानी उसी रंग में परिवर्तित हो जाता है। जड़ के द्वारा जड़ को ग्रहण करने का उदाहरण लीजिये। रेडियो ध्वनि को पकड़ता है। कैमरा आकृति पकड़ता है। काँच सामने जैसा पदार्थ आता है उसका वैसा प्रतिबिम्ब प्रदर्शित करता है। मतलब क्या ? जड़ भी जड़ के साथ मिलकर परिवर्तन करता है।

एक भाई ने प्रश्न किया-महाराज ! अँगुली में बींटी पहनने से चौविहार कैसे हो जाता है ? अँगूठी में ऐसा क्या चमत्कार है ? मैंने कहा, भाई ! प्रभाव अँगूठी में नहीं, प्रभाव तो त्याग की भावना मैं है। शास्त्रकार कहते हैं:- ‘गंठिसहियं मुष्टिसहियं’ की पाटी बोलकर भी प्रत्याख्यान किए

जा सकते हैं। ‘गंठिसहियं’ क्या ? जब तक कपड़े में लगी गाँठ न खोलूँ तब तक प्रत्याख्यान। ‘मुद्धिसहियं’ क्या ? मुट्ठी बन्द है तब तक प्रत्याख्यान। ये प्रत्याख्यान, भावना पर आधारित हैं। चुम्बक आपने देखा होगा ? वह लोहे को खींचता है। उसे कैसे पता चलता है कि यह लोहा ही है ? नागौर की, बचपन की घटना याद आ रही है। एक भैंस ने चारा चरते-चरते कील को चारे के साथ खा लिया। कील पेट में पहुँची तो पीड़ा होनी स्वाभाविक थी। भैंस को पीड़ा हुई। वह कराहने लगी, लोट-पोट होने लगी। भैंस को तड़फते देख किसी अनुभवी ने सोचा, हो सकता है इसके पेट में कील या लोह का कण पहुँच गया है। उसने चुम्बक लिया एवं पेट के इधर-उधर चुम्बक को घुमाया। चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचता है। भैंस के पेट में रही कील चुम्बक के सहारे-सहारे मलद्वार से बाहर निकल गई। भैंस को आराम हो गया।

चुम्बक जड़ है, लोहा जड़ है। जड़ जड़ को खींचता है, आकर्षित करता है, तो ज्ञात होता है कि जड़ का जड़ पर प्रभाव पड़ता है।

जड़ का चेतन पर भी प्रभाव पड़ता है। ज्ञानियों ने और अनुभवियों ने कहा है- “जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।” अन्न जड़ है। आप जो आहार ग्रहण करते हैं वह निर्जीव है, अचेतन पदार्थ है। यदि आपके आहार में तामसी पदार्थ है तो वह वैसा असर डालेगा। तामसी आहार करने वाला सात्त्विक व्यक्ति भी तामसी प्रवृत्ति वाला बन जाता है।

राबड़ी-छाछ खाने वाले को प्रायः जल्दी गुस्सा नहीं आता। उसके सामने निमित्त आते हैं, प्रसंग बनते हैं, घटनाएँ घटती हैं, फिर भी वह मन को शान्त रख लेता है। तामसी आहार करने वाला चाहे बच्चा भी है, आहार के प्रभाव से उसकी वृत्ति तामसी बन जाती है। बच्चे कभी-कभी आक्रोश और आवेग में सामने वाले पर प्रहार कर जाते हैं। बच्चे ने ऐसा क्यों किया ? ऐसा करने में उसका तामसी आहार भी कारण

हो सकता है। क्रोध-आक्रोश-आवेग आता है तो तामसी आहार रोग बढ़ाने वाला भी होता है। शारीरिक विकृतियाँ बढ़ाने में तामसी आहार के निमित्त को नकारा नहीं जा सकता। शरीर में कई तरह के रोग तामसी आहार से पनप सकते हैं।

चेतन का भी जड़ पर असर होता है। आपने-हमने सुना है कि तीर्थकर भगवान जहाँ विराजते हैं वहाँ वीतराण वाणी का आघोष होता है। वहाँ के वायुमण्डल में अचेतन पदार्थ भी शान्त हो जाते हैं। काँटे तक उलटे हो जाते हैं। प्राकृतिक-प्रकोप और विप्लव नहीं होते। उनका असर चेतन पर भी होता है। उनके सान्निध्य में जन्मजात का वैर रखने वाले शेर-बकरी तक साथ बैठ सकते हैं। आपने सुना होगा, सन्तों की साधना-स्थली पर शेर भी श्वान की तरह पूँछ हिलाता बैठा रहता है। क्रूर से क्रूर और हिंसक जानवर का आक्रोश भी वहाँ समाप्त हो जाता है। यह प्रभाव किसका ?

यह सत्संग का प्रभाव है। इसी सत्संग ने अनार्यों को, अधर्मियों को, पाप-मय जीवन बिताने वालों को, धर्मी बना दिया। हत्याएँ करने वाले दयालु बन गये। चण्डकौशिक जैसा विषधर जो आकाश में उड़ते हुए पक्षी को समाप्त कर सकता था, भगवान महावीर का संयोग पाकर शान्त बन गया। कल तक जीवों को डसने वाला सर्प अपना मुँह बाँबी में डालकर लोगों के पत्थरों की मार खाते हुए भी समत्व में लीन हो गया। चीटियाँ शरीर को छलनी-छलनी कर रही हैं फिर भी शान्त भाव से सहन कर रहा है। वह क्षमा का सागर बन गया। यह भगवान के सान्निध्य का प्रभाव था। चेतन का सान्निध्य लाभ का कारण है।

आज भी कुछ ऐसे लोग हैं जो अपनी मंगल-भावना से दूर बैठे रोगी का रोग दूर कर देते हैं, आवेश में आये हुए व्यक्ति को शान्त बना देते हैं। सौभाग्यशाली हैं आप, जो निरन्तर जिनवाणी को श्रवण कर रहे हैं

और जिनवाणी के अनुसार चलने वाले सन्तों का सान्निध्य भी पा रहे हैं। क्षण-पल का सान्निध्य भी विभाव से स्वभाव में ला सकता है।

पानी में केसरिया रंग मिलाकर हिलाने की जरूरत है। वह केसरिया हो जायेगा। केसरिया पानी की बाल्टी में चादर डालने पर चादर को केसरिया बनने में कितनी देर लगेगी? एक-दूसरे पर गाली का भी असर पड़ता है। एक आदमी चार महीने तक गुणगान करे, शायद प्रेम बढ़े या नहीं, मैं कह नहीं सकता, पर एक आदमी को दो मिनट के लिए गाली दें तो क्या होगा? यह आप जानते हैं। जिनवाणी के शब्द अच्छे या गाली? जिनवाणी के शब्द बहुत प्रभावी हैं, आगे बढ़ाने वाले हैं, कर्मों की निर्जरा में सहायक हो सकते हैं, किन्तु वे शब्द गाली जितने जल्दी नहीं लगते। जैसे अमृत की बूँद गटर में जाकर खराब हो जाती है, वैसे ही यदि आपका अन्तर्मन क्रोध-कषाय रूपी कीचड़ से सना हुआ है तो जिनवाणी जैसे आदेय-अनमोल बोल व्यर्थ चले जाते हैं। जरूरत है अन्तर्मन को निर्मल-पावन बनाने की, सन्तों का सान्निध्य इसमें बहुत सहायक होता है।

आप सुज्ञ श्रोता हैं और आप जानते भी हैं कि आकाश से टपकने वाली बूँद जहाँ गिरती है, जिसमें गिरती है वैसे स्वभाव वाली बन जाती है। वही बूँद साँप के मुँह में जाकर जहर बन सकती है, गन्ने में गिरी तो मिठास पैदा कर सकती है। गुलाब के फूल में गिरकर सुगन्धित हो जायेगी, तो मिट्टी में गिरकर कीचड़ के रूप में परिवर्तित होगी। बूँद जैसा सान्निध्य प्राप्त करेगी, वैसा बनना उसका स्वभाव है। ऐसे ही गाली खराब है। जिस गाली को आप ठीक नहीं समझते, बुरी मानते हैं, कभी-कभी वह भी अच्छी लगती है। मैंने पुराने जमाने में ऐसे लोगों को देखा है जो चाहते हैं कि सालियाँ उन्हें गीत सुनायें, भले ही गीत में गालियाँ हों। गाली सुनकर क्रोध या आवेश आना चाहिये, पर ससुराल में साली

के मुँह से गालियाँ सुनकर भी प्रसन्नता के भाव जगते हैं। मतलब क्या ? न गाली खराब है और न ही अच्छी ?

वीतराग वाणी अच्छी है या बुरी ? आपका मन सरल है, विनीत है, संसार के दुःखों से घबराया हुआ है तो जिनेन्द्रों का एक वचन ही बहुत है। राग-द्वेष खारे लग रहे हैं, उस स्थिति में एक वचन भी पर्याप्त हो सकता है। शादी करने के लिए जाने वाला व्यक्ति उपादान शुद्ध हो तो मात्र पगड़ी उत्तरने के साथ वैराग्य भाव ला सकता है। एक व्यक्ति दूल्हा बना हुआ था। घोड़े पर बैठा था। सामूहिक तिलक कर नाक खींचना चाह रही थी। दूल्हा सिर को पीछे करने लगा और पगड़ी गिर गई। पगड़ी का गिरना क्या हुआ ? उस छोटे से निमित्त से जग गया। उसे वैराग्य आ गया। एक व्यक्ति ऐसा भी है जो रोज धर्म सुनते हुए भी मांगलिक सुनी और चल देता है। मुझे कहना है ताकत किसी में है तो वह है अपनी अन्तरंगता में। आप कई बार सुन चुके हैं, सुदर्शन श्रेष्ठी के एक वचन से अर्जुन माली जैसा हत्यारा, जो मुद्रागर लेकर सामने खड़ा था, जग गया। जगने वाले के लिए एक वचन पर्याप्त हो सकता है। आप अपने अन्तर्मन को जागृत कीजिये।

जलगाँव में भागवती दीक्षा का प्रसंग उपस्थित होने जा रहा है, यह प्रमोदजन्य बात है। अभी यहाँ से दीक्षित होने जा रहे हैं वे जलगाँव के नहीं हैं। इनको देखकर यहाँ पर किसी में वैराग्य जग जाये तो कहना ही क्या ? संवत्सरी महापर्व पर संघ की विनति ध्यान में रखकर कुछ मुमुक्षु आत्माओं के दीक्षा प्रसंग की बात चली। तब बहिनों का प्रसंग सामने था। उस समय कोई विरक्त भाई जुड़ा नहीं था, पर संयोग से चतुर्विधि संघ के सान्निध्य में होने वाली दीक्षाओं में मात्र साध्वियों का प्रसंग ही नहीं विरक्त भाई भी अपने को संकलिपित कर रहा है। परिवारजनों ने भी धर्म-मार्ग में आगे बढ़ाने के लिए सहयोग और सहमति देने का पुण्यानुबंध किया।

जब तक घर में हैं आपका परिवार के प्रति पाप में सहयोग नहीं हो, ऐसा संभव नहीं है। हिंसा, झूठ आदि पापों में सहयोग चल रहा है। आप पाप छोड़कर धर्म में सहयोगी बनें। सामायिक में, स्वाध्याय में और चारित्र मार्ग में आप सहयोग प्रदान करें। आप इन दीक्षार्थियों के सहयोगी बनने के साथ अपने कदम भी चारित्र-मार्ग में आगे बढ़ायें और व्रत-नियमों की भेट अर्पित करें। आप कम-से-कम इतना संकल्प तो करें ही कि हम धर्मस्थान में आकर एक सामायिक जरूर करेंगे। आपके यहाँ बहुमण्डल सामायिक-स्वाध्याय में सक्रिय है। ऐसे ही भाऊ मण्डल को भी जागरूक होना है। (आचार्यप्रवर की प्रेरणा से जलगाँव भाऊ मण्डल (पुरुष वर्ग) ने सामूहिक सामायिक करना प्रारम्भ कर दिया है।) आप चारित्र मार्ग में कदम बढ़ायें, वैराग्य भाव जगायें। आप कमाने के लिए जैसे दुकान चले जाते हैं, कोई समस्या है तो कोर्ट पहुँच जाते हैं। ऐसे ही साधना के लिए, सामायिक-स्वाध्याय के लिए धर्मस्थान पहुँचें तो संघ की सौरभ के साथ आपके ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उन्नति हो सकेगी। आप सन्तों के सान्निध्य का अवसर पाकर अपनी साधना में आगे बढ़ें, यही मंगल मनीषा है।



## आत्मा का मूल्य पहचानें

(10 मार्च 2001 को नासिक की रविवार पेट स्थानक में फरमाया गया प्रस्तुत प्रवचन, आत्मा के महत्त्व को समझने एवं आत्म-साधना में संलग्न होने की प्रेरणा करता है।)

तीर्थङ्कर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में मुख्य रूप से दो तत्त्व कहे गये हैं। एक है-जीव, दूसरा है-जड़। एक आत्मा, दूसरा शरीर। एक चैतन्य, दूसरा पुद्गल। इन दो तत्त्वों में एक स्थायी है, सदा साथ रहने वाला है। अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख का खजाना है। दूसरा अस्थायी है, चंचल है और धोखेबाज है। अधिक-से-अधिक सेवा-सुश्रूषा और सार-सम्भाल करने पर भी वह साथ देने वाला नहीं है।

मैं आपसे एक पृच्छा करूँ-इन दो तत्त्वों में एक स्थायी है और दूसरा अस्थायी है तो इन दोनों में से किसको अधिक समय देना चाहिये? एक नोकर, मालिक के लिए जी जान लड़ाने वाला है। वह अपना सुख भुलाकर मालिक की इच्छानुसार चलने वाला है। दूसरा नौकर अवसर की बाट जोहता है। ज्यों ही अवसर हाथ लगा, वह माल लेकर भाग जाने वाला है। दोनों नौकरों में आपको कौनसा प्यारा है? एक सुख-दुःख में सहयोगी है, एक अपने ही दुःख की दास्तान कहने वाला है, आपको कौनसा प्रिय है?

आप जैसे बोलते और कहते हैं, शायद वैसा आचरण में नहीं दर्शाते हैं। एक स्वार्थी है, दूसरा परमार्थी है। एक से इज्जत है-प्रतिष्ठा है-सम्मान है। मैं प्रश्न करूँ ? कोई देर से आवे तब भी आगे पधारो सा कहते हो। आगे क्यों ? क्या चमड़ी गौरी है इसलिए ? गले में हार पहना हुआ है इसलिए ? किसी बंगले के मालिक हैं इसलिए ? संघ में अधिकारी हैं इसलिए ? (श्रावकों से कोई जवाब नहीं मिलता है।) जवाब भी मैं ही दूँ। आपके भीतर में यह आत्मदेव विराजमान है इसलिए। यदि आत्मा ही नहीं रहेगी तो किसको क्या कहेंगे ? शरीर में से आत्मा निकल जाय तो घर वाले ही कहेंगे-जल्दी करो, इन्हें घर से निकालो। रात हो जायेगी तो रात भर कौन बैठेगा ? देखिये, अभी कहते हैं पधारो सा और आत्मतत्त्व नहीं रहने पर उन्हें जल्दी निकालो कहने वाले भी हैं।

मतलब, महत्त्व है इस चैतन्य का। आप चैतन्य की कद्र करते हैं। ठीक है, आप चैतन्य की कद्र करें, शरीर की कद्र भी करें, किन्तु मुझे कहना है कि चैतन्य के लिए आप कितना समय दे रहे हैं और इस धोखेबाज शरीर के लिए कितना समय दे रहे हैं ?

एक आत्मा है, एक शरीर है। इन दो तत्त्वों के लिए समय का विभाजन करिए। विभाजन में एक हिस्सा आत्मा के लिए, एक हिस्सा शरीर के लिए। दिन-रात के चौबीस घण्टों में से बारह-बारह घण्टे आते हैं। आत्मा के लिए बारह घण्टे देने के लिए कौन तैयार है ? किनके नाम लिखूँ ?

मैं शरीर के लिए मना नहीं करता। शरीर है, तो उसके लिए समय चाहिये। परिवार है, उसके लिए भी समय चाहिये। बच्चों के लिए भी समय चाहिये। चलो, आप समय का चार भागों में बँटवारा कर लीजिये। समय का चार भागों में बँटवारा करो तो छः घण्टों का समय इस चैतन्य के लिए चाहिए।

यह जीवन अनित्य है, विनाशी है। ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे में कहा गया है कि देवता भी अपनी आयुष्य पूर्ण होने के भय से काँप उठते हैं। उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। देवता चिन्तन करते हैं कि यह दिव्य-ऋद्धि, दिव्य-विमान और विपुल-सामग्री जो मुझे प्राप्त है, वह जाने वाली है, इस चिन्तन मात्र से वे काँप उठते हैं। देवता के जब जोड़ों में दर्द या कांति में कुम्हलावट जैसे संकट आते हैं तो वे समझ जाते हैं कि छः महीनों के भीतर-भीतर मेरा यहाँ से प्रस्थान हो जायेगा। देवताओं के तेरह बोल हैं, जिनको देखकर उन्हें महसूस हो जाता है कि अब उनके प्रस्थान का समय निकट है। जानकारी देवताओं को ही नहीं, मनुष्यों को भी हो सकती है। काले बाल धोले हो जाना किसका सूचक है? आप मसाला या खिजाब लगाकर सफेद बालों को भले ही काला कर लें, पर मानकर चलिये इस तरह का जोड़-तोड़ भी काम में आने वाला नहीं है। आप जरा चिन्तन तो करें साथ क्या लेकर जायेंगे? न मानव कुछ साथ ले जायेगा, न देवता ही। हाँ अवधिज्ञान से देवताओं को यह ज्ञात हो सकता है कि यहाँ से कहाँ जाना है?

आप कभी हॉस्पिटल गए होंगे। वहाँ ऑपरेशन देखने का मौका आए तो चीरफाड़, रक्तस्राव और टाँके लगते देखे जा सकते हैं। मैं दूसरों की क्या कहूँ, मेरे जैसा देख नहीं पाता। कुछ तो ऐसे मिलेंगे, जो ऑपरेशन देखते-देखते बेहोश तक हो जाते हैं। ऑपरेशन की बात छोड़िये। आप नहा-धोकर और अच्छे कपड़े पहनकर जा रहे हों, उस समय आपके कीचड़ के छींटे लग जाए तो आपका मन खराब हो जाएगा।

आपको कीचड़ का एक छींटा तक पसन्द नहीं। माँ की कुक्षि में कैसे रहे? इसका जरा चिन्तन तो करो।

यह तन अशुचि का भण्डार है। आप अब भी अगर साधना नहीं करेंगे तब कब करेंगे। देवता चिन्तन करते हैं, पर उनके लिए कोई उपाय नहीं है। बिना मनुष्य जन्म के न कोई साधना कर पाया है, न कर सकेगा।

देवता विचार करते हैं-हमें यह ऋद्धि-सिद्धि और सुख-साहिबी छोड़कर जाना तो पड़ेगा, पर मनुष्य जन्म पाकर मैं ऐसी करणी करूँ कि मुझे फिर से गर्भ में आना ही न पड़े। मनुष्य जन्म पाकर उसे सार्थक करने का चिन्तन देवता करते हैं, तो क्या हमें चिन्तन नहीं करना चाहिये? मनुष्य जन्म पाकर यदि करणी नहीं की, तो क्या नरक में या तिर्यज्च में साधना होगी?

आप अभी धर्मस्थान में बैठे हैं, वीतराग वाणी श्रवण कर रहे हैं। यदि महाराज नहीं आए हुए होते, तो क्या आप यहाँ मिलते? आप यहाँ नहीं, दुकान पर होते। महाराज आए हुए हैं इसलिए यहाँ हैं। कुछ महाराज को राजी करने आते हैं, कुछ लोक-लाज से आते हैं, तो कुछ यह सोचकर कि हमारे पिताजी संघ में काम कराने वाले थे, सोचकर आते हैं। आज महाराज नए आए हैं, चलो देखें तो सही, कैसे हैं? सोचकर आते हैं। आज महाराज आए हैं, इसलिये यहाँ उपस्थित हैं, पर आप मैं से कितने लोग हैं जो सन्त हों, न हों अपनी साधना के निमित्त नियमित यहाँ आते हैं?

मैं आपसे पूछूँ-आपको भूख लगती है, तो क्या करते हैं? क्या घर में कोई मनुहार करे तब ही आप खाते हैं? पत्नी परोस कर लाए, तब ही भोजन करते हैं। भूख लगने पर कभी कोई घर में हो, न हो आप स्वयं लेकर भोजन करने बैठ जायेंगे। आपको न मनुहार की जरूरत है, न परोसने वाले की। मारवाड़ में एक प्रचलित कहावत है-“भूख राँड भूँड़ी, जाय सँभाले कुँड़ी।” घर में हाथ से ले लेंगे और कदाचित् घर में खाने की वस्तु नहीं भी हो तो होटल पकड़ लेंगे। भूख में मनुहार की जरूरत नहीं। ऐसे ही कभी रोगी हो जाय; तो खुद होकर अस्पताल चले जायेंगे, डॉक्टर को दिखायेंगे। आपको भूख में और रोगनिकन्दन में मनुहार की जरूरत नहीं, पर भव-रोग मिटाने मैं आप क्या करते हैं? इस पर चिन्तन करने की आवश्यकता है। मैं छः, आठ, बारह घण्टे की बात नहीं कहता, किन्तु आत्म-तत्त्व के लिए एक घण्टा निकालने की बात भी कहूँ तो वह भी भगवान के भरोसे है।

आपको मौके की दुकान चाहिये। मौके की दुकान के लिए पगड़ी देनी पड़े, तो भी आप देने को तत्पर रहेंगे, किन्तु घर छोड़कर धर्मस्थान में आकर सामायिक करने की बात कही जाय, तो वह शायद आसानी से गले नहीं उतरती। आचार्य भगवन्त कभी-कभी फरमाया करते थे- सामायिक में चार प्रकार की शुद्धियाँ चाहिये; द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भाव शुद्धि।

जब तक द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से सामायिक शुद्ध नहीं होगी, आपको सामायिक का आनन्द नहीं आयेगा। घर में सामायिक के समय कभी फोन की घण्टी घनघनायेगी, कभी दूधवाला आवाज देगा, कभी बच्चों के रोने की, तो कभी आने-जाने वालों का व्यवधान रहेगा। कई भाई जो घर में सामायिक करते हैं, वे कहते हैं-बाब जी ! स्थानक दूर है, आने-जाने में व्यर्थ समय जाता है। आज आपको मुम्बई दूर नहीं लगती, मिल दूर नहीं लगती, अस्पताल दूर नहीं लगता, लेकिन धर्मस्थान दूर लगता है। कल एक भाई जलगाँव से आया। वह बोला- जलगाँव से नासिक लोकल ट्रेन में चढ़ना बहुत मुश्किल है। बाल-बच्चों के साथ सामान हो तो शायद चढ़ ही नहीं पाएँ। फिर भी जलगाँव से पाचोरा और चालीसगाँव तक के लोग अप-डाउन करते हैं। सैंकड़ों लोग रोज आते-जाते हैं। नौकरी पेशा वाले, काम-धन्धा वाले, स्कूल-कॉलेज वाले सुबह जाते हैं, शाम को लौटते हैं। चालीसगाँव से जलगाँव कितना दूर है ? पर रोज आने-जाने वाले हैं। नासिक से मुम्बई दूर नहीं लगता। सुबह जाकर शाम को आ जाते हैं। मतलब सौ-पचास किलोमीटर आपको दूरी नहीं लगती, लेकिन धर्मस्थान दूर लगता है। आपको धर्मस्थान में आकर सामायिक की रुचि नहीं जगी और न ही सामायिक में अतिचारों का विचार आया। मैं आपसे पूछूँ-आप भोजन करने बैठते हैं, तो क्या कचरे से भरे हाथ नहीं धोते ? बहिन कभी हलुआ बनाए और कढ़ाई में रेत पड़ी है, तो वह पहले रेत साफ करती है या कढ़ाई में सीधा धी डालती

है ? खीचड़ी में एक कंकर आपको बर्दाशत नहीं होता, लेकिन सामायिक में लगने वाले अतिचार कैसे बर्दाशत होते हैं ? अतिचार पर आपका विचार तक नहीं जाता, इसलिए आप एक घण्टे भर के लिए सामायिक के निमित्त घर नहीं छोड़ते ।

हम आचार्य भगवन्त (आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.) के श्रीचरणों में विहार करते हुए जा रहे थे । एक जगह लिखा था-नो स्मोकिंग । वहाँ मिलिट्री का बारूद रखा हुआ था । कोई चिनगारी आग पकड़ सकती है, इसलिए इस क्षेत्र के लगभग एक किलोमीटर की परिधि में आग जलाना, बीड़ी-सिगरेट पीना, अगरबत्ती तक जलाना निषिद्ध था । रोटी बनानी हो, तो भी एक किलोमीटर की सीमा से बाहर । जैसे-सेना में रखे बारूद के लिए चिनगारी कभी भी विस्फोट कर सकती है, उसी प्रकार घर में रहते हुए ममता से बचा नहीं जा सकता । कभी बच्चा रोता है, कभी बच्चों में झगड़ा होता है, कभी कोई आता है, तो कभी कोई जाता है । जो समता धर्मस्थान में रह सकती है, वह घर पर नहीं रह सकती । (श्रोताओं द्वारा गर्दन हिलाकर स्वीकृति) आप गर्दन तो हिला रहे हैं, पर गर्दन हिलाने से काम नहीं चलता । आप शुद्ध सामायिक करना चाहते हैं, तो आपको धर्मस्थान में आने का पुरुषार्थ करना पड़ेगा ।

कल सायं मैं गोदावरी की ओर स्थग्निल के निमित्त गया । लौटते समय मैंने 20-25 माताएँ देखी, जो अपने-अपने बच्चों को स्कूल से लेकर आ रहीं थीं । स्कूल भेजना और लाना किसका काम ? वहाँ तो माता-पिता अपना कर्तव्य समझते हैं, पर किसी बच्चे को सामायिक सिखानी हो, तो उनके मुँह से सहसा निकलता है-हमने मास्टर रखा है उसका फिर क्या काम ? मुझे लगता है व्यावहारिक शिक्षण के लिए माता-पिता हैरान और परेशान नहीं होते, वे अपना कर्तव्य समझकर भाग-दौड़ करते हैं, किन्तु धर्म के संस्कारों के लिए उनमें उपेक्षा पाई जाती है । धर्म के संस्कारों के लिए आपकी अगर इसी तरह उपेक्षा रही तो मानकर

चलिये भावी पीढ़ी सुरक्षित नहीं रह सकेगी। आपको बेटे की चिन्ता है, पोते और पड़पोते की चिन्ता है, माँ-बहन-भाई के लिए और दुकान-मकान के लिए सोचने वाले हैं, पर आपमें से कितने हैं जो यह सोचते हैं कि हमारे जीवन के पचास वर्ष पूरे हो गये, इन पचास वर्षों में हमारे से कितने पाप छूटे हैं? रोज हिंसा हो रही है, रोज झूठ बोले जा रहे हैं, बिना हेरा-फेरी के काम नहीं चलता। पचास-साठ-सत्तर वर्ष के हो गये फिर भी मोह-ममता नहीं छूटी। आप ही बतायें-आपने कौनसा पाप छोड़ दिया? इतनी उम्र हो गई फिर भी कहना कुछ, करना कुछ। याद रखिये-पाप छूटे बिना न किसी की गति सुधरी है, न सुधरने वाली है।

आज कुछ लोग हैं, जो दूसरों के लिए पृच्छा करते हैं कि अमुक सम्यक् दृष्टि है या नहीं? दूसरों को देखने के बजाय आप अपना निरीक्षण करें, अपने विषय में सोचें। अपने आपका चिन्तन करें कि अपनी ममता छूटी है या नहीं। अपने पाप छूटे हैं या नहीं। आपको मैं कहना चाहूँगा कि आपके लिए तो कुण्ड में रत्न है। आपको समुद्र में गोते लगाने की जरूरत नहीं। आप थोड़ी-सी साधना में एक भवतारी बन सकते हैं। भगवान महावीर प्रभु का यह शासन इक्कीस हजार वर्ष बीतने तक चलेगा। आखिरी समय तक एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक, एक श्राविका रहेंगे। भले ही उनकी बीस वर्ष की उम्र रहेगी, उपवास, मासखमण जैसा लगेगा, पर शासन के अन्त तक एकभवतारी होंगे।

मैं कह गया आज साधन बढ़ाये जा रहे हैं। जितने साधन बढ़ रहे हैं, उतनी साधना नहीं बढ़ती। बैठके (आसन) नहीं होंगे तो हजार-पाँच सौ बैठकों के आर्डर देकर मँगवा लेंगे। चातुर्मास नहीं है, तो विनती करके मंजूरी ले आयेंगे। विनती करने वालों में भी कुछ ऐसे हो सकते हैं, जो समझते हैं हम तो महाराज को विनती करके ले आए। अब महाराज जाने, महाराज का काम जाने। मैं साधनों का निषेध नहीं करता, पर साधना की ओर आज जो उपेक्षा देखी जा रही है, वह ठीक नहीं है।

अगर पदाधिकारी लोग धर्मस्थान में पहले आकर बैठे, तो यहाँ भीड़ लग सकती है। साधनाशील अधिकारी विरले हैं। मुझे कहना यही है कि सहज रूप से निवृत्त हुए लोग जिनके ऊपर घर गृहस्थी की जिम्मेवारी नहीं, वे तो धर्मस्थान में आकर साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ें। कई भाई ऐसे भी हैं, जिनके विनयशील पुत्र हैं और वे कहते भी हैं, पिताजी! आपको दुकान पधारने की जरूरत नहीं, आप तो धर्म-ध्यान करें। मारवाड़ी में एक कहावत है- ‘बींदरे मुण्डे लालाँ पड़े तो जानी बेचारा काँड़ करे।’ वह खुद लकड़ी का सहारा लेकर दुकान जाये तो उसका क्या किया जाये? मैं फिर कह रहा हूँ-साधना के लिए साधन चाहिये, धर्मस्थान चाहिये, धार्मिक उपकरण चाहिये, उपदेश भी चाहिये। धर्मस्थान और धर्म-साधनों की उपयोगिता स्वयं हो जाएगी, जब साधक स्वयं साधना के लिए तैयार होंगे।

मैं नासिक वालों का आह्वान करता हूँ-आप साधना के क्षेत्र में अपने चरण आगे बढ़ायें। सन्त हों, न हों अपनी साधना निरन्तर चलनी चाहिये। अगर आपकी साधना निरन्तर चलती रही तो सिद्धि आपसे दूर नहीं।

स्थानकवासी समाज, सामायिक और स्वाध्याय के बल पर टिका हुआ है। सामायिक-स्वाध्याय की उपेक्षा से कितने ही भाई बिखर गये। दूसरे शब्दों में कहूँ तो सामायिक-स्वाध्याय की उपेक्षा से भाई बिगड़ गये, नास्तिकता की ओर बढ़ गये। इस बिगाड़ में एक कारण ‘‘समय नहीं है’’ को भी कहा जा सकता है।

यदि आपका सामायिक-स्वाध्याय और साधना का क्रम बना रहेगा तो वह आपके लिए तो हितावह होगा ही, भावी पीढ़ी के लिए भी आदर्श होगा। जो करेगा वह तिरेगा इसी भावना के साथ.....।

## बोध पाएँ और आचरें

(स्वयं बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध एवं बुद्ध बोधित का विवेचन करने के साथ 22 जुलाई, 1996 को अजमेर चारुमासि में फरमाये इस प्रवचन में बोध-प्राप्त करने एवं उसे आचरण में लाने की प्रेरणा की गई है।)

मनाऊँ मैं तो श्री अरिहन्त महन्त  
तरु अशोक जाँको अवलोकत, शोक समूह नशन्त ।  
सुरकृत बाण वरण के नभ से, अचित सुमन वरसंत ॥

‘यादृशी दृष्टिस्तादृशी सृष्टिः’ हम जैसा चिन्तन करेंगे, जैसी कामना करेंगे, जैसा सोचेंगे निश्चय ही हमारे कदम भी उसी ओर बढ़ेंगे। इसलिये श्रद्धावान्, भक्त-हृदय आचार्य पूज्य श्री माधव मुनि जी ने भी धन को, सत्ता को, पद और प्रतिष्ठा को मनाने के बजाय प्रार्थना खी-मनाऊँ मैं तो श्री अरिहन्त महन्त। मैं ध्यान करता हूँ, चिन्तन करता हूँ, मैं मनाने जा रहा हूँ उन देवाधिदेव को, उन वीतराग सर्वज्ञ को, कर्मों का अन्त करने वाले अरिहन्त-भगवन्त को जिन्होंने आत्म-गुण के अवरोधकों का नाश कर दिया, अशुभ घाती कर्मों को नष्ट कर दिया। मैं अरिहन्त भगवन्त को इसलिए मना रहा हूँ, क्योंकि मेरे भी साध्य वही हैं। मेरी मंजिल भी वही है। मैं भी वही बनना चाहता हूँ। मुझे यह जो जीवन मिला है वह भी उसी साध्य की प्राप्ति के लिए है। शास्त्र की भाषा में

कहूँ-नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं-नमस्कार है अरिहन्त भगवन्तों को जो धर्म की आदि करने वाले हैं। संसार पार करने के लिए सेतु बाँधने वाले हैं। स्वयं, पूर्वकृत शुभ कर्मों से अपने आप बोध को प्राप्त करने वाले हैं। विरले ही मिलेंगे ऐसे लोग जो स्वयं बोध प्राप्त करने वाले हैं। स्वयं अपना लक्ष्य निर्धारण करने वाले हैं। बिना किसी निमित्त के आत्म-साधना के मार्ग में आगे बढ़ने वाले हैं।

### स्वयं बुद्ध

बुद्ध तीन प्रकार के होते हैं। शास्त्र के शब्दों में कहूँ तो एक-स्वयं संबुद्ध होते हैं। दूसरे-प्रत्येक बुद्ध होते हैं और तीसरे बुद्ध बोधित होते हैं। जो बिना किसी बाह्य निमित्त के बिना किसी वीतराग वाणी के पठन-पाठन और बिना धर्मियों की संगति के बोध प्राप्त करते हैं, वे स्वयं बुद्ध हैं। ऐसे पुरुष विरले होते हैं। आज तक जितने भी तीर्थकर हुए हैं या होंगे वे सब स्वयं बुद्ध हुए हैं और होंगे। उन्होंने अपने आप आत्म-जागरण किया है और करेंगे। समय के साथ उनका स्वतः चिन्तन आत्मसिद्धि की ओर जायेगा। च्यवन के साथ भले ही चौसठ इन्द्र महोत्सव करते हैं, असंख्य-असंख्य देवताओं का आगमन होता है, किन्तु बोधि को वे स्वयं प्राप्त करते हैं।

संसार में कुछ ऐसे जीव भी हैं जो बोध पाने के बाद भी व्रती नहीं बन पाते हैं। बोध दुर्लभ है। सुयगडांग सूत्र में तीर्थकर भगवान की वाणी प्रेरणा करती है- ‘संबुज्ज्ञह किं न बुज्ज्ञह।’ समझो, बोध प्राप्त करो। यह तन, यह साधन, यह क्षेत्र, यह पुण्यशालिता प्राप्त करने के बाद भी क्यों नहीं बोध प्राप्त करते, क्यों नहीं जगते ? यदि अब भी नहीं जगोगे तो कब जगोगे ? यह इसलिए कहा जा रहा है- ‘संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा।’ बोध को प्राप्त करना अति दुर्लभ है। शायद आप समझ रह होंगे कि

हमने बोध प्राप्त कर लिया । पर भाई, जागने वाले प्रमादी नहीं होते, और जो प्रमादी हैं, अब्रती हैं वे जागृत नहीं, इसलिये तीर्थकरों की स्तुति करते हुए स्वयं बोध प्राप्त करने की बात कही जा रही है ।

संसार में धक्के की गाड़ी कोई नहीं चाहता । सब स्व-चालित यंत्र से चलना चाहते हैं । आज ऐसे प्रयोग, साधन, उपलब्धियाँ अर्जित कर ली गई हैं । इधर बिजली बन्द हुई उधर जनरेटर चालू हो गया । आपको पता ही नहीं चलता कि बिजली कब गई ? कुछ ऐसे जीव हैं जिनको देखने के साथ मालिक प्रसन्न होता है । ऐसे समझदार जानवरों को देखकर प्रसन्न होने का कारण क्या ? ऐसे कई ताँगे देखे हैं जिनका घोड़ा मालिक को देखकर चल पड़ता है । मालिक आकर बैठा नहीं, घोड़ा चल देता है । ऐसे घोड़े को इशारा करने की जरूरत नहीं, उन्हें खींचकर लगाम पकड़कर कोड़े मारने की जरूरत नहीं । ऐसे जानवर भी हों तो चालक का मन प्रसन्न होता है । इसी तरह भक्त भी ऐसी सेवा दे तो.... । अपने पूज्य, आराध्य और वंदनीय को इधर देखा उधर सेवा चालू । विनय की रूपरेखा यही है । आपने स्वामीभक्त सेवकों को देखा होगा, वे संकेत मात्र से कार्य करते हैं । कई ड्राइवर ऐसे हैं जो मालिक के बैठते ही गाड़ी रखाना कर देते हैं ।

स्वयंबुद्ध स्वयं जागरण करते हैं, इसलिये वे ‘पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं’ पाठ के अनुसार पुरुषों में उत्तम कहलाते हैं । उत्तम पुरुष कौन है ? जो स्वयं विवेक से चलते हैं । चलने वाले मंजिल प्राप्त कर लेते हैं ।

### प्रत्येक बुद्ध

एक हैं स्वयं चलने वाले, दूसरे हैं निमित्त पाकर चलने वाले । जो एक-एक निमित्त को लेकर जगने वाले हैं उन्हें प्रत्येक बुद्ध कहा जाता है । बुद्ध से यहाँ मतलब है-अपने आपका बोध कर लेने वाले । आपके

पास कई तरह का ज्ञान होगा, अबोध यहाँ कोई नहीं है, किन्तु यहाँ आत्म-बोध के साथ आवरण हटाकर साधना के पथ पर चलने वालों की दृष्टि से कथन किया जा रहा है। संत का निमित्त पाकर कोई जग जाये उसका कहना ही क्या ? प्रायः पारस्स की संगति पाकर लोहा सोना बनता है। अगर नहीं बनता है तो समझो उस पर कोई आवरण है, छिपावट है, लुकावट है। प्रत्येक बुद्ध एक-एक निमित्त को लेकर जगने वाले होते हैं। मैं चूड़ी के निमित्त को लेकर जगने वाले की बात कहूँ या घनघोर घटाओं को देखकर जगने वालों की बात कहूँ। घटा आई और दक्षिणी पवन से बिना बरसे चली गई यह देखकर वैराग्य आ गया। हमारा भी निमित्त पाकर जगने का समय आ गया है। आपको पुण्यशालिता से अवसर मिला है।

मेरे सामने कल एक बात आई, चिन्तन चला-सोच होने लगा। अगर ऐसे किस्से सुनने को मिलेंगे तो श्रद्धा कैसे कायम रहेगी ? आप कई बार चार-चार महीने तक संत सेवा में रहे हैं, उत्थान कब होगा ? चिन्तन चला। जागरण का मौका पाकर जागरण नहीं हो, इसकी चिंता है।

मुझे एक कहावत याद आ रही है। एक सेठ साहब बैठे-बैठे रोने लगे। किसी ने कुछ कहा नहीं, कोई कारण नहीं, कोई निमित्त नहीं फिर रुदन क्यों ? किसी सज्जन ने पूछा-क्या हुआ ? सेठ का उत्तर था- ‘कुछ नहीं भाई, कोई खास बात नहीं।’ फिर रो क्यों रहे हो ? सेठजी बोले- ‘भाई, मुझे चिन्ता लग गई, कल सोया था तो मेरे ऊपर से चूहा निकल गया।’ घर है वहाँ चूहा मिल सकता है, आ गया होगा, ऊपर से निकल भी गया होगा इसमें चिन्ता क्या ? सेठ बोला- ‘यह बात नहीं, आज चूहा निकला, कल साँप निकल गया तो..... ? मैं सेठ की चिन्ता की बात सम्हलने के लिए कह रहा हूँ। सेठ का रुदन करना, हो-हल्ला करना या मात्र चिन्ता करना उपाय नहीं है। जरूरत है जागरण की। कर्तव्य की

उपेक्षा करते रहे तो समस्याएँ हल न हो सकेंगी। जरूरत है विवेक पूर्वक जागरण की।

मैं कह रहा था निमित्त से जगने वाले भी हैं, बोध प्राप्त करने वाले भी हैं। वीतराग वाणी को और संत-समागम को भी जागने का कारण बताया गया है, पर संत-समागम पाकर सब जग जायें, ऐसा निश्चित नहीं है। एक ओर जहाँ जड़ निमित्त से जगने वाले हैं, वहाँ तीर्थकर भगवान जिन्हें पुरुषों में उत्तम कहा जाता है उनका समागम पाकर भी नहीं जगने वाले जीव मिलते हैं।

शेर जैसे अपने आप पुरुषार्थ करता है, अपनी धाक जमाता है उसी प्रकार आप भी आचरण के पुरुषार्थ से आगे बढ़ सकते हैं। शेर को जंगल का राजा बनाने वाला कौन है? कौन राजतिलक करता है? किन्तु वह अपने पुरुषार्थ से इतना आगे बढ़ जाता है कि हाथी जैसा प्राणी भी सामने आ जाये तो भय खाता है। इसी तरह इस जीव को कोई अन्य तारने वाला नहीं। जब संत-संगति से जागरण नहीं हो सकता तो मोह वालों की संगति से जागरण कैसे होगा?

### बुद्ध बोधित

आदमी जगा हुआ है तो आगे बढ़ सकता है। इसलिये पुरुषार्थ करने की बात कही जा रही है। चातुर्मास के दिन पुरुषार्थ करने के लिए हैं। चातुर्मास खाना-पूर्ति के लिए नहीं होकर जागृत होने के लिए है। आपको भी निमित्त मिला है चातुर्मास का। तीर्थकर भगवान महावीर ने पूर्व में पुरुषार्थ किया था। इसलिए भगवान के मात्र गर्भ में आने पर लोग खुशियाँ मना रहे हैं, हर्षित हो रहे हैं कि यह जीव तिन्नाण-तारियाण, बुद्धाण-बोहियाण, मुत्ताण मोयगाण है। अभी साधु नहीं बने हैं पर भी एक जगह नहीं, एक मौहल्ले और एक गाँव में नहीं तीनों लोकों में खुशियाँ मनाई जा रही हैं। इसी तरह संत समागम, वीतराग वाणी के

श्रवण का अवसर पाकर पुरुषार्थ कीजिए और जहाँ कहीं रहें कमल की तरह रहिये । कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है इसलिए उसका नाम पंकज है । किन्तु वह कीचड़ में पैदा होकर भी कीचड़ में नहीं रहता, पानी में भी नहीं रहता, पानी के ऊपर रहता है, ऐसे ही आप भले ही संसार में रहें पर कमल की तरह संसार के मोहमाया के कीचड़ से ऊपर उठे रहें । यही पुरुषार्थ करना है ।

नाव पानी में रहे तब तक समस्या नहीं है, नाव में पानी नहीं होना चाहिये । आप संसार में रहें यह समस्या नहीं है, आपके मन में संसार नहीं रहना चाहिये । संसार में रहते हुए संसार से अलग रहना, जीने की कला है । यह कला आपको-हमको तीर्थकर भगवन्तों ने बताई है । भरत चक्रवर्तीं त्यागी नहीं बने, पर आसक्ति भाव से दूर रहे ।

हमें तीर्थकर भगवन्तों के विशेषणों से प्रेरणा लेनी है । ‘अहो समदृष्टि जीवड़ा करे कुटुम्ब प्रतिपाल’ के अनुसार जीवन जीना है । धाय माता हर समय बच्चे के बीच रहती है । कभी नहलाती है, कभी खिलाती है, कभी दूध पिलाती है, कभी उसका मनोरंजन कराती है, सब कुछ करते हुए भी धाय माता जानती है कि यह बच्चा उसका नहीं है । संसार में आप इसी तरह रहेंगे तो यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र और धर्म-साधना-आराधना के मार्ग हरे-भरे रहेंगे ।

वीतराग वाणी श्रवण कर, आप धर्म-साधना में आगे बढ़ने की चेष्टा करेंगे । आप जागिये और आगे बढ़िये । दया-संवर, उपवास-पौष्ठ और धर्म-साधना का स्वरूप क्या है ? नियमावली क्या है ? किस तरह से जीना चाहिये ? हमारा लक्ष्य क्या है ? इन विषयों पर समय के साथ कहने की भावना है । आप वीतराग वाणी और संत-समागम के सुयोग से जागृत होंगे तभी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप मोक्ष-मार्ग की आराधना कर आगे बढ़ेंगे व सुख-शान्ति प्राप्त कर सकेंगे ।



## सम्यग्दर्शन

(३ सितम्बर, १९९४ को पर्युषण पर्व के दूसरे दिन जोधपुर के नेहरू पार्क में दिए गए इस प्रवचन में श्रद्धा की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए उसे सम्यक् एवं दृढ़ बनाने पर बल दिया गया है।)

पर्वाधिराज पर्युषण के इन आठ दिनों में कर्म-बन्धन को तोड़कर आठ गुणों को प्रकट करनेवाले महान् पुरुषों के चरित्र का वर्णन अंतगडसूत्र के माध्यम से रखा जा रहा है। पर्युषण का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से नहीं है। न अयोध्या से, न गया से और न शत्रुघ्जय से। पर्युषण का सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से भी नहीं है। न राम से है, न कृष्ण से और न ही महावीर से। लौकिक रीति-रिवाज से और किसी प्रसंग विशेष से भी पर्युषण का सम्बन्ध नहीं है। यह पर्व आत्मा का है। यह पर्व आध्यात्मिक पर्व है। यह पर्व प्रत्येक आत्मा के लिए है। जो भी आठ गुणों की साधना करने वाले हैं, आठ प्रमाद और आठ कर्म छोड़ने वाले हैं उन सबके लिए ये पर्वाधिराज पर्युषण पर्व हैं।

कल उन आठ गुणों में से पहले गुण की बात रखी। उसे सम्यक् ज्ञान-अनन्त ज्ञान कहा गया। जानकारी अलग है, समझ अलग है और सम्यग् ज्ञान अलग है। जानकारी बाहर से भीतर में भरी जाती है, सम्यक् ज्ञान भीतर से कर्म बन्धन को तोड़कर प्रकट किया जाता है। यही बात सम्यक् दर्शन की है।

दर्शन शब्द पाँच अर्थों में प्रचलित है। मैं दर्शन करने जा रहा हूँ-इस प्रकार देखने या साक्षात्कार करने के अर्थ में भी दर्शन शब्द का प्रयोग किया जाता है। एक विशेष प्रकार की मान्यता, विशेष प्रकार के सिद्धान्त को भी दर्शन कहा जाता है, यथा बौद्ध दर्शन, सांख्य दर्शन, जैन दर्शन आदि-आदि सिद्धान्तों के रूप में भी इस शब्द का प्रयोग। तत्त्व का निर्णय करना भी दर्शन शब्द का अर्थ होता है। दर्शन शब्द का चौथा अर्थ है-सामान्य बोध। जो वस्तु के विशेष स्वरूप को जाने उसे ज्ञान कहते हैं और जो वस्तु के सामान्य धर्म को जाने उसे दर्शन कहते हैं। इस सामान्य बोध के अर्थ में भी दर्शन शब्द का प्रयोग होता है। पाँचवाँ अर्थ है-दर्शन अर्थात् दृष्टि। दर्शन् अर्थात् विश्वास। दर्शन अर्थात् श्रद्धा।

तीर्थঙ्कर भगवान महावीर ने कहा-

**नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।**

मोक्ष-मार्ग में जिस दर्शन शब्द का प्रयोग किया जाता है, यहाँ उसका अर्थ देव-गुरु-धर्म पर, जीव-अजीव आदि नौ तत्त्वों पर सही श्रद्धा करना, विश्वास करना है।

श्रद्धा सही भी होती है; गलत भी। दृष्टि के अनेक प्रकार से भेद किए जाते हैं। शास्त्रकारों ने मिथ्या दृष्टि, आसन्न दृष्टि, राग दृष्टि, द्वेष दृष्टि, सम्यक् दृष्टि आदि अनेक भेद कर दिए। दृष्टि है, विश्वास है, श्रद्धा है, पर जिस पर करनी चाहिए उस पर नहीं है और जिस पर नहीं करनी चाहिये उस पर है, यही विडम्बना है। संसार में कोई भयंकर से भयंकर शत्रु है, भयंकर से भयंकर रोग है तो वह है ‘मिथ्यात्व।’ आशीर्विष कोई है तो वह है मिथ्यात्व। विपरीत दृष्टि सबसे बड़ा जहर है। टाँटिये का जहर एक-दो घंटे बाद उतर जाता है, बिच्छू का जहर एक-दो दिन में उतर जाता है। कदाचित् किसी को साँप काट जाय और उसे कोई साधन न मिले तो साँप का जहर एक जन्म दुःख देता है, किन्तु मिथ्यात्व ऐसा जहर है जो एक नहीं, अनेक जन्मों तक दुःख देता है।

आज के जमाने में रोग बहुत हैं। बी.पी. अलग है, हार्ट का रोग अलग है, शूगर है, टी.बी. है आदि। इन सब रोगों का तो फिर भी इलाज खोज लिया गया है। कैंसर भी एक रोग है। कदाचिद् किसी के कैंसर हो जाय और रोग समझ में नहीं आए तो यह रोग उग्र रूप धारण कर लेता है तो वह एक जन्म या एक शरीर नष्ट कर सकता है पर मिथ्यात्व ऐसा रोग है जो इस आत्मा को जन्म-जन्म तक भटकाता है।

भगवन्त फरमाया करते थे- “घर वालों से मत डरो। सिपाही और इन्सपेक्टर से भी डरने की जरूरत नहीं। द्वेषी-दुश्मन सामने आकर खड़ा हो जाय, वह भी दो-चार गाली निकाल देगा, दो-चार मार-पीट कर देगा। उससे भी डरने की जरूरत नहीं है। अगर डरना है तो अपने आपके विपरीत विचारों से डरो। डरना है तो अपने अज्ञान-अन्धकार से डरो। अपनी विपरीत श्रद्धा से डरो। आज तक किसी ने घुमाया है, भटकाया है, नरक और निगोद दिखाया है तो वह मिथ्यात्व है। अगर यह मिथ्यात्व हट गया और अपने आप पर श्रद्धा जागृत हो गई तो भटकने की जरूरत नहीं। पर, आज तक इस जीव ने पराये को अपना समझा है और जो अपना है, उसे पराया मानकर चल रहा है। मैं काला, मैं गौरा, मैं सेठ, मैं सन्यासी, मैं साधु, मैं श्रावक, मैं ओसवाल, मैं पोखवाल, मैं राजा, मैं मालिक, मैं मारवाड़ी, मैं पंजाबी, मैं गुजराती-आज तक हमने अपने आपको यही समझा है और यही समझ रहे हैं। न जाने हम क्या थे ? क्या हैं ? और क्या होंगे ? हम न जाने कितनी बार निगोद में गए, कितनी बार एकेन्द्रिय बने, कितनी बार नरक गए, कितनी बार देवताओं के सुख भोगे। हमारा स्वरूप न देव है, न मानव, न नरक और न तिर्यञ्च।

समस्या यह है कि हमने आज तक अपने आपको समझने की चेष्टा ही नहीं की। हम अपने आपको विपरीत समझते रहे इसलिए विपरीत आचरण हो रहा है। मारवाड़ी कहावत आपने सुनी होगी-घर का पूत

कँवारा डोले.....। अपना काम नहीं हो रहा है पर दुनियाँ भर की जिम्मेदारी ले रहा है। शरीर की, बेटे की, बहू की, पोते की, परिवार की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। आगे न जाने इस खून का ताँत कितना विस्तार पाये। हम जिन्हें अपना मान रहे हैं, वे अपने हैं नहीं, जो अपना है उसे भुला कर चल रहे हैं, यही मिथ्या दृष्टि है। यही विपरीत समझ है।

हम विनाशी को अपना समझ रहे हैं और अविनाशी को अपना मानने की समझ नहीं आई है। आज का दिन अपने आपको समझने का दिन है। आज का दिन अपने आप पर श्रद्धा करने का है। जिस दिन भी अपने आप पर श्रद्धा हो जायेगी, मेरे को, आपको ऊपर उठते देर नहीं लगेगी।

आपने सुना होगा-एक भाई ने राम-राम जपते मरा-मरा जपना चालू कर दिया। आप परिचित हैं। शब्द में विशेषता नहीं है, विशेषता है श्रद्धा में। राम-राम बोलते-बोलते मरा-मरा जप रहा है, किन्तु श्रद्धा अटल है। महत्व श्रद्धा का है।

मैं कोई नई बात नहीं कह रहा हूँ। आप मानकर चलिये कि हजारों रूपये खर्च करके भी जो दवाइयाँ काम नहीं करती, वहाँ एक राख की चिमटी काम कर सकती है। बड़े से बड़े विद्वान् के बोल काम नहीं करते, वहाँ श्रद्धास्पद के दो शब्द काम कर जाते हैं। राम-राम जपना छूट गया और मरा-मरा चालू हो गया, वह भी तिर गया। सुना आपने जरूर है, नई बात कुछ भी नहीं। आणु-ताणु कुछ नहीं जाणु सेठ वचन परमाणु। सेठ ने कहा जब तक मैं पानी लेकर नहीं आता, तब तक तुम नमो अरिहन्ताणं-नमो सिद्धाणं बोलते रहना। भय घुसा होने से बोलते-बोलते नमो अरिहन्ताणं-नमो सिद्धाणं शब्दावली याद नहीं रही और आणु-ताणु में बदल गया। शास्त्र वर्णन करता है शूली पर चढ़ने वाला चोर और डाकू कहाँ गये ? वाल्मीकि डाकू, अंजन चोर विपरीत नाम लेते हुए भी

श्रद्धा के भाव जगने से तिर गये। क्या आप और मैं उनसे भी गिरे हुए हैं? सच मानिये अभी सच्चाई का चिन्तन चला नहीं; श्रद्धा जगी नहीं। आप और हम भले ही अपने आपको ऊँचा मान लें, पर जब तक श्रद्धा नहीं जगती तब तक बेड़ा पार होने वाला नहीं है।

आज जगने की जरूरत है। धन की श्रद्धा टिकने वाली नहीं, तन की श्रद्धा भी श्रद्धा नहीं है, भोग-उपभोग की श्रद्धा भी ले दूबेगी। हम किसके पीछे तड़फ़ रहे हैं, घर छोड़ रहे हैं, परिवार छोड़ रहे हैं, न जाने किन-किन देशों में भटक रहे हैं। श्रद्धा जागृत हो जाय तो भटकने की जरूरत नहीं। जरूरत है अपने आप में श्रद्धा जगाने की। जिस दिन सम्यक् श्रद्धान जग गया आप चाहे हत्यारे हैं, आप चाहे तस्कर हैं, आप चाहे पीड़ित हैं, दीन-हीन जीवन वाले हैं, श्रद्धा जग गई तो ये सारे पाप धुल जायेंगे। पर आज वह सम्यक् दर्शन जगा नहीं।

श्रद्धा को भीतर खोजने की जरूरत है पर आप आँखें बन्द कर बाहर में जा रहे हैं। भैरूजी, नाकोड़ा जी, केशरिया जी याद आ रहे हैं; कितने-कितने देवी-देवता याद आ रहे हैं पर वे भी कुछ नहीं दे सकते। नीति की कहावत है-

**टुकड़ा न आता काम में टूटी हुई शमशीर का।**

**देवता भी क्या करे फूटी हुई तकदीर का ॥**

देवता साक्षात् खड़े हो गए; खड़े हो जायेंगे। तीर्थङ्कर भगवान महावीर के चरणों में देवता नहीं; देवताओं के इन्द्र प्रार्थना कर रहे हैं- भगवन्! आपके इस थोड़े से काल में उपसर्ग अधिक हैं, इसलिये मैं आपकी मदद करूँ। भगवान ने कहा-नहीं, मुझे मेरे कर्म स्वयं को भोगने हैं। आपको कोई देव आकर कह दे तो? देव नहीं; कभी सपना भी आ जाय तो आप फूले नहीं समाते हैं। आपने नल की बात सुनी है। उसका पिता देव स्वयं उपस्थित हुआ साँप बन कर डस गया, कूबड़ा बना दिया।

कहा-नल ! अभी तुझे बारह वर्ष ऐसे ही निकालने हैं। तूने कर्म किए हैं वे जब तक पूरे नहीं होते मैं सहायता नहीं कर सकता। देवता क्या करेगा ? कब करेगा ? तकदीर सुलझी होगी तो वैसे ही हो जायेगा। आपको दरवाजे-दरवाजे, देहली-देहली और ढूँगरी-ढूँगरी भटकने की जरूरत नहीं। आप अपनी शक्ति पहचानिये, अपने आप पर विश्वास कीजिये, दृष्टि का परिवर्तन कीजिये। वस्तु एक है, पर दृष्टि नहीं बदलेगी तो वस्तु भी अनेक रूपों में एवं मिथ्या रूपों में दिखाई देगी।

एक काँच लगा हुआ है; उसके सामने भोगी जाता है तो वह बाल सँवारेगा, चेहरा निरखेगा। उस काँच को चिड़िया को दिखाया जाता है तो वह चोंच मारती है, वह लड़ना सीखती है। एक भोगी के लिए काँच सँवारने के लिए है, चिड़िया के लिए लड़ाई पैदा करने वाला है। बच्चे के लिए पतंग की डोर में काम आने वाला है। वही काँच का टुकड़ा दीवार में भी लगा दिया जाता है। कोई आत्महत्या करना चाहे, वह उन टुकड़ों को बाँट कर खा ले, खत्म हो सकता है। एक काँच को न जाने कितने रूपों में देखा जा सकता है। वही काँच चक्रवर्ती भरत को केवलज्ञान मिलाने वाला बन गया। काँच के महल की विशेषता देखिये-पुण्यशालिता का रूप देखिये। एक नहीं आठ-आठ नरेश वहाँ जाकर केवलज्ञानी बन गये। नवें पाट में राजा को इस महल पर द्वेष आया। राजा ने कहा-जो भी इसमें जाता है साधु बनकर निकल जाता है, यह महल काम का नहीं। उन्होंने महल तोड़ दिया।

सम्यक् दर्शन आत्मा पर श्रद्धा जगाने वाला है। परमात्मा पर श्रद्धा जगाने वाला है। ‘सम्यक् दर्शन’ बिन्दुओं के पीछे एका लगाने वाला है। अगर सम्यक् दर्शन का एका पीछे नहीं लगा हो तो आप नवकारसी, पौरसी, सामायिक-प्रतिक्रिया की एक-से-एक बिन्दी लगाते जाइये, सौ बिन्दियाँ भी लगा लें और पीछे एका नहीं है तो व्यर्थ है।

सम्यक् दर्शन, धर्म रूपी महल की नींव है। आप मंजिल पर मंजिल चढ़ा लें, नींव ही नहीं हो तो.....? आत्मा-परमात्मा पर विश्वास करने की नींव है सम्यक् दर्शन। सम्यक् दर्शन, चारित्र रूपी महल की आधार शिला है। आपको अपने पर विश्वास है तो तिर्यच नहीं, देवता भी डिगायेगा तो आप डिगेंगे नहीं। अन्यथा कल उपवास का कहने पर कहेंगे, कल उपवास दोरो हुयो म्हने तो सामायिक करवाय दो। सामायिक करने का कहें तो बाबजी ! म्हारो गोड़ो दुःखे, सामायिक बण नहीं आवे, मने तो कोई सीधो रास्तो बताओ। मैं दस मिनट माला फेर लेऊँ। माला फेरने की बात आई तो बोले- “महाराज ! माला फेरूँ ज्यूँ मन फिरतो रेवे।” क्या हुआ ? आपका विश्वास टिकता क्यूँ नहीं ? शाम को प्रतिक्रमण किया-कहेंगे मच्छर बहुत खाते हैं। मच्छर खा रहे हैं तो कपड़ा ओढ़ ले। बाबजी ! तपे घणो। न आप पसीना पोंछना चाहते हैं न सहन करना चाहते हैं। क्या दुकान पर काम करते पसीना नहीं आता ? क्या उगाई करने गये वहाँ कष्ट नहीं होता ?

अज्ञान से अश्रद्धा से, लाचारी से आप कितने-कितने कष्ट सहन करते हैं। आप जानकारी से कष्ट सहन करना सीख जाओ तो कर्मों के बन्धन कट जायेंगे। जानकारी होने पर रस आयेगा, श्रद्धा जगने पर मन लगेगा। ब्रतों के महल खड़े करने से पहले आप श्रद्धा की नींव मजबूत कीजिये। आप श्रद्धापूर्वक धर्माराधन करेंगे तो निश्चित उसका लाभ होगा।

आपका स्मरण, सामायिक, नवकारसी, पौरसी एक नहीं हजारों-लाखों वर्षों की नारकी के बन्धन तोड़ने वाली है, किन्तु आपमें श्रद्धा का बल हो और जिसमें सम्यक् श्रद्धान नहीं है तो वे सब धर्मक्रियाएँ अधूरी हैं। कहना चाहिये बालक जैसे नवलख हीरे को छोड़कर बोर पकड़ता है ऐसे ही आप किसे पकड़ रहे हैं ? बच्चे के पास सोने का हार रखा हुआ

है, साथ में खाने के बोर हैं तो वह चार बोरों के लिए कीमती हार छोड़ देता है। कभी बन्दर है घर से जेवर उठाकर ले जाता है आप उसे खाने को रोटी के टुकड़े या चने डालते हैं, तो बन्दर जेवर छोड़ देता है और चने ले लेता है।

एक आसन्न दृष्टि है। एक मिथ्या दृष्टि है। वह माला-सामायिक इसलिए कर रहा है कि घर में शान्ति हो जाय, शान्ति नहीं हुई तो छोड़ देगा।

साधना लौकिक फल के लिए नहीं है। यह आत्म-शान्ति के लिए है, मन के सन्तोष के लिए है, इन्द्रियों के विषय-कषय के विष को शमन करने के लिए है। चन्द चाँदी के टुकड़ों के लिए बुखार उतारने के लिए हमारी साधना आसन्न दृष्टि लगी, थोड़ा फायदा मिला। एक तेला किया, इच्छा पूरी हुई सात तेले कर दिये। इच्छा पूरी नहीं हुई तो बन्द कर दिया। शास्त्र कह रहा है-मानव ! तेरी क्रिया, जन्म-मरण का अन्त करने के लिए है। कोई राजा के पास जाये और दो मुट्ठी चने माँगे तो यह उसकी नादानी है। इसी तरह बन्धन काटने वाली क्रियाओं से जो सामान्य फल लेने की इच्छा करता है तो शास्त्र उसे अज्ञान के आवरण वाला कहता है।

बारह साल तक एक भाई ने माला फेरी। माला फेरने से उसे जल में तिरने की विद्या प्राप्त हो गई। एक महात्मा आए और उन्होंने अपना चमत्कार दिखाया कि मैं जैसे जमीन पर चल सकता हूँ उसी तरह पानी पर भी चल सकता हूँ। पूछा महात्मा ने-इस विद्या को प्राप्त करने में कितना समय लगा ?

**कहा-महाराज ! बारह साल ।**

अरे यह तो डंडा चलाने वाला नाविक दो आने में पार कर देता है, इसके लिए बारह वर्ष क्यों लगा दिये ? मछली पानी में तैर जाती है। मेरा कहना है कि आराधना करते हुए यदि किसी को कुछ सिद्धियाँ-

उपलब्धियाँ मिलती हैं तो यह सन्तोष के लिए नहीं है। आपने आचार्यों के आलोचना पाठ में कई उपलब्धियाँ सुनी हैं, किन्तु कहा गया है-

**अहो सम्यक् दृष्टि जीवड़ा करे कुटुम्ब प्रतिपाल,  
अन्तरगत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।**

सम्यक् दृष्टि संसार में कैसे रहता है? उसके लिए दृष्टान्त दिया जाता है कि पानी में नाव रहती है तब तक तो ठीक, नाव में पानी रहे तो डुबाने वाला है। सम्यक् दृष्टि संसार में रहे वहाँ तक ठीक, संसार उसमें नहीं रहना चाहिये।

भगवन्त फरमाया करते थे-असली शहद में मधुमक्खी गिर जाय तो मक्खी बाहर आ जाती है और उसके किसी भी रेशे पर शहद नहीं लगती है। शहद के असली होने की पहचान भी इससे की जाती है। शहद नकली होगा तो मक्खी बाहर नहीं आ सकेगी। इसी तरह से सम्यक् दृष्टि होता है, उसे चाहे चौदह रत्न और नौ निधान प्राप्त हों और पच्चीस हजार देव उसकी सेवा करते हों पर वह संसार में भले ही है, परन्तु संसार उसमें नहीं रहेगा।

सम्यक् दर्शन आ जाने पर संसार छोड़ने में एक क्षण भी नहीं लगेगा। यहाँ रोज-रोज कहते जायें, आप रोज-रोज सुनते जायें उससे कुछ होने वाला नहीं है। आपमें सम्यक् दर्शन है तो सुनने को भी नित्य नया है अन्यथा आप कहने लगेंगे-महाराज के क्या जावें वहाँ तो वही की वही बातें हैं। भाई! बातें तो वो की वो हैं फिर भी सुननी जरूरी है। आप रसोई घर में क्यों जाते हैं? वहाँ वही दाल, वही रोटी है फिर भी जाना पड़ता है। आप कपड़े पहनते हैं वही कपड़े हैं।

बात यह है कि जब तक जीवन में धर्म नहीं उतरता तब तक वही बातें कहनी पड़ेंगी। वही सामायिक है, वही शास्त्र है, वही कथानक है। इनकी प्रेरणा तब तक है जब तक चारित्र जीवन में नहीं उतरता। बात वही

है ऐसा सोचने के बजाय क्या कभी सोचा भी है कि मैं जहाँ था, वहीं का वहीं क्यों हूँ? इतना सुनने के बाद क्या मोह घटा? क्या ज्ञान बढ़ा? कितनी कषायें कम हुई? कितने पापों से विरति हुई?

जब तक भूख रहेगी, खाना पड़ेगा। इसी तरह जब तक सही ज्ञान नहीं होगा तब तक आपको धाय माता की तरह अथवा मैनेजर की तरह बनकर रहना होगा। मैनेजर के पास हजारों-लाखों आ गए तब भी और चले गए तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लड़का नहीं, पोता और पड़पोता हो जाय आपको आसक्ति नहीं रखनी है। आपको सम्यक् श्रद्धा नहीं हो जाय तब तक सुनने की जरूरत है। कबीर ने कहा-

पढ़े गुणे सीखें सुणे मिटे न संशय शूल ।  
कहे कबीर कैसे कहूँ, यही दुःख का मूल ॥

आप पढ़ते भी हैं, सुनते भी हैं, सीखते भी हैं पर जहाँ थे वहीं हैं, तो इसे क्या कहेंगे? जब तक आत्मज्ञान की श्रद्धा नहीं आती, दुःख नहीं घटते। इसलिए आप पढ़कर-सुनकर सीख कर पापों से हटिये और गुणों को प्रकट कीजिये। जो सम्यक् दर्शन प्राप्त करेगा वह सुख-शान्ति-आनन्द प्राप्त करेगा।



## तप : आत्म-शोधन का साधन

(कर्म-निर्जरा का प्रमुख साधन है 'तप'। 5 सितम्बर 1994 को जोधपुर चारुमर्सि में फरमाये इस प्रवचन में तप का व्यापक विवेचन करते हुए उसे विकार-विजय के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।)

पर्वाधिराज पर्युषण का आज चौथा दिवस है। मोक्ष के मार्ग में तप को चौथे क्रम में लिया गया है।

नाणेण जाणङ्ग भावे दंसणेण य सद्ब्रहे।

चरित्तेण निगिण्हाङ्, तवेण परिसुज्ज्ञाङ्॥ उत्तरा.28.35

ज्ञान से जीव, अजीव आदि तत्त्वों को जानो। दर्शन से यह विश्वास करो कि तुम्हारा उद्धार-उत्थान करने वाला और कोई नहीं तुम स्वयं हो। कोई देवता, कोई देवी और सबसे बढ़कर तीर्थङ्कर भी तुम्हें तारने में समर्थ नहीं हैं। यदि वे मुझे और आपको तार देते तो गौतम पहले तिर जाते। ऐसे श्रद्धावान् ऐसे विनयवान् और जीवन समर्पण करने वाले विरले मिलेंगे, परन्तु गौतम ने जब तक अपने मन का मोह नहीं मिटाया तब तक वे स्वयं छद्यस्थ ही रहे। उनके हस्त-दीक्षित, उनकी प्रेरणा से जागृत होने वाले, मार्ग चलते-चलते केवलज्ञानी हो गये, परन्तु गौतम केवल ज्ञान नहीं पा सके, क्योंकि तिरने का प्रयास स्वयं को करना पड़ता है। शायद आपको भी यह विश्वास होगा गुरु भगवन्त तार देंगे, या अन्य कोई तार देगा। परन्तु यह उचित नहीं है। आचार्य भगवन्त के चरणों में

एक भक्त की भावना सुनने का प्रसंग आया। वह बोला-गुरुदेव ! मुझसे कुछ होता जाता नहीं, पर मेरी धर्मपत्नी सामायिक भी करती है, तप भी करती है, साधना भी करती है, मैं उसे साधना-आराधना में सहयोग देता हूँ। मैं नहीं करता तो क्या हुआ, मैं पल्ला पकड़ कर उसका लाभ ले लूँगा। उसने यह नहीं कहा कि पत्नी खाती है, पीती है, कपड़े पहनती है, मेरे खाने-पीने और पहनने की जरूरत नहीं।

श्रद्धा के सम्बन्ध में कहा जा रहा है-तुम्हारी आत्मा का उत्थान करने वाला कोई नहीं, तुम स्वयं हो। परमात्मा बनाने वाला तुम्हारा अपना धर्म है, परमात्मा बनाने वाला तुम्हारा अपना चारित्र है, परमात्मा बनाने वाला तुम्हारा अपना त्याग है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यकृतप तुम्हें उत्थान की ओर ले जायेंगे। बातें करने से पेट नहीं भरता। मंजिल का नाम स्मरण करते रहने से मंजिल पर पहुँचना नहीं हो सकता। चारित्र पूर्ण धर्म के आचरण से मंजिल प्राप्त होती है।

कल देशविरति चारित्र में बारह व्रतों की बात कही गई तो एक व्रती की भी बात कही गई। वायुयान वाले मिनटों-घण्टों में, रेल वाले दिनों में पहुँचते हैं तो चींटी की चाल से चलने वाले महीनों नहीं, वर्षों में रास्ता पार कर लेंगे। जरूरत है चलने की। जरूरत है कर्मों का रोग मिटाने की।

कर्मों का रोग मिटाने के लिए तीर्थঙ्कर भगवान महावीर ने चौथा मार्ग बताया है-तप। तप को हम पथ्य के नाम से कह सकते हैं। सरल भाषा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप का अर्थ होगा-जानना, मानना, पालना और पथ्य-परहेज करना। रोग कर्मों का है, यह जान लिया गया, कर्मों के रोग को मिटाने वाला धर्म है इसे मान लिया गया, मिटाता चारित्र से है, आप इस मार्ग पर चल पड़े। अब तप रूप पथ्य से कर्म-रोग को दूर किया जा सकता है।

आयुर्वेद विशेषज्ञ कहते हैं-अगर तुम पथ्य पूर्वक चल रहे हो तो औषधि की आवश्यकता नहीं। आपको यदि शूगर है, शकर नहीं छूटती तो चिकित्सा होने वाली नहीं। आपको बी.पी. है, पर नमक बिना भोजन फीका लगता है तो आप सैंकड़ों गोलियाँ खा लें, किन्तु पथ्य का पालन नहीं है तो रोग मिटेगा नहीं। इसीलिए तीर्थङ्कर भगवान महावीर कर्म के रोग को मिटाने के लिए पथ्य की बात कह रहे हैं। इस पथ्य को भी दो भागों में विभाजित किया जा रहा है। एक शरीर पर परहेज, एक मन का परहेज। एक तप शरीर को तपाने वाला है, एक मन को तपाने वाला है। एक शरीर की शुद्धि करता है, दूसरा मन के विकारों को घटाता है। एक बाह्य तप है और दूसरा आभ्यन्तर तप है।

भारतीय संस्कृति में ऐसे कोई ज्ञानी, ऐसे कोई पथ-प्रदर्शक, ऐसे कोई तीर्थङ्कर और अरिहन्त नहीं मिलेंगे जिन्होंने अपने जीवन में तप का आचरण नहीं किया। तप विकार घटाने में सहायक है।

### **तन का तप : तप नहीं**

भारत में तीर्थङ्कर भगवान महावीर और भगवान पार्श्वनाथ के समय ऐसे अनेक तपस्वी थे जो तन को तपाते थे, पर मन का अहंकार बढ़ाते थे। नदी में खड़े रहकर, पेड़ पर लटक कर तप करने वाले थे, शैवाल भक्षण कर तप करने वाले थे, अपने चारों ओर अग्नि लगा कर तन को तपाने वाले तपस्वियों की भी कमी नहीं थी, किन्तु भगवान महावीर ने इन तर्पों को अज्ञान तप के नाम से कहा। ऐसे तप बाल तप की श्रेणी में कहे गए। ये तप खुद को कम तपाते, दूसरों को अधिक तपाते थे। ऐसे तप, तप नहीं होकर ताप बनते, संताप पैदा करते थे। तप की परिभाषा की गई- “तवो णाम तावयति अट्ठविहं कम्मगंठिं, नासेत्तिति वुतं भवइ।” अर्थात् जो अष्ट प्रकार के कर्मों की ग्रन्थियों को तपाता है, उसका नाश करता है, उसे तप कहते हैं।

सहज प्रश्न होता है तपाना जब कर्मों को है तो फिर शरीर को कष्ट क्यों? क्यों किए जायें उपवास, बेले, तेले, अठाइयाँ एवं मासखमण? भोजन छोड़ना, स्नान नहीं करना, मैल नहीं निकालना, शरीर की शोभा-विभूषा नहीं करना, इन्द्रियों की प्रतिसंलीनता करना इनकी क्या आवश्यकता है?

आचार्य भगवन्त (आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा.) शास्त्रीय दृष्टान्त के माध्यम से समझाया करते थे कि जैसे घी में छाछ का विकार मिला हुआ है। उस घी को आग में डाल दिया जाये तो विकार अर्थात् छाछ और मूल अर्थात् घी दोनों जल जायेंगे। घी को छाछ रूपी विकार से अलग करने के लिए बर्तन में डालकर तपाया जाता है जिससे घी में रही छाछ और मैल तप कर घी विशुद्ध हो जाय। ठीक इसी तरह आत्मा के साथ चिपके कर्मों के विकार को हटाने के लिये तपेले रूपी शरीर को तपाया जाता है।

### **तपः संस्कृति है**

इसके लिए तीन बातें कही जाती हैं। खाना प्रकृति है, अधिक खाना, विपरीत खाना, व्यसन सेवन करना ये सब विकृति है और तप करना संस्कृति है। जब तक शरीर है, तब तक साधना के लिए उसे चलाने हेतु खाना पड़ेगा। इसलिए शरीर के निर्वहन हेतु खाने को प्रकृति कहा जा रहा है। बिना खाये, बिना आहार ग्रहण किये शरीरधारी स्वस्थ नहीं रहता, पर स्वाद के लिए अधिक खाना, विपरीत आहार ग्रहण करना और जिसकी तन को जरूरत नहीं ऐसे व्यसनों का सेवन करना वे चाहे पान-पराग हों, चाहे गुटखा या बीड़ी-जर्दा हो ऐसे व्यसन प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं, वे छोड़ने लायक हैं। आपने देखा होगा बैल खेत में हल जोतने जाते हैं उन्हें बिनौले डाले जाते हैं, तिल और गुड़ दिया जाता है पर जब बैल मेहनत करना बन्द कर देते हैं, उनसे काम की जरूरत नहीं

हो तब क्या दिया जाता है ? आप देते नहीं हैं तब भी देखते तो होंगे । कैसे देना ? कितना देना ? कब देना ? जिससे बैल में प्रमाद नहीं आवे । वह कार्यकारी भी बना रहे । जैसे वहाँ ख़्याल रखा जाता है इसी तरह शरीर को भोजन की कब-कितना-कैसे दिया जावे ? इसकी सही सोच जरूरी है । ऐसी वस्तु का सेवन नहीं किया जाय जो कार्य में सहायक बनने के बजाय बाधक बनती हो । मनुहार से खिलाना, गले की सौगन्ध देकर जरूरत से अधिक खिलाना कितना उचित है ? इसका मतलब, जिनको जरूरत है उनको वंचित रखना है ।

तप करना संस्कृति है । भारत का एक भी महात्मा ऐसा नहीं मिलेगा जिसके जीवन में थोड़ा या अधिक तप का आचरण नहीं चलता हो । भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर तक और महावीर से आज तक किसी भी परम्परा को ले लीजिये, किसी भी धर्म, पंथ या मत को ले लीजिये सबमें न्यूनाधिक तप का आचरण मिलेगा । लौकिक पुरुष गाँधी का नाम ले लीजिये वे भी क्या खाना ? कब खाना ? कितना खाना ? इसका ध्यान रखकर चलते थे ।

खाने पर संयम करना भी तप है और यह तप हमारी संस्कृति है । भगवान महावीर ने छः माह तक तप किया । बाईस तीर्थङ्करों के समय एक दिन से आठ माह तक तप किया था । भगवान ऋषभदेव के समय एक दिन से बारह महीनों तक तप किया जाता था ।

### अनशन से विकार-विजय

अनशन क्या ? “न अशनम्” अमुक समय तक आहार ग्रहण नहीं करना । एक अनशन उपवास में कम से कम 36 घण्टे तक आहार नहीं होता है । उपवास करने वाला व्यक्ति पहली रात को भोजन नहीं करता, बारह घण्टे अगले दिन के और बारह घण्टे अगली रात के इस

तरह 36 घण्टे आहार नहीं लेने पर एक उपवास होता है। यह तप बढ़कर दिनों-महीनों चलता है। भगवान ऋषभदेव ने एक वर्ष तक तप किया। भगवान महावीर ने छः माह तक तप किया और भगवान महावीर के बाद भी पाँच माह पन्द्रह दिन तक का तप करने वाली बहिन इचरजकंवर लुणावत ने जयपुर में तपस्या की। छः माह, पाँच माह, चार माह, एक-एक माह तक अन्न छोड़कर चलने वाले इस धरा पर आज भी बहुत मिलेंगे। खम्भात में एक साथ 108 मासखमण हुए। जयपुर में अठाइयों का दौर चला तो 200 एक साथ हुई। नागौर में अठाइयों का दौर चला तो 120 के लगभग अठाइयाँ हुई। अनशन तप स्वीकार कर चलने वाले पहले थे, आज हैं और आगे भी रहेंगे।

तप आत्मा को गति देता है। वह आत्मा को ऊष्मा प्रदान करता है। कहते हैं कि ऊष्मा है तो जीवन है। यदि गर्मी निकल गई तो जीवन नहीं। ओज और ऊर्जा वाला व्यक्ति प्रतिभावान और तेजस्वी है। ऊष्मा है तब तक सारी क्रियाएँ हैं। खाना, पीना, सोना सब तब तक है जब तक कि शरीर में ऊष्मा है। ऊष्मा नहीं तो कान रहेंगे, सुन नहीं सकते। ऊष्मा नहीं तो आँख रहेगी, देख नहीं सकते। ऊष्मा नहीं तो जीभ रहेगी, बोल नहीं सकते। ऊष्मा नहीं तो हाथ-पैर तो रहेंगे, चल नहीं पायेंगे। ठीक इसी तरह तप का तेज एवं प्रकाश आत्मा को गति देता है इसलिए चारित्र के चरण के बाद तप का वर्णन किया जा रहा है।

तप कर्मों के पहाड़ को काटने वाला वज्र है। तप काम के दावानल की ज्वाला का शमन करने के लिए जल के समान है। तप इन्द्रियों के विकारों को वश में करने के मन्त्र की तरह है। तप लक्ष्मी-लब्धि और आत्म-साधना में आगे बढ़ाने का मूल है। तप की महिमा करते हुए कवियों ने कहा-

**करोड़ विघ्न दूर टले, वांछित फल तत्काल ।**

**जो भी जन नित तप करे, तस घर मंगलमाल ॥**

तप वांछित फल देने वाला है। अब तक जिन्होंने जो भी मिलाया है इसी तप के साधन से मिलाया है। शास्त्रों में कथाभाग में अनेकानेक दृष्टान्त मिलेंगे जिनमें तपश्चरण करने वालों की महिमा का वर्णन हुआ है।

तप से काम-वासना पर विजय पायी जा सकती है। एक प्रसंग ध्यान में आ रहा है। पति परदेश गया और नव यौवना वधू के मन के भीतर विकार उठने लगे। एक दिन श्वसुर से कहा- “यह नौकर बूढ़ा है काम करने में समर्थ नहीं इसलिए इसकी जगह जवान को रखा जाय।” बात सुनने के साथ अनुभवी बुजुर्ग ने सोचा यह ऐसा क्यों कह रही है ? सेठ ने बाल धूप में धोले नहीं किए थे। उसने सोच कर, जब सवेरे बहू पृच्छा करने आई- “पिताजी ! आज क्या बनाया जाय?” वह बोला- “बहू ! आज चतुर्दशी का दिन है, सन्तों का समागम भी है इसलिए मेरी आज उपवास करने की भावना है।”

बहू सोचने लगी-इस अवस्था में पिताजी उपवास करने की सोच रहे हैं, मैं भी भोजन करके क्या करूँगी ? घर में दो ही खाने वाले थे। सासूजी पीहर गए हैं पति परदेश गया है, मेरे अकेले के लिए आरम्भ-समारम्भ क्या करना, मैं भी उपवास कर लेती हूँ।

प्रातः पारणे का समय आया तो बहू ने पूछा- “पिताजी क्या तैयार करूँ ?” “बेटी ! भावना है कि आज एक उपवास और कर लूँ।” श्वसुर ने बेला किया, बहू ने भी बेला कर लिया। पिता ने तेला किया बहू ने भी तेला कर लिया। एक तेले में पेट की तो सफाई हुई ही, मन की भी सफाई हो गई। देखिये, तप से विकार कैसे मिटते हैं ? बहू पारणा करने के पूर्व बोली- “पिताजी ! घर में ऐसा तो कोई अधिक काम नहीं, इसलिए

वर्षों पुराना नौकर है इसे छोड़ना नहीं चाहिये। आजकल नये का क्या भरोसा ?” श्वसुर का चिन्तन सफल हो गया। अतः पिता ने पारणा कर लिया, बहू ने भी पारणा कर लिया। तप ने सारणा कर लिया।

अनशन इन्द्रियों के विकार घटाता है, तन को स्वस्थ रखता है और मन को विशुद्ध करने वाला है। आज जो तप के महत्व को नहीं जानते वे कभी-कभी हम संतों को कहते हैं-महाराज ! इन्हें तो ध्यान नहीं आप इन्हें क्यों पच्चखाते हैं ? पूछने वाले हमें भी पूछ लेते हैं, मैं उन्हें कहता हूँ जरा मेरी बात भी ध्यान से सुनना। बच्चों को बड़ा करते हुए सैंकड़ों दुःख आते हैं, परन्तु माँ को वह दुःख लगता है क्या ? एक किसान जब खेत में ज्येष्ठ की दुपहरी में भूत बनकर धूल के साथ मिलता है, खेत से काटै हटाता है, कंकर दूर करता है, जमीन की सफाई करता है, उससे पूछो-ऐसा करने में उसे कोई तकलीफ है क्या ? भरी सर्दी में किसान रात की ठण्ड में पानी में खड़ा होकर, धोती ऊपर करके मल्हार गाते हुए पाणत करता है उसे कष्ट का अनुभव होता है क्या ? आप जानते हैं, न माँ को कष्ट होता है न किसान को। क्योंकि उन्हें मालूम होता है कि दुःख नहीं देखेंगे तो सुख मिलने वाला नहीं है। एक देशभक्त सैनिक, गोलियाँ चल रही हैं, बम पड़ रहे हैं, जान का खतरा है फिर भी सीना तानकर आगे बढ़ता है।

इसी प्रकार तप करने वाले की श्रद्धा है, उमंग है, उल्लास है, भावना है तो वह आगे बढ़ता जाता है। जिनके भीतर उल्लास है ऐसी 65 उपवास की तपस्या में 108 बार वन्दन करने वाली बहिनें देखी हैं। 81 उपवास का पारणा है उसके खाने में केवल तीन द्रव्य हैं। 21 वर्षों से एकान्तर तप चल रहा है, ऐसी भी बहिनें हैं। वे कोई गरीब हैं या उनके पास साधन नहीं है, ऐसी भी बात नहीं है। वे सन्तों के पास रहने वाले

आदमी को मिष्ठान खिलाये बिना नहीं भेजती। स्वयं तप करके दूसरों को खिलाती है।

### उणोदरी तप

यह अनशन की बात कही जा रही है। भगवान महावीर बालक-वृद्ध-रोगी सबके लिए तप करने की बात कहते हैं। उनके अनुसार जो अनशन नहीं कर सकते वे उणोदरी तप कर सकते हैं। खाने में कम खाइये, पेटियाँ कम भरिये, यह भी तप है। किसी के पास पाँच पेटी कपड़े हैं, दुकान की तरफ निकले नई साड़ी देखी तो खरीदने की इच्छा होती है। पहले की साड़ियाँ पड़ी हैं। मुझे याद है रेनबो हाऊस में जौहरीमल जी पारख ने कहा था-महाराज ! मेरी पौत्री के 27 तरह की जूतियाँ हैं, मेचिंग चाहिए। ड्रेस हरी तो जूतिया हरी, ड्रेस लाल तो जूतियाँ लाल, ड्रेस पीली तो जूतियाँ पीली। बस अन्तर है तो मुँह का, वह वैसा का वैसा है।

आपके यहाँ का संग्रह दूसरों के लिए दुःख का कारण है इसलिए जितने कम सामान में काम चला सकते हो उतने वस्त्र रखो। जिसे बोलना बहुत आता है। एक की चार सुना सकता है। उसके लिए भी सन्देश है भाई, उणोदरी करो। आपका प्रतीकार-प्रतिबोध कराने वाला नहीं है। कभी गम खा जाओ तो वह भी उणोदरी है। क्रोध के समय क्रोध नहीं करके गम खाने वाला बड़ा होता है। आपने सुना बहुत है-

**क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात ।**

**कहा हरि को घट गयो जो भृगु मारी लात ॥**

कभी कोई प्रतिष्ठा में आँच आने वाले शब्द कह दे फिर भी आप गम खा जाओ, यह भी तप है। बीस अक्षर के बजाय पाँच से काम चलता हो तो आप पाँच ही बोलें।

आपने आचार्य भगवन्त (आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.)

को देखा है। अल्प-शब्द, अल्प-भाषण का ऐसा अतिशय था कि बड़े से बड़ा आदमी बात करने में सोचता था। गृहस्थ या सामान्य साधु की क्या बात कहूँ, बड़े-बड़े आचार्य भी पूछते, महाराज से बात करनी है।

संवत् 2020 में आचार्य भगवन्त (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) अजमेर सम्मेलन में जब उपाध्याय थे, पूज्य आनन्द ऋषि जी महाराज आचार्य पद पर थे, तब उन्हें प्रायश्चित्त को लेकर विचारणा करनी थी। आनन्द ऋषिजी के साथ कुन्दनऋषिजी भी थे और गुरु भगवन्त के साथ मैं था। स्थण्डिल के समय शहर की सीमा से बाहर चले गए तब आचार्य श्री ने मुझसे कहा-उपाध्याय श्री से बात करने का समय कब है? वे स्वयं भी भगवन्त से पूछ सकते थे, किन्तु भगवन्त के प्रति उनका आदर भाव था। देखिये अपनी कीमत बढ़ाना अपने हाथ में है, इज्जत घटाना भी अपने हाथ में है। आप अगर अपनी कीमत बढ़ाना चाहें तो अल्प बोलें। जितनी जरूरत है उतना बोलें।

### तप के अन्य भेद

तप का तीसरा भेद है भिक्षाचर्या। अर्थात् भिक्षा माँगकर आहार लाना। यह भी एक कठोर तप है। तप का एक भेद है ‘वृत्ति-संक्षेप।’ जितने पदार्थ सामने आये उसमें रस कम लीजिये। यह भी तप है। काया को कष्ट देना, आराम नहीं पहुँचाना भी तप है। इन्द्रियों को नियन्त्रित करना भी तप है इसे प्रतिसंलीनता तप कहते हैं। बाह्य तप के अलावा अन्तरंग तप भी है। अन्तरंग तप है मन को विशुद्ध करना। प्रायश्चित्त भी तप है। आपसे कोई त्रुटि हो गई उसे यथावत् कह देना और उसका शुद्धिकरण करना मन का तप है, प्रायश्चित्त तप है।

पाप करने वाले बहुत हैं, कहने वाले कोई-कोई मिलेंगे और यथावत् कहने वाले विरले होंगे। किसी डॉक्टर से रोग का निदान कराना

हो तो बढ़ा-चढ़ा कर कहा जाता है, पाप कहना हो तो घटा कर कहा जाता है। कभी मजबूरी में कहना भी पड़ा तो पाप अपने ऊपर डालने के बजाय दूसरों पर डालने का प्रयास चलता है। मन को विशुद्ध करना हो तो ऐसा नहीं होता। विनय भी तप है। वैयाकृत्य भी तप है। स्वाध्याय भी तप है।

आचार्य भगवन्त ने जीवनभर स्वाध्याय तप का आधोष किया। स्वाध्याय तप ने कितने ही लोगों के जीवन में परिवर्तन का संचार किया है, कितने ही ज्ञानी बने हैं, कितने ही देशविरति बने हैं। ध्यान भी तप है। एक दिन सबको जाना है। रोते-रोते जाने के बजाय तन की ममता घटाएँ, ममता को मार कर छलेंगे तो जाते समय रोना नहीं आयेगा। आप हँसते-हँसते जायेंगे। ममता रहेगी तो हाय-हाय रहेगा। इसलिए अन्तरंग और बाह्य तप आचरणीय हैं। ये कर्मों का विशेषधन करने वाले हैं, विकार घटाने वाले हैं आत्मा को विशुद्ध बनाकर परमात्मा बनाने वाले हैं। तप के स्वर को समझकर जो भी तप का आचरण करेंगे वे सुख-शान्ति एवं आनन्द प्राप्त करेंगे।



## तप के प्रति श्रद्धा और प्रेम

(13 सितम्बर, 1996 को अजमेर चातुर्मास में लाखन कोटड़ी स्थित महावीर भवन में फरमाये गये इस प्रवचन में सहज शैली में तप का महत्व बताते हुए सम्यक् तपाराधन की महती प्रेरणा की गई है।)

### तप : कर्म निर्जरा का कारण

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व का आज चौथा दिवस है। मोक्ष मार्ग के चार चरण ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप हैं। इनमें तप का स्थान चौथा है। वीतराग भगवन्तों की वाणी में-

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्हे।  
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेणं परिसुज्ज्ञई ॥

उत्तरा.अ. 28 गाथा 35

पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बताने वाला ज्ञान है। विनाशी-अविनाशी का विवेक कराने वाला ज्ञान है। दर्शन, विनाशी से मन हटाता है, अविनाशी पर श्रद्धा जगाता है। ‘चरित्तेण निगिण्हाइ’ अर्थात् चारित्र कर्म के आस्वाँ के दरवाजे बन्द कर रखता है। जान लिया, मान लिया, आने वाले कर्मों को रोकने हेतु चारित्र में चरण भी बढ़ा लिया, फिर भी संचित कर्म का परिशोधन तप के बिना नहीं हो सकेगा। अनन्त-अनन्त कर्मों का संग्रह है, उसे तप के माध्यम से खपाया जा सकता है-

जहा महातडागस्स सन्निरुद्धे जलागमे ।  
उस्मिंचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे ॥

उत्तरा.अ. 30 गाथा 6

उत्तराध्ययन सूत्र के तप-अध्ययन में इसकी महिमा बतलाई है। विवेचन में कहा गया है कि कर्मों को आने का मार्ग बन्द करने के बाद जैसे तालाब में सिंचित जल को उलीच-उलीच कर बाहर निकाला जाता है एवं शेष बचे जल को धूप आदि से सुखाकर उसे निर्जल बनाया जाता है इसी तरह संचित कर्मों को खपाया जाता है।

**भवकोडियसंचियं कमं तवसा निजरिज्जइ ।** उत्तरा.अ. 30 गाथा 6

करोड़ों भवों के संचित कर्म हैं। तप उन्हें समाप्त करता है खपाता है, आत्मप्रदेशों से अलग करता है।

### तप : एक पथ्य

तप पथ्य है। आचार्य भगवन्त (श्री हस्तीमल जी म.सा.) की भाषा में कहूँ-रोग को जानने का काम चिकित्सक करता है, श्रद्धा करने का काम व्यक्ति जिसे रोग है वह करता है, दवा रोग को बढ़ने से रोकती है और पथ्य उसे जड़मूल से समाप्त करता है। एक आचार्य ने तो यहाँ तक कहा है कि-पथ्येऽसति गदार्थस्य किमौषधनिषेवनं। कहते हैं-रोग को समाप्त कर नीरोग बनना चाहते हो तो उसमें दवा से अधिक पथ्य काम करता है। यदि पथ्य नहीं तो दवा लेने का क्या प्रयोजन ? पथ्य नहीं तो सैकड़ों दवाएँ ली जायें तो भी रोग का जड़मूल से निकन्दन नहीं हो सकता। भगवन्त कहा करते थे- ‘आँवला भी खावे और आमली भी खावे।’ कई लोग वृद्धावस्था में वायु-विकार दूर करने के लिए ऋतु परिवर्तन के समय चैत्र और आसोज में आँवलक लेते हैं। आँवला वायु दूर करने वाला है। आँवले के साथ यदि इमली का सेवन किया जा रहा है तो विकार घटने की बजाय बढ़ेगा, इसका अनुभव

आपको होगा। आँखें के साथ इमली सेवन करने से सूजन (सौथ) बढ़ जायेगी। इसी तरह जान लिया है, मान लिया है, व्रत-चारित्र के माध्यम से पाप रोके भी जा रहे हैं, पर तपरूप-पथ्य का पालन नहीं किया गया तो यह भव-रोग मिटने वाला नहीं है।

### तप : धर्म का प्राण

भारतीय संस्कृति में ऐसा कोई धर्म नहीं, पंथ नहीं, मजहब नहीं, जिसमें तप का समावेश नहीं किया गया है। भगवान् ऋषभदेव से भगवान् महावीर तक जितने भी तीर्थकर हुए हैं उनमें कहीं छह माह का तो कहीं पाँच माह पच्चीस दिन का अभिग्रह रूप तप का वर्णन सुनने को मिलता है। तप धर्म का प्राण है। जैसे शरीर में ऊष्मा प्राण है ऐसे ही धर्म का प्राण तप है। जब तक शरीर में गर्मी है तो चलना भी है, देखना भी है, सुनना भी है। इन्द्रियों की और अवयवों की हलचल ऊष्मा के सहारे है। जिस दिन शरीर से ऊष्मा निकल जायेगी अर्थात् शरीर ठण्डा पड़ जायेगा तो शरीर काम का नहीं रहेगा, जीव उसे छोड़ देगा। मतलब, ऊष्मा के सहारे शरीर चलता है। इसी तरह तप के सहारे धर्म आगे बढ़ता है।

तप की महिमा में अभी आपने अनेक बातें श्रवण की हैं। तप की परिभाषाएँ भी आपके सामने रखी गईं-(1) इच्छा का निरोध करना तप है (2) कर्मों को तपाना तप है। तप के दो भेद हैं-एक बाह्य तप एवं दूसरा अन्तरंग तप। बाहर का तप शरीर के विकारों को घटाता है जबकि अन्तरंग तप मन के विकारों एवं कषायों को दूर करता है।

तप के जितने शूरमा जैन धर्म में मिलेंगे शायद अन्यान्य धर्मों में इतने नहीं मिलेंगे। तप की आराधना में जितने जैनी आगे हैं, दूसरी जगह कम मिलेंगे। नीति की कहावत है-

यद् दूरं यद् दुराराध्यं यच्च दूरे प्रतिष्ठितं ।

तत् सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमः ॥

कहते हैं-जो दूर है, मुश्किल से मिलने योग्य है, जो समाधि-स्वभाव-आत्मभाव तप के माध्यम से मिलाया जा सकता है वह दूसरे किसी साधन से नहीं मिलाया जा सकता। तप से कर्म खपाने वाले चार-चार माह तक शरीर की ममता को छोड़कर तप करते हैं। कोई कुए की पाल पर खड़ा है, कोई साँप की बाँबी पर तो कोई सिंह की गुफा के दरवाजे पर। आज भी ऐसे तप करने वाले हैं।

वैदिक उक्ति है- ‘अन्नं वै प्राणाः।’ अर्थात् अन्न प्राण है। मारवाड़ी भाषा में कहूँ-

**अन्नजी नाचे, अन्न जी कूदे, अन्नजी करे मटरका**

अन्न के सहारे शरीर की गतिविधियाँ चलती हैं उस अन्न को आठ-दस दिन तक के लिए नहीं, मासक्षण और उससे ऊपर तप करने वाले कई माह तक छोड़ देते हैं। आचार्य भगवन्त कहा करते थे-भरी सर्दी में किसान को पाणत करते सर्दी नहीं लगती। कोई हमारी बात कहे तो हम भी एक कपड़े की बजाय दो बिछाकर और एक चद्दर की बजाय दो चद्दर ओढ़कर बैठते हैं पर वह किसान धोती का पल्ला ऊपर करके पानी में खड़ा रहकर पाणत करता है और मल्हार गाता है, उसे पूछो तो कहता है सर्दी नहीं लगती है। सर्दी से डरे तो अन्न कहाँ से होगा ?

मैंने बचपन में देखा है, गाँवों के लोग छोटे-छोटे बच्चों को शरीर खुला छोड़कर तपाते थे। आज का रिवाज तो उल्टा हो गया। आज यह तो जानते ही हैं कि लोहे को जितना-जितना तपाया जायेगा वह फौलाद बनता है, सोने को तपाने से उसमें निखार आता है। दूध तपाने से मावा बनता है, कच्चा अन्न तपाने से खाने योग्य खाद्य, समुद्र का पानी तपकर बादल बनकर बरसता है। उसी तरह सर्दी-गर्मी में बच्चे जितने तपेंगे उतने सशक्त बनेंगे।

## तप के प्रति प्रेम

आज स्थिति कुछ और है, नीचे मौजे हैं, ऊपर टोप है, अन्दर स्वेटर है फिर भी कहते हैं सर्दी से बाबू साहब को जुकाम हो गया। लेकिन भरी सर्दी में गाँवों के बच्चे जो धूल में खेलते हैं उनको जुकाम क्यों नहीं होता? मैं पूछूँ-बच्चे को जुकाम होता है या आप उसे कच्चा रखकर जुकाम बुलाते हैं। न जाने कैसा-कैसा लाड़ करते हैं। आपके लाड़ के कारण जो बच्चे सक्षम होने चाहिये वे कच्चे रहते हैं। मैं कह रहा था-किसान को पानी में खड़े रहते भी सर्दी नहीं लगती। एक माँ है, भरी सर्दी में अपने कपड़े हटाकर बच्चे को ढ़कती है। उस माँ को सर्दी का अहसास नहीं होता। कभी बच्चा बीमार हो गया तो रात-रात भर जागती है, उसे नींद का अहसास नहीं होता। इसका कारण है माँ को सर्दी में सर्दी नहीं सताती, गर्मी में गर्मी नहीं सताती। एक सैनिक जो मोर्चे पर जाता है उसे न जाने कितने बार सहने पड़ते हैं, शरीर पर घाव हो जाते हैं, फिर भी वह सीना तान कर खड़ा रहता है। क्यों? उसे देश के प्रति प्रेम है। किसी को पेट के प्रति, किसी को बच्चे के प्रति किसी को देश के प्रति, किसी को परिवार के प्रति, प्रेम है तो उसे न तकलीफ का अहसास है न वह कष्टों से घबराता है। तप के प्रति भी ऐसा ही प्रेम चाहिये। जिसे तप का प्रेम है उसका भले ही बी.पी. कम हो रहा है, परिवार वाले चिंतित हैं, लोग कहते हैं अब तो पारणा कर लो, पर तप साधना करने वाला कहता है-‘बाबजी! दो दिन तो और करूँगा।’ वह तप में क्यों बढ़ रहा है? तप के प्रति प्रेम है। आपका पुत्री पर प्रेम जगता है तो उसके लिए जब घर से विदा करते हैं तो तिजोरी के दरवाजे खोल देते हैं। उस समय कहा जाता है-भाई! खर्चे की चिन्ता मत करो। आए हुए मेहमानों की खातिर में कोई कसर नहीं रहनी चाहिये। उस समय भावना रहती है यह काम निपट जाये, फिर कोई चिन्ता नहीं है। प्रेम जगता है तो आदमी शरीर के कष्टों की परवाह नहीं करता। तप

पर जब प्रेम जगता है तो फिर भले ही उठने की शक्ति नहीं तो भी कहता है उन्तीस हो गए, एक में क्या जीव जा रहा है। एक तरफ यह भावना है और दूसरी तरफ एक चाय में थोड़ी देर हो जाये तो लड़ाई हो जाती है।

### **व्यसन छोड़ना भी तप**

तप के प्रति आपका प्रेम उमड़ना चाहिये। यह मानव-जन्म मिला, आर्य-क्षेत्र मिला, वीतराग-वाणी का संयोग मिला, पर्वाधिराज पर्युषण का पावन-प्रसंग भी उपस्थित है अब भी नहीं जगोगे तो कब जगोगे? तप का जिनको प्रेम हो गया, वे आगे बढ़ रहे हैं। चार-चार साल के बच्चे तेला कर जाते हैं। उनको मना भी करो तो वे मानते नहीं। आप उपवास-बेले-तेले नहीं कर सको तो कम-से-कम जो विकार बढ़ाने वाले हैं उन व्यसनों को तो छोड़ो। व्यसन शरीर का नाश तो करते ही हैं आपके कुल को आपके धर्म को कलंकित भी करने वाले हैं। आप तप नहीं कर सकते तो व्यसन छोड़कर भी तप-साधना में आगे बढ़ सकते हैं।

मुझे एक ठाकुर साहब की बात याद आ रही है। वे चिलम पीते थे। उनसे कहा गया-चिलम पीना छोड़ दो। ठाकुर साहब बोले-‘एक हाथ पकड़ने लुगाई ल्यायो वा तो छूटे कोनी, दो हाथ से जिणणे पकड़ी हूँ वा कीकर छूटे? आज देखा-देखी व्यसन के रोग बढ़ रहे हैं। पान, जर्दा, गुटखा खाने में कौनसा लाभ है? मैं यह इसलिये कह रहा हूँ कि छोड़ने वाले अन्न छोड़ रहे हैं, छोड़ने वाले घर छोड़ देते हैं, आप आरम्भ-परिग्रह छोड़ने वाले महाब्रतियों को देखकर कम से कम बुरी आदतों को और विकारों को तो छोड़ें।

### **मूल है श्रद्धा**

मैं व्यसन छोड़ने को भी नाम से कह रहा हूँ। आज कई तेले वालों के पोरसी है, उनका समय भी बढ़ रहा है। भाई ढाबरिया जी पैंतीस के उपवास में बढ़ रहे हैं। उनका शरीर देखो तो...। सं. 2034 में इक्सठ की तपस्या करके

जयपुर से एक बहन आई, पाण्डाल में पहुँची। यहाँ आचार्य भगवन्त (पूज्य हस्तीमलजी म.सा.) का व्याख्यान चल रहा था। बहिन ने वन्दन करना प्रारम्भ किया, एक-दो-तीन नहीं, आठ-दस-बार ह नहीं उसका वन्दन चलते देखकर आचार्य भगवन्त ने हाथ ऊँचा किया, बोले बहन बहुत हो गया पर उसने एक सौ आठ बार वन्दन किया। आपके उपवास कितने? आज कई भाई विधियुक्त वन्दन नहीं करते इसके पीछे यह नहीं कि उन्हें कायदा क्या है? इसका ध्यान नहीं, पर भीतर में वह श्रद्धा और विश्वास नहीं जगा। जिस दिन आपमें प्रेम जग जायेगा आपको वन्दन भारी नहीं लगेगा। मद्रास से एक भाई आया। उस भाई के दोनों हाथ पकड़ कर लाने वाले ला रहे थे, पर वह एक-एक हाथ को सहारा देकर पाँचों अंग नमा कर तीन बार वन्दन कर रहा था। उसके लड़के रोकते हैं कि आपके तकलीफ हो जायेगी, पर वह कहता है इन चरणों का फिर कब मौका मिलेगा? आज वन्दन जैसी क्रिया में शिथिलता क्यों आई? आपको सुनाया जा रहा है मोक्ष-मार्ग में चरण बढ़ाने हेतु ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप का रूप। किन्तु जब मूल ही घट्टा जा रहा है तो फल-फूल कैसे प्राप्त होंगे?

मूल है श्रद्धा। श्रद्धा जग जायेगी तो तप आपको भारी नहीं लगेगा। श्रद्धा नहीं है तो तप भारी है। कल एक भाई को प्रतिज्ञा करवाई। उसने व्यसन-सेवन नहीं करने का नियम तो लिया पर वह पूछता है-बाबजी! नियम कल से दिलाया या आज से? आज-आज तो व्यसन कर सकता हूँ न। जब उसे छोड़ना ही है तो कल से हो या आज से क्यों नहीं छूट रहा है?

### तप के विभिन्न रूप

तीर्थकर भगवान महावीर ने छोटे-बड़े हर जीव के लिए तप को आसान बताया है। अनशन भी तप है तो ऊोदरी भी तप है। अनशन करके भी तप किया जा सकता है तो भूख से थोड़ा कम खाकर भी तप किया जा

सकता है। कम खा कर, कम बोलकर भी तप हो सकता है। आपके पहनने के लिए कपड़ों की पेटियाँ भरी हैं, आप इस वर्ष के लिए कपड़ा नहीं लेंगे तो वह भी तप है वस्त्र, पात्र, सबमें ऊणोदरी तप हो सकता है। अगर आप क्रोध को कम करोगे, अहंकार को कम करोगे, लोभ को कम करोगे तो यह भी तप है। तप बच्चे-बूढ़े सब कर सकते हैं और तप रोज किया जा सकता है।

सदगृहस्थ के छह कर्तव्य हैं, उनमें तप भी एक है। गृहस्थ रोज तप कर सकता है। वह तप चाहे फिर अनशन हो, ऊणोदरी हो, वृत्तिसंक्षेप हो। आपने सुना है कैसे-कैसे अभिग्रहधारी थे। इक्कीस मालपुए मिलेंगे तो लूँगा। उड़द के बाकले मिलेंगे तो लूँगा। दूसरी शादी की हुई हो पल्ला से पल्ला जुड़ा हो और वह ब्रह्मचर्य का खंद ले तो पाणा करूँगा। वे कैसे त्यागी थे और कैसे थे वे भक्त ? वे तपस्वी थे-बालचंद जी महाराज और देने वाला था साण्ड परिवार। यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं आपको करना हो तो खंद करा दो। हिम्मत देखिए खंद करना था तो दूसरी शादी क्यों की ? महाराज पधारे हैं भावना भाता है, पर महाराज कुछ नहीं लेते हैं। महाराज पधारे हैं, खाली नहीं जायें, इस भावना से उसने कह दिया। महाराज का अभिग्रह यही था कि दूसरी शादी किया हुआ हो, पल्ले से पल्ला जुड़ा हो और वह खंद करे तो आहार लूँगा। भक्त की हिम्मत देखिये, उसकी श्रद्धा देखिये, भावों के परिणाम देखिये।

आप भी करने को कर रहे हैं। आपके यहाँ ग्यारह रंगी चल रही है, यह भी तप है। यह तप भी तब होता है जब प्रेम जगता है। प्रेम नहीं जगे तो अमुक काम है इत्यादि कोई न कोई बहाना निकालने में आप माहिर हैं।

### प्रकृति के विपरीत का त्याग करें

आप समाज की स्थिति को देखिये। किस तरह शादियाँ होती हैं, कितना और कैसे खर्च होता है ? भोजन की मनाई मैं नहीं करता, पर रात्रि-

भोजन छोड़ने की बात कह रहा हूँ। सामूहिक रात्रि-भोजन छोड़ने में भी सौ तरह की बातें खड़ी क्यों होती हैं? सामाजिक स्तर पर यदि धर्म का गौरव आप प्रदर्शित नहीं कर सकते तो कहना होगा तप के प्रति, समाज के प्रति अभी प्रेम जगा नहीं।

तप के प्रति प्रेम जगाइये। तप के प्रति प्रेम नहीं होगा तो आपका खाना-पीना व्यवस्थित नहीं रहेगा। कई ऐसे हैं जो चार-चार बार खा लेते हैं। चाय एक-दो बार नहीं आठ-आठ, दस-दस बार पी जाते हैं। अब उनका शरीर ठीक कैसे रहेगा? दिन भर जिसका मुँह चलता रहे तो उसके दाँत जो चाँदी की तरह सफेद रहने चाहिये, गुटखे से पीले हो जाते हैं। उससे पूछो-दाँतों की खराबी क्यों हुई?

आपमें से बहुत से तप के प्रति प्रेम वाले भी हैं। धर्म की दृष्टि से, कर्म निर्जरा की दृष्टि से, स्वास्थ्य की दृष्टि से तप उपयोगी है। तीर्थकर प्रभु महावीर ने कहा-इच्छाओं का जितना-जितना आप निरोध करेंगे उतने-उतने धर्म की आराधना में लगेंगे।

बाह्य-तप शरीर तपाने वाला है, अन्तरंग तप मन एवं आत्मा की शुद्धि करता है। आप इतना नियम करें कि जो आपकी प्रकृति के विपरीत है उसे ग्रहण नहीं करें तो भी तप में नम्बर लिखा सकते हैं। तप करेगा वह सुख शान्ति आनन्द प्राप्त करेगा।



## जीवन-निर्माण के तीन सूत्र

(27 अक्टूबर, 1996 को अजमेर में श्रावक संघ की मीटिंग के पूर्व फरमाये इस प्रवचन में जीवन-निर्माण के तीन सूत्रों का विवेचन किया गया है। तीन सूत्र हैं-  
(1) भोजन संयम-यात्रा के लिए हो (2) धनार्जन के साथ दान भी हो (3) जीवन का लक्ष्य धर्म हो।)

### प्राप्त का उपयोग

तीर्थकर भगवान महावीर की आदेय-अनुपम वाणी में ठाणांग सूत्र के माध्यम से प्राप्त योग का उपयोग करने की बात कही गई है। योग पाना उतना कठिन नहीं जितना कि पाये हुए योग का सही उपयोग करना। उपयोग करने वाले ही माटी से सोना बनाते हैं, वस्तु की कीमत और प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं, मोल वाली वस्तु को अनमोल बनाते हैं। तराजू में तोला जाने वाला लोहा जब कारीगर के हाथ में जाता है और कारीगर उसका उपयोग करके पुर्जा बनाता है तो एक-एक पुर्जा सैंकड़ों रूपयों का होता है। माटी में मिले हुए पत्थर का उपयोग करने वालों ने पत्थर को साफ किया, घर्षण किया, तराशा तो उस पत्थर की कीमत चाँदी के मुकाबले भी अधिक होने लगी।

प्रश्न है वस्तु कीमती नहीं है फिर भी उसे अनमोल बनाया जा सकता है। जो अनमोल है आज तक जिसका कोई मोल नहीं कर पाया, उसका दुरुपयोग किया गया तो उसकी महत्ता समाप्त हो जाती है।

मानव यदि ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुण धारण करे तो अनमोल हो

जाता है। धारण करने की बात क्या कहूँ, चारित्रवान् को देखने मात्र से शान्ति मिलती है। उनके सान्निध्य में बैठने के साथ हृदय गदगद होता है। उनके सान्निध्य में जितना समय निकले, सार्थक होता है। इसके विपरीत मनुष्य अपने जीवन का दुरुपयोग करता है, लुटेरा बनता है, व्यभिचारी बनता है, कषाय की आग में अपने-आपको जलाकर कलुषित बनता है तो उसके नजदीक किसी के आने की हिम्मत नहीं होती। उसका लाल चेहरा, बिगड़ी शक्ल-सूरत देखने के साथ आदमी लौट जाता है। आचार्यों की भाषा में कहूँ तो वह पानी से जल जाता है, आग से जलने की बात सब कहते हैं, पर पानी से जल गया यह भी प्रयोग संभव है। आग की संगति करे तो आग बुझाने वाला एवं प्यास बुझाने वाला पानी भी फफोले कर देता है। पानी का एक यह रूप है तो दूसरा रूप यह भी है कि एक तालाब के किनारे पहुँचने वाला व्यक्ति पानी नहीं पीने पर भी तालाब के किनारे की ठण्डी हवा लगने मात्र से शान्ति का अनुभव करता है। वीतरागवाणी का आलम्बन लेकर तीन बातें कही जा रही हैं-

**यात्रार्थं भोजनं येषां दानार्थं च धनार्जनं ।**

**धर्मार्थं जीवनं येषां, ते नराः स्वर्गागामिनः ॥**

अर्थात् जिनका भोजन संयम-यात्रा के लिए है, जो धन का अर्जन दान के लिये करते हैं तथा जिनका जीवन धर्म के लिए है वे मनुष्य अपना कल्याण करते हैं।

### **यात्रार्थं भोजनम्**

धर्म-पालन करने के लिए, संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के लिए भोजन है। भोजन का प्रयोजन संयम मय जीवन-यात्रा है। संयमी साधक का चिन्तन रहेगा कि उसके लिए आरम्भ-समारम्भ न हो। वह सोचता है-“मैं आरम्भ करने, कराने और अनुमोदन रूप वृत्ति को छोड़ूँ।” संयमी साधक, संयम-यात्रा में रुकावट रूप दोष युक्त भोजन को अच्छा नहीं मानता। हलवा नहीं, छाछ ही सही, गर्म नहीं ठण्डी ही

सही, ताजी नहीं, बासी ही सही, उसके लिए वही अनुकूल है जो संयम यात्रा में सहायक हो एवं निर्देष हो।

मैं संयम की बात कह रहा हूँ। यह हमारे लिए तो है ही, मैं आपको भी (श्रावकों को भी) अपने साथ जोड़कर कह रहा हूँ। आप भी साधक हैं। आप श्रमणोपासक हैं, इसलिए आपके खाने में तामसी प्रवृत्ति वाले पदार्थ और अखाद्य पदार्थ न आ जायें, जो आपके मन में विकार उत्पन्न करें और साधना-मार्ग से मन भटकावें। आप-हम एक विचारधारा वाले हैं, ऐसा कह दूँ तो कोई अनुचित नहीं। फरसना में अन्तर है, पर श्रद्धा में-प्ररूपण में और वीतरागता के लक्ष्य में अन्तर नहीं है। आप चाहें श्रावक हों, हम चाहे श्रमण हों, हम अकषायी एवं अनाहारक भावना को लेकर चल रहे हैं। चाल में अन्तर अवश्य है। श्रमण तेज चाल से चल रहा है, श्रावक धीमी चाल से चल रहा है, किन्तु दोनों की चाल में विपरीतता नहीं है। हर साधक चाहे वह साधु हो या श्रावक, सोचे- ‘मैं अपने व्रतों में, नियमों में, मर्यादा में जागरूक रहूँ और व्रत-नियमों का सम्यक् पालन करूँ। मेरे द्वारा ऐसा कोई काम नहीं हो जिससे संघ की किसी मर्यादा का अतिक्रमण होता हो।’

### सम्मलेन और समूह में भेद

आज श्रावक-सम्मेलन है। सम्मेलन का मतलब है अच्छी तरह मिलना। मिलना कैसा? दूध के साथ पानी का भी मिलना होता है और दूध के साथ मिश्री का भी मिलना होता है। आप दूध के साथ मिश्री की तरह मिलें। विचारों के साथ सम्यक् आचार का मेल हो, कुविचारों का नहीं।

तीर्थ तारने की नौका है। इसमें बैठने वाला गंतव्य की ओर बढ़े, झंझावातों को पार करे, और विषय-कषाय रूप पानी को अपनी नाव में न आने दे। आप इस युक्ति और भावना के साथ चलते हैं तो कहना होगा, यह आपका सच्चा सम्मेलन है और यदि यह भावना नहीं, तो सम्मेलन नहीं समूह कहलायेगा। समूह कई जगह इकट्ठे होते हैं। सैंकड़ों गायें एक साथ मिल जाती

हैं, बन्दर भी मिल जाते हैं, और जानवर भी मिलते हैं आज कई संगठन भी हैं जो मिलते रहते हैं। मजदूरों का संगठन है, सफाई कर्मियों का संगठन है, राजकीय कर्मचारियों के भी संगठन हैं, व्यापारियों के भी संगठन हैं। ये संगठन हैं, संघ नहीं। संघ-सम्मेलन का तात्पर्य है विचार और आचार का सम्मेलन।

### दानार्थ च धनार्जनम्

इसीलिए संघ रूप जीवन की क्रिया में धनार्जन का प्रयोजन दान बताया है। धन का अर्जन दान के लिए हो। अर्जन है, किन्तु विसर्जन के लिए। गृहस्थ का प्रमुख कर्तव्य है दान। धन मिलाया जाये, किन्तु देने का लक्ष्य रहे। समाज में सेठ भी है तो पेट भी है। भगवन्त (आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.) फरमाया करते थे- ‘सेठ नगर का पेट।’ पेट आहार लेता है तो वह पाँवों को, हाथों को, कान-आँख-नाक जिसको जैसी आवश्यकता है, रस के माध्यम से देता रहता है। यही सेठ का श्रेष्ठत्व है। धन का अर्जन मात्र भोग भोगने के लिए नहीं, इन्द्रियों के पोषण मात्र के लिए नहीं, केवल खून बढ़ाने के लिए नहीं, अपनी चमड़ी को चमकाने के लिए नहीं, अपितु ‘सेठ नगर का पेट’ की उक्ति साकार करने के लिए भी है। जो देता है वह खाली नहीं रहता है। जो भरता ही भरता रहे तो वह सड़ जाता है। इसलिए पाया है तो दें।

### धर्मार्थ जीवनम्

जीवन किसलिए? धर्म-साधना के लिए। यह मात्र कहने और बोलने की बात नहीं हो। मैं इसके साथ एक कदम और बढ़ा रहा हूँ। आप मात्र सम्यगदर्शनी नहीं, श्रद्धालु नहीं, ज्ञानी नहीं श्रमणोपासक हैं, इसलिए धर्म बढ़ाइये, पाप घटाइये। जितनी-जितनी मात्रा में पाप बढ़ते जा रहे हैं उतनी-उतनी मात्रा में धर्म और धर्मी संगठित नहीं होंगे तो मुकाबला नहीं कर पायेंगे। जितने विकार बढ़ रहे हैं उतनी मात्रा में यदि सदाचार नहीं होगा तो समस्या हल नहीं होगी।

सहयोग कीजिये । धर्म का सहयोग जरूरी है । स्वयं सहयोग कीजिये, दूसरे को सहयोगी बनाइये । व्यक्ति अकेला जितना नहीं कर सकता, उससे कई गुना अधिक संगठन कर सकता है । अकेला-तिनका कमरे को झाड़ नहीं सकता, पर सभी तिनके एक सूत्र में बाँध जायें तो सफाई की जा सकती है । एक डोरे से हाथी नहीं बाँधा जा सकता, पर डोरों के समूह से बना रस्सा निरंकुश मतवाले हाथी को भी बाँध सकता है ।

आपको धर्म से बँधने की जरूरत है तथा अधर्म से हटने की आवश्यकता है । अधर्म का सहयोग मत कीजिए । धर्म में भाई-भतीजावाद मत लाइये । अपना-पराया मत देखिये । कोई अपना नहीं, अपना तो धर्म है । ‘जिणवयणे अणुरत्ता’ जो जिनेन्द्र भगवान के वचनों का अनुरागी है, वह चाहे जिस जाति का हो, कुल का हो, वह अपना है । जिनेन्द्र भगवान के वचनों का अनादर करने वाला अपना नहीं, पराया है ।’

अपने-पराये का यह सिद्धान्त धर्म तक ही है, ऐसी बात नहीं, यह सिद्धान्त घर के लिए भी है । आपका लड़का ही क्यों न हो, यदि वह आपके खानदान को कलंकित करने वाला है तो आप क्या करेंगे ? लड़का कुल की मर्यादा के विपरीत आचरण करता है तो ऐसे पिता भी हैं जो लड़के को छोड़ देते हैं । अपना खून है वह भी यदि मर्यादा के विपरीत काम करता है तो उसको अलग करने में, छोड़ने में, आपको संकोच नहीं, तो जो अधर्मी हैं, अधर्म का पोषण करते हैं आप उनका सहयोग मत कीजिये ।

### आचार्य श्री हम्मीरमल जी

धर्म में जीवन जीने वाले महापुरुष की संक्षेप में बात कहूँ । आज ही के दिन कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को शासन की सेवा में स्वयं विनयपूर्वक तीसरा मनोरथ पूरा करने वाले महापुरुष हुए आचार्य पूज्य श्री हम्मीरमल जी महाराज । उस महापुरुष के पाँच चातुर्मास आपके इस शहर अजमेर में हुए । जन्म पाया उन्होंने नगीने नागौर में । कहावत है- ‘सियालो खाटू भलो, उनाला

अजमेर।' खाटू सर्दी में साताकारी है और अजमेर गर्मी के लिए साताकारी माना जाता है। किन्तु 'नगीनो नित रो भलो।' सर्दी और गर्मी दोनों मौसम में वह अनुकूल है। यहाँ गिन्नाणी बछतसागर आदि तालाब हैं, इसलिए वर्षा नहीं भी हो तो गर्मी नहीं सताती।

वि.सं. १११५ में नागौर की स्थापना हुई। न आगौर इति नागौर। पर वहाँ चारों तरफ आगोर ही आगोर हैं। गाँधी परिवार में आचार्य श्री हम्मीरमल जी महाराज का जन्म हुआ। पूर्व की पुण्यशालिता थी, इसलिये संस्कार लेकर आए थे। धर्म के संस्कार जन्म से थे, फिर माता का उन्हें सहयोग मिला।

हमें संस्कारी बनने की आवश्यकता है। पहले हम संस्कारी बनें, दृढ़ श्रद्धावान बनें, धर्मी बनें। आवश्यक है कि ओसवाल-भोपाल और जैन कहलाने वाले पहले सही मायने में जैन बन जायें।

### सम्प्रदाय और संघ

आज जरूरत क्या है? पहले घर सुधारा जाये। घर वालों को संस्कार देने की पहली आवश्यकता है। भले ही आज अलग-अलग सम्प्रदायें हैं, किन्तु वे तो व्यवस्था का रूप हैं। हमारे पूर्वज अलग-अलग सम्प्रदायों में रहकर भी जहाँ जाते थे वहाँ यश-कीर्ति फैलाते थे। आज घर की मर्यादा को सम्हालने के बजाय संख्या में इकट्ठे भले हो जायें, परन्तु सिद्धान्त एवं मर्यादा या अनुशासन में धर्म के बिना जैनी तिरस्कृत हो रहे हैं।

सम्प्रदाय छोड़कर संघ भी बन गये, पर बने कैसे? नारंगी की तरह। बाहर में एकता है, भीतर में वही अलग-अलग फाँके हैं। बाहर में संग है, भीतर में वही अलग-अलग रंग है। संघ में अगर आचार-विचार और संस्कृति के अनुकूल संगठन और वात्सल्य नहीं बढ़ेगा तो तूँ भी आ जा, तूँ भी आ जा का रूप चलता रहेगा। अगर आप आचार-विचार-व्यवहार देखकर साथ होंगे तो आप धर्म की सौरभ बढ़ा सकेंगे। यह तब होगा जबकि आप अहं से दूर रहें। आपमें अहं होगा तो आपके साथ आने वाला ही क्या, साथ रहने वाला भी साथ छोड़ जायेगा।

मैं पूज्य आचार्य श्री हम्मीरमल जी महाराज के सन्दर्भ से अपनी बात कह रहा था। उनकी माता का नाम था ज्ञानदेवी। माता से उन्होंने ज्ञान पाया-‘बेटा! यह जीवन भोग के लिए नहीं है। यह अनमोल तन अनन्त-अनन्त पुण्यवानी से मिला है, इस तन का एक मात्र लक्ष्य धर्म की आराधना करना है।’ आप सुगति से जीना चाहते हैं तो आध्यात्मिकता में गति लाइये, आगे बढ़िये। अगर इसमें गति आई तो ये भौतिक ऋद्धियाँ घास की तरह स्वतः प्राप्त हो जायेंगी। इसलिए आप निर्मल संस्कारों को पुष्ट कीजिये।

पूज्य श्री हम्मीरमल जी महाराज ने ग्यारह वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण कर ली। सं. १८५२ में नागौर में जन्मे १८६३ में पीपाड़ में महासती-मण्डल का सुयोग मिला। क्रियोद्वारक आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की सेवा में बिराँटिया में माता ने लड़के को समर्पित कर दिया और स्वयं ने भी दीक्षा ले ली।

यह धर्म किसका? क्या मात्र बुजुर्ग वृद्ध पुरुषों का? मनोहरमल जी चंडालिया, वल्लभजी मुणोत, रूपचंद जी गाँधी का? यदि कभी शादी में जीमणवार का न्योता आवे तो छोटे बड़े सब तैयार हो जायें, लेकिन धर्मस्थान में आना हो तो अकेले आते हैं। फिर बच्चों को रंग कैसे लगेगा? किन्तु हम्मीरमल जी के साथ ऐसा नहीं हुआ। एकाएक लाल को माता ने संस्कार देने के साथ धर्मस्थान में प्रवेश करवाया। शिक्षा दी, तभी तो हम्मीरमल जी दीक्षार्थी बने और विनीतभाव से आचार्य भगवन्त के चरणों में समर्पित हो गए। उनकी विद्रूता, प्रवचनकला, समझाने की शक्ति से ये सब गुण होते हुए भी गुरुदेव रहे तब तक एक भी चातुर्मास अलग नहीं किया और सेवा में रहे। वे प्रवचन पटु थे, आगम की बात सरलता से रखते थे इसका नमूना कुम्भट जी (विनयचन्द जी) की चौबीसी से मिल रहा है-

चौबीस तीर्थ नाथ कीरत, गावताँ मन गह गहे।

कुंभट गोकुलचंद नन्दन विनय चंद इण पर कहे ॥

उपदेश पूज्य हमीर मुनि को तत्त्व निज उर में धरी ।

उन्नीस सौ छ के संवत्सर महास्तुति पूरण करी ॥

चौबीसी में कैसा रस है ? श्रावक की बनाई हुई चौबीसी को आज के संत श्रद्धा से बोलते हैं । इससे उस महापुरुष की प्रवचन कला का अनुमान होता है । धर्म के प्रति आकर्षित करके पद जोड़ने वालों में उनका विशिष्ट नाम रहा है । स्वाध्याय करने वाले पद जोड़ जायें, विशेष बात नहीं, किन्तु विनयचंद जी प्रज्ञाचक्षु थे । सुनने और चिन्तन करने से ज्ञात होता है कि एक-एक पद की रचना में सिद्धान्त का सार समाहित किया गया है ।

जो धर्म है वह अपना है । आचार्य पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने अपने सुयोग्य संतरन को आचार्य पद की चादर ओढ़ाते समय कहा था- “मैं तुझे यह दायित्व सौंप रहा हूँ, उसे दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ाना और कभी विपरीत स्थिति भी आ जाये तो अपना समभाव कायम रखना ।” आचार्य श्री हमीरमल जी महाराज ने परम्परा को कायम रखा ।

संसार विचित्र है । यह अच्छे-अच्छे त्यागियों को अहंकारी बना देता है, ऐसी स्थिति में भी समभाव बना रहा तो डगमगाने के अवसर से बचा रहा जा सकेगा । मैं यह कहकर अपनी बात समाप्त करूँ कि आप धर्मी बनिये । धर्म को दिन-दूना रात-चौगुना बनाने में सहयोगी बनिये । अधर्मी के प्रति समभाव रखकर उसे धर्म-मार्ग में लाइये । यह भावना है तो कहना होगा आपका संघ है, संगठन है ।

आप सुनकर ही नहीं, प्राप्त-योग का उपयोग करें तो सुनना भी सार्थक होगा । धर्म, चिन्तामणि रत्न है, इस सन्देश के साथ आप आगे बढ़ेंगे तो आत्मा से परमात्मा बन सकेंगे ।

## शान्ति का मन्त्र : संयम

(15 सितम्बर, 1996 को अजमेर चातुर्मास में फरमाया गया यह प्रवचन संयम को शान्ति का मन्त्र बताते हुए उसे आत्म-उत्थान एवं समाज-उत्थान दोनों में सहायक प्रतिपादित कर रहा है।)

तीर्थकर भगवान महावीर के द्वारा दिया गया संयम का आधोष आज भी उतना ही उपकारी है, उतना ही हितकारी है जितना अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व था। जो हितकारी होता है, वह कभी पुराना नहीं होता, हमेशा नया होता है, तरोताजा होता है, जीवन निर्माता होता है। जैसे यह सच है कि प्रकाशक के बिना प्रकाश नहीं होता, जैसे यह सच है कि सत्य के बिना विश्वास नहीं होता, जैसे यह सच है कि आकाश के बिना अवगाहन नहीं होता इसी तरह यह भी सौ टका सही है कि संयम के बिना सुख नहीं होता। समाधि का, शान्ति का, समरसता का एक मन्त्र है, एक सूत्र है जिसे भगवान महावीर ने संयम कहा है।

### असंयम से विनाश

इसीलिए एक निर्धोष है—पडिक्कमामि एगविहे असंजमे। यदि मैंने अपने जीवन में किसी प्रकार के असंयम का आचरण किया हो तो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ, पीछे हटता हूँ, पश्चात्ताप करता हूँ। यह प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त इसलिये कर रहा हूँ कि संयम जीवन है, संयम धन है, संयम शोभा है। संयम असली रत्न है। जहाँ संयम है वहाँ शान्ति है। जहाँ असंयम है वहाँ

दुःख है। हजारों व्यक्तियों में एक-दो का असंयम भी प्रतिष्ठा में आँच लाता है, कलंक लगाता है। यहाँ हजार सुनने वाले बैठे हैं। अगर इनमें दो आदमी भी लड़ जायें, बोलने लग जायें, संयम खो दें तो वे दो आदमी हजार आदमियों के सुनने में बाधा देने वाले बन सकते हैं। एक मछली असंयम से भागती है—दौड़ लगाती है तो सारा तालाब गन्दा कर देती है।

भारत का निवासी कभी विदेश की लाइब्रेरी में पढ़ने के लिए पुस्तक लेकर बैठा। उसे कुछ चित्रों का आकर्षण हुआ और उसने पुस्तक में से चित्र फाड़ लिए। उस एक के असंयम ने लन्दन की लाइब्रेरी के बाहर बोर्ड लगवा दिया कि भारतीय चोर होते हैं। उन्हें पुस्तक नहीं दी जाये। सामान्य सी, किन्तु अनपेक्षित इच्छा को नहीं रोकना एक व्यक्ति, एक परिवार, एक गाँव को नहीं, पूरे देश को बदनाम कर देता है।

असंयम चाहे पृथ्वी का हो, चाहे समुद्र का हो, जल-प्लावन का हो, अग्नि का हो क्षण-भर में भयंकर नुकसान पहुँचा देता है तो जिनका पूरा जीवन असंयमी हो जिनके जीवन में दया का, सत्य का, शील का, सन्तोष का, क्षमा का, सहिष्णुता का और समता का संयम नहीं हो तो उस घर का, परिवार का, वंश का, समाज का बिखराव सहज है। बदनामी और अविश्वास हो तो क्या ताज्जुब? आप असंयम को मिटाना चाहें तो भगवान् महावीर सूत्र दे रहे हैं—  
संयम स्वीकार कीजिये। मैं एक कड़ी कहूँ—

सुन-सुन रे ..... सुन सुन रे  
 सुन सुन रे म्हारा जैन वीर तूँ  
 संयम सम्मुख कद आसी ॥  
 काल अनन्तो भव-भव भटक्यो  
 कर्मा ने नरक निगोद में पटक्यो  
 कब तक वहाँ पर दुःख पासी ॥

हरिजन, मुस्लिम सिख जगे  
 हिन्द ईसाई भी धुन में लगे  
 थाँरी नींद कद उड़ जासी ॥

कवि ने कहा-मानव ! सुन । सुनकर मन में विचार कर कि तू संयम के सम्मुख कब आयेगा ? तेरी असंयम की प्रवृत्तियाँ चाहे वे महाआरम्भी हैं, अनावश्यक वेशभूषा वाली हैं, चाहे खाने-पीने की हैं, चाहे कम आमदनी में अधिक खर्च करने वाली हैं, चाहे संसार में डुबाने वाली, माल में मिलावट करने की हैं असंयम की एक-एक प्रवृत्ति घातक है । व्यक्ति क्षणिक सुख के लिए हजारों-लाखों का नुकसान पहुँचाता है । दूध में मिलावट है, पानी में मिलावट है, नमक में मिलावट है, मसालों में मिलावट है, यहाँ तक कि मिट्टी और बुरादे में मिलावट है । मिट्टी व बुरादे में मिलावट तो इतनी खतरनाक नहीं, किन्तु आज जो खाद्य पदार्थों में चर्बी आदि अभक्ष्य पदार्थ मिलाये जा रहे हैं वे जीवन का घात करने वाले हैं । मात्र चंद चाँदी के टुकड़ों के लिए खाद्य पदार्थों में जहर मिलाया जा रहा है ।

मानव न तो कुछ साथ लेकर आया है और न ही कुछ साथ लेकर जायेगा फिर भी अनीतिपूर्वक असंयमपूर्वक धन एकत्रित करने में लगा है । एक व्यक्ति के संग्रह करने का मतलब हजारों को वंचित करना है । आप इसे समझ रहे हैं, जान रहे हैं, सुन रहे हैं, पर असंयम नहीं छोड़ रहे हैं ।

आज अपना काम निकालने के लिए रिश्वत दी जा रही है और नतीजा नीचे से ऊपर तक बेईमानी हो गई । अब कह रहे हैं सारे बेईमान हो गये, सारे हरामखोर हो गये । लोग कहते हैं महाराज ! जहाँ जाते हैं वहाँ यही हाल है । इस हाल में तो जीना दुर्लभ है । भाई, जीना दुर्लभ किया किसने ? तनख्वाह हजार की, आमदनी दस हजार की । असंयम से यह सब हो रहा है, पर जब काण्ड खुलेंगे तो..... ।

रिश्वत जो भी दे रहा है, क्या वह वापस नहीं निकालेगा। रिश्वत जो भी दे रहा है वह भी बेर्इमानी करेगा। हजार दिये हैं तो लाख पैदा करने की कोशिश करेगा। ऐसी-ऐसी नर्तकियाँ थीं जो घमण्ड में संन्यासियों को आमन्त्रित करती थीं, वे सड़ गईं, उन्हें जिन्दा हालत में उखरड़ी पर डाल दिया गया।

मर्यादा छोड़ना जितना सरल है उतना जीवन में मर्यादा लाना नहीं। संयम जीवन है। संयम शांतिदाता है। आपने बोलने का संयम खो दिया तो घर में महाभारत होते देर नहीं लगेगी। संयम खो दिया तो जीवन को बचाने वाला कोई मार्ग नहीं रहेगा। इसलिए संयम स्वीकार करिए। इन्द्रियों का संयम रखिये, मन का संयम रखिये, वाणी का संयम रखिये। इस कहावत को याद रखें-

देहली हो गई ढूँगरी, पचे न पूरो नाज ।

तो भी तूँ तनका करे आछा नहीं अनराज ॥

इस देहली से उस देहली पर चढ़ना मुश्किल हो रहा है। लकड़ी के सहरे चढ़ रहे हैं पर साहब का स्वभाव देखिए, बात-बात में तुनक जाते हैं, छोटी सी बात में महाभारत खड़ा कर देते हैं। यह असंयम है। असंयम डुबाने वाला है। यदि आप जीवन को स्वर्ग बनना चाहते हैं तो भगवान महावीर का संयम-सिद्धान्त अपनाइये। जैसे फिटकरी, पानी और मिट्टी को अलग करती है, जैसे हंस की चोंच दूध-पानी को अलग करती है, जैसे अग्नि की लपटें सोने में रहे मैल को निकाल बाहर करती है, जैसे सोड़ा-साबुन कपड़े के मैल को खत्म करते हैं उसी तरह जीवन में आई बुराइयाँ संयम से समाप्त हो सकती हैं। संयम, शान्ति दिलाता है। संयम, साधना में अग्रसर करता है।

हल्की-हल्की जातियाँ जग गईं। चौकीदार जाति के लोग जिनकी पहले चौकी में हाजरी होती थी, उन्होंने मर्यादा बाँधी कि हमारे समाज में कोई चोरी नहीं करेगा। जो भी चोरी करेगा उसे जाति से बाहर कर दिया जायेगा।

जो पीने वाले थे, जो खाने वाले थे उन ठाकुरों के घर में सुधार आ रहा है और जो ओसवाल भोपाल कहलाते थे जिनके सहरे प्रान्तों, रियासतों व देश की व्यवस्था का संचालन होता था असंयम से उनका खान-पान बिगड़ रहा है। मैंने कहीं पढ़ा था कि जितने बड़े ट्रस्ट बनते थे उनमें जैन समाज वालों को लिया जाता था, वह इसलिए कि जैनी धर्मादा का पैसा नहीं खाता था। आज क्या स्थिति है? आप इस पर चिन्तन कीजिये, सोचिये और समाज में पनप रही विकृतियों को दूर करने का प्रयास कीजिये।

### संयम से उत्थान

आत्मा के उत्थान का भी कारण संयम है तो समाज के उत्थान का कारण भी संयम है। आप व्यसन, फैशन और प्रदर्शन हटाकर समाज के उत्थान में सहयोग कर सकते हैं, आपको सहयोग करना चाहिये। आप एक-दूसरे को आत्म-भाव से सहयोग कीजिये। दीक्षा लेकर संयम स्वीकार करने की बात तो बहुत ऊँची है, अभी तो मैं आपको मात्र व्यवहार के संयम की ओर ध्यान दिला रहा हूँ। आप संयम की साधना के महत्व को समझें। अचम्भा है जिनके पास है उन्हें (परिग्रह-मर्यादा आदि व्रतधारण के लिए) ‘नाम’ लिखाने में भार लग रहा है और जिनके पास नहीं है वे अपना नाम लिखा रहे हैं, नियम ले रहे हैं।

समाज-हित में आप चिन्तन कीजिये आगे बढ़ने का प्रयास कीजिये। संयम, शान्ति दायक है। संयम, समाधि देने वाला है। संयम, तारने वाला है। संयम-साधना की ओर आपके कदम जितने-जितने अग्रसर होंगे उतनी-उतनी शान्ति-समाधि प्राप्त करेंगे।



## दान

(जोधपुर चातुर्मास में पर्युषण के दिनों में 6 सितम्बर 1994 को प्रदत्त इस प्रवचन में 'दान' के स्वरूप एवं भेदों का विवेचन हुआ है। दाता की उदात्त भावना का भी पोषण हुआ है।)

पर्युषण-पर्व के पावन-दिन धर्ममय वातावरण में चल रहे हैं। सहज गति से चलने वाले ये परम पवित्र दिन कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष की ओर बढ़ रहे हैं। इन पावन दिनों का सन्देश भी यही है कि हे मानव ! तू भी कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष की तरफ चरण बढ़ा, अन्धकार से प्रकाश की ओर गति कर, अज्ञान को हटाकर ज्ञान का प्रकाश भीतर में जगा, अश्रद्धा से हटकर आत्म-तत्त्व पर विश्वास कर, चारित्र में चरण बढ़ाकर कर्म के बन्धनों को तोड़ और अनशन से, विनय से, वैद्यावृत्त से, स्वाध्याय से, ध्यान से संचित कर्मों को खपाने की कोशिश कर।

कर्म-क्षय के लिए तप के महत्त्व की बात आपके सामने कल रखी थी। आज 'दान' पर विचार किया जायेगा।

### तप का भूषण : दान

दान को तपस्या का भूषण कहा गया है। तप बतलाता है कि खाद्यान्न संचय करने के लिए नहीं है, दान कहता है कि यह दूसरों को देने के लिए है।

किन्तु जहाँ और जिसको, जो कुछ भी देना है, उसके लिए अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। दान में भी विवेक चाहिए और चाहिए अपव्यय से बचने की प्रवृत्ति। दान, मानव का सनातन धर्म कहा गया है। यह दान जन्म से मानव के साथ-साथ चलता है और मरण-पर्यन्त रहता है। जब से मानव है तब से दान की प्रवृत्ति है और जब तक मानव जाति रहेगी तब तक दान की प्रवृत्ति चलती रहेगी।

### ‘द’ के तीन अर्थ

एक प्राचीन कथा-श्रुति है। कभी देवता, मानव और दानव-तीनों ही ब्रह्मा के निकट शिक्षा ग्रहण करने पहुँचे। सभी ने ब्रह्मा से निवेदन किया-भगवन्! हमें जीवन-निर्माण का कोई ऐसा सन्देश दें, जिससे हम अपना-अपना जीवन सुधार सकें। अल्पभाषी ब्रह्मा ने सन्देश के रूप में तीनों के लिए एक शब्द उच्चारित किया-‘द’।

देवों के पास अपार वैभव, ऋद्धि-सिद्धि एवं भोग-सामग्री थी। उनका जीवन सुख-सुविधाओं तथा ऐश-आराम से भरपूर था। वे हर-पल, हर-क्षण इन्द्रियों के विषयों में आकण्ठ निमग्न रहते थे। उन्होंने चिन्तन किया और निष्कर्ष निकाला कि ब्रह्मदेव ने हमें जिस ‘द’ का उपदेश दिया है, उसका तात्पर्य ‘दमन’ होना चाहिए। हम देवों को चाहिए कि अपनी विषय-कामनाओं, भोगैषणाओं और काम-वासनाओं का दमन करें।

दानव क्रूर प्रकृति के थे। वे नित्य दूसरों को त्रास दिया करते थे। उन्होंने चिन्तन कर निष्कर्ष निकाला कि ब्रह्मदेव ने अवश्य हमें ‘द’ के द्वारा दया का पथ बताया है, अतः आज से हमें अपने जीवन में दया को स्थान देना चाहिए।

अब आया मानव का क्रम। मानव तो स्वभाव से ही मननशील होता

है। उसने भी मनन-चिन्तन किया और निष्कर्ष निकाला कि हम मानव-जाति के प्राणी परिग्रह रखने और संचय करने की प्रवृत्ति में अत्यन्त माहिर हैं। निश्चय ही ब्रह्मा जी ने हमें ‘द’ द्वारा देने का, दान करने का सन्देश दिया है।

### दान : जीवन का प्राणाधार

मानव का जीवन प्रारम्भ से अन्त तक, जन्म से मरण तक, बचपन से बुढ़ापे तक इस दान के सहारे से ही आगे बढ़ता है। सर्वप्रथम माता का स्नेह-दान मिलता है। कुछ बड़े हो जाने के बाद परिवार का प्रेम-दान मिलता है, आस-पड़ौस के लोगों से सहयोग-दान मिलता है, विद्यालयों में शिक्षकों से विद्या-दान मिलता है, धर्म-स्थानों में गुरुजनों से ज्ञान एवं दर्शन का दान मिलता है। इसी तरह देते और लेते ही मानव-जीवन का वर्धन होता है।

### धर्म के चार प्रकार

चार प्रकार का धर्म कहा गया है-दान, शील, तप और भाव।

दानं सुपात्रं सुभगं च शीलं, तपो विचित्रं शुभं भावना च।

भवार्णवोत्तारणयानपात्रं, धर्मं चतुर्था मुनयो वदन्ति ॥

संसार समुद्र से पार पहुँचाने वाले जलयान रूप धर्म को मुनिजन चार प्रकार का कहते हैं-सुपात्र को दान, सुशोभित करने वाला शील, आभ्यन्तर-बाह्य भेद से तन-मन को तपाने वाला 12 भेदों वाला तप, और मन को पवित्र करने वाली अनित्य अशरण आदि 12 शुभभावनाएँ।

यह पर्व उस नौका, नाव या जहाज की तरह है जो संसार समुद्र से पार कराने वाला है। इन चार धर्मों में सबसे पहले जिस धर्म का कथन शास्त्रकारों ने किया है वह है-‘दान’ धर्म।

### दान : एक विशिष्ट धर्म

दान, शील, तप और भावना-ये चारों ही लाभ देने वाले हैं, परन्तु अन्तर इतना ही है कि जहाँ शील, तप और भावना-ये तीनों उसी को लाभ

पहुँचाते हैं जो इनकी साधना करने वाले होते हैं जबकि दान उसे भी लाभ पहुँचाता है जो दान करता है और उसे भी जिसको दान दिया जाता है। देने वाला भी लाभ में और लेने वाला भी लाभ में। एक व्यक्ति ने शील का पालन किया, उसका लाभ किसी अन्य व्यक्ति को नहीं मिलेगा, केवल शील पालन करने वाले को मिलेगा। उसी की शक्ति का वर्धन होगा, उसी के सत् की रक्षा होगी, उसी के विकारों का नाश होगा। उपवास, बेला, तेला, अठाई, मासक्षमण आदि की तपस्याएँ की या ऊणोदरी, भिक्षाचर्या रस-परित्याग किया-जितने भी तप के भेद बताए गए हैं, उनकी आराधना का लाभ तप करने वाले को ही प्राप्त होता है। उसी की आत्म-शुद्धि होती है, उसी की कर्म-निर्जरा होती है, उसी के मनोबल में दृढ़ता आती है। भावना को भव-नाशिनी कहा गया है। अनित्य, अशरण आदि बारह प्रकार की भावनाएँ भव-भ्रमण को मिटाने वाली, कर्म-बन्धनों का क्षय करने वाली, भव-भव के जन्म-मरण के बन्धनों को काटने वाली होती हैं। भव-भ्रमण मिटना भी स्वयं का ही लाभ है। दान में ऐसा नहीं है।

दान स्वयं के अतिरिक्त अन्यान्यों को भी लाभान्वित करता है। दान एक तरफ दाता की ममता-मूर्छा घटाता है तो दूसरी तरफ दान ग्रहण करने वाले को सुखी-सन्तुष्ट बनाता है। दान से जहाँ दाता को पुण्य लाभ होता है वहाँ जरूरत-मन्द व्यक्ति उससे दान ग्रहण कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। दान एक ओर जहाँ दाता के लिए कर्म-निर्जरा का कारण है तो दूसरी ओर सुपात्र-दान, दान ग्रहण करने वाले की धर्म-क्रियाओं को करने में सहयोगी बनता है। अभयदान शास्त्रों में श्रेष्ठता के शिखर पर आरूढ़ है, कारण कि वह दाता के पुण्य एवं कर्म-निर्जरा का तो कारण है ही, साथ ही अनेकानेक प्राणियों के लिए

जीवन-दान का भी निमित्त है। शील, तप और भावना स्वयं व्यक्ति के तन, मन, आत्मा के लाभ तक सीमित हैं, पर दान अकेले दाता तक सीमित नहीं रह कर तिर्यञ्च, मनुष्य आदि में जिसको दिया जाय उसका भी उपकार करता है।

दान का एक प्रकार ज्ञान-दान है। ज्ञान-दान भी महान् दान है। ज्ञान-दान से ज्ञानी-व्यक्ति स्वयं अपनी निर्जरा तो करते ही हैं, दूसरों के अज्ञान-अन्धकार को हटाकर उनके धर्म-पथ को भी प्रशस्त बनाते हैं। ज्ञान-दान से ज्ञान-ग्रहण करने वाले व्यक्ति को नरक-निगोद तक से बचाया जा सकता है और उसे सत्पथ पर लगाया जा सकता है। इस तरह स्वयं के तृप्त होने के साथ दूसरों को भी तृप्त करने का काम दान के साथ जुड़ा हुआ है।

शास्त्रों में ‘दान’ पर विस्तार से विवरण उपलब्ध है। आचार्य भगवन्त (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) ने भी श्रावक के आवश्यक कर्तव्यों में दान का वर्णन करते हुए शास्त्रीय-कथन को अपनी काव्य-शैली में प्रकट किया है-

सुपात्र दान के तीन भेद कर लेना,  
साधु, श्रावक समदृष्टि को देना ।  
ज्ञान-दान और अभयदान रस लीजे,  
पात्र-दान के भूषण ध्यान धरीजे ॥  
चित, विज्ञ अरु पात्र की महिमा गाई,  
षट् कर्माराधन की तुम करो कमाई ।  
कहें मुनीश्वर, सुनो बाई और भाई,  
षट् कर्माराधन की तुम करो कमाई ॥

## दान : भारतीय संस्कृति की विशेषता

भारतवर्ष की संस्कृति दान-प्रधान संस्कृति रही है। यहाँ शूरों, वीरों, तपस्वियों और ऋषियों को इतना स्मरण नहीं किया जाता, जितना त्यागी दानवीरों को। दानियों का स्मरण पहले होता है, इन सब का बाद में। आपने कहावत तो सुनी होगी-‘पहली प्रहर राजा कर्ण की’-किस बात को लेकर कर्ण का स्मरण किया जा रहा है? क्योंकि वह दानवीर था। शूरवीर, संत, साधक, ज्ञानी-ध्यानी आदि से भी पूर्व, पहले प्रहर में गृहस्थों के द्वारा याद करने की बात आई तो कर्ण का नाम लिया जा रहा है, उसे याद किया जा रहा है।

भारतवर्ष में अनेक दानवीर हुए। कइयों ने धन दान किया, अनेकों ने अपनी सम्पत्ति अर्पित की, बहुत से ऐसे भी थे जिन्होंने जरूरत पड़ने पर अपने घर के भण्डार खोल दिए। इससे भी अधिक कहूँ तो इस देश के ऋषियों ने जरूरत पड़ने पर अपनी हड्डियों तक को दान में दे दिया। कोई माँगने वाला छली बन कर भी आया, तब भी दैवी-कवच और कुण्डल दान कर दिए। देकर कभी कोई कुछ खोता नहीं है, अपितु जितना देता है उससे भी अधिक ही पाता है।

## दान : एक कर्तव्य

आपके पास देने के लिए है तो जरूरतमंद लोगों को अवश्य दीजिए। नीति कहती है कि मार्ग में भटकने वाले अन्धे को यदि आँख वाला नहीं बचाता, सही रास्ता नहीं दिखाता, तैरना जानते हुए भी यदि तैराक ढूबने वाले को बचाने के लिए तत्पर नहीं होता, बुद्धि और ज्ञान का धनी होकर भी यदि दूसरों को ज्ञान का प्रकाश नहीं लुटाता, सत्पथ नहीं दिखलाता तो वह व्यक्ति अपने से च्युत होता है, वह समस्त मानव-जाति के प्रति कृतघ्न होता है।

इसी तरह यदि आप के पास देने के लिए है, आपने पुण्यार्जित

कर्मों के फलस्वरूप कुछ पाया है तो उसे दीजिए, यह आपका कर्तव्य है। नहीं देते हैं तो अपने कर्तव्य से गिरते हैं, मानव-जाति के प्रति अपराध करते हैं, पाप करते हैं। कौन कहता है सूर्य से सम्पूर्ण लोक को, विश्व के कौने-कौने को अपने प्रकाश से उजागर कर दो। नदियों से कौन कहता है कि तुम गुनगुनाती हुई, गीत गाती हुई निरन्तर बहकर अपना शीतल, मधुर जल प्यासों को पिलाती रहो। कौन कहता है वृक्षों से कि तुम धूप में खड़े रहकर भी थके हुए राहगीरों को छाया दो। जैसे ये सभी स्वतः: अपना कर्तव्य किए जा रहे हैं, इसी तरह आपको भी पाई हुई, अर्जित की हुई लक्ष्मी का सदुपयोग करना चाहिए। कहा भी है-

बिना कहे दानी पुरुष, पर की पूरे आश।  
कौन कहे है सूर्य को, घर-घर करो प्रकाश ॥

### दान का लक्षण

दान क्या है? ‘स्वस्वत्वपरिहारपूर्वकं परस्वत्वस्वीकरणं दानम्’ - किसी वस्तु पर से अपनी सत्ता को छोड़कर पराई सत्ता स्वीकार करना, उसे किसी अन्य को अर्पित करना, इसी का नाम है दान। आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में दान की परिभाषा देते हुए कहा है “अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्” अर्थात् अनुग्रह के लिए अपनी वस्तु के ममत्व का त्याग करना दान है।

### दान के भेद

दान के अनेक भेद हैं। तीर्थঙ्कर भगवान महावीर ने स्थानांग (ठाणांग) सूत्र के दसवें स्थान (ठाणे) में दस प्रकार का दान बताया है- अनुकम्पा दान, संग्रह दान, भयदान, कारुण्यदान, लज्जादान, गौरव दान, अर्धम दान, धर्मदान, करिष्यतिदान और कृत दान।

किसी दुःखी पर अनुकम्पा लाकर भोजनादि देना अनुकम्पा-दान है।

किसी से सहायता प्राप्ति की आशा में कुछ देना संग्रहदान है। राजा आदि के भय से देना भयदान है। प्रियजन के वियोग में दुःखित होकर देना कारुण्यदान है। लज्जा के वशीभूत होकर देना लज्जा दान है। यश प्राप्ति की इच्छा से देना गौरव दान है। देने से यदि पाप या अधर्म हो तो वैसा दान अधर्म दान कहलाता है। जहाँ अधर्म का समर्थन भी होता हो तो वह भी अधर्मदान ही है। जिस दान के देने से धर्म की वृद्धि एवं पुष्टि हो वह धर्म दान है। प्रत्युपकार की आशा से देना ‘करिष्यति’ दान है एवं किसी के द्वारा किए गए उपकार के बदले में उसे कुछ देना ‘कृतदान’ है।

गीताकार श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत गीता में दान के तीन भेद किए हैं-तामसी दान, राजसीदान और सात्त्विकदान। इन्हें दूसरी भाषा में कहूँ तो होंगे अर्थम् दान, व्यवहार दान और करुणा दान। अपने अहंकार की तुष्टि के लिए अथवा नामवरी के लिए देना अधर्म दान में गिना जाएगा। नट-नटनियों को, व्यसन-सेवन करने वालों को, कहीं तमाशा खड़ा करने के उद्देश्य से जो दिया जाए वही तामसी दान है। राजसी दान वह है जो लोक-व्यवहार से दिया जाता है। जिसने आप को दिया आप उसे वापस करें, तो राजसी दान होगा। आपने अपने लड़के की शादी की। आपकी पुत्रवधू अपने पिता के घर से माता-पिता द्वारा प्रदत्त धन-सामग्री लेकर आई तो व्यवहार क्या कहता है? व्यवहार के अनुसार आप भी अपनी लड़की को उसकी शादी पर अपनी सामर्थ्यानुसार दें-यही राजसिक दान है, यही व्यवहार दान है। आप किसी के यहाँ अतिथि बनकर गए, उसने आपको भोजन कराया तो यह व्यवहार हो गया कि आप भी अपने यहाँ आए अतिथि को भोजन कराएँ। इस तरह परस्पर के लेन-देन को व्यवहार बना कर निभाना ही राजसिक-दान है।

सात्त्विक दान क्या है? गीता में कहा है-

**दातव्यमिति यददानं, दीयतेऽनुपकारिणे ।**

**देशे, काले च पात्रे च, तदानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥**

मैंने द्रव्य पाया है, धन है मेरे पास, साधन है मेरे पास, अतः मुझे देना चाहिए क्योंकि दूसरे अनेक लोग जरूरतमंद हैं। इस भाँति ममत्व उतार कर जो दिया जाए अर्थात् जिसमें वापस कुछ बदले में मिलेगा-यह दृष्टि न हो तो वह सात्त्विक दान है। जो देकर लिया जाए, वह व्यवहार है, दान नहीं है। अगर आप हजारों-लाखों रूपये देकर बदले में पत्थर पर अपना, अपने पूर्वजों का, अपने रिश्तदारों का नाम लिखा रहे हैं तो आपका दान, दान की श्रेणी में नहीं आएगा।

सात्त्विक भाव से दिया जाने वाला दान भी देश, काल और पात्र का ध्यान रखकर दिया जाना चाहिए। कर्तव्य समझकर, उदात्त भाव से देना चाहिए तभी वह दान सात्त्विक दान कहलाएगा। एकान्त निर्जरा की दृष्टि से आचार्य भगवन्त ने दान के तीन भेद किए हैं-अभयदान, सुपात्रदान और ज्ञानदान। इन तीनों प्रकार के दानों से दानदाता के निर्जरा होती है। अतः ये कर्म-क्षय कर मुक्ति का पथ-प्रशस्त करने वाले हैं।

### **सुपात्र-दान**

प्रश्न यह है कि सुपात्र किसे कहा जाय ? इस विषय में शास्त्रकार कहते हैं कि जो स्वयं नव कोटि से आरम्भ-समारम्भ नहीं करते, जो न स्वयं बनाते हैं और न अपने लिए बनाया हुआ या खरीदा हुआ लेते हैं, मात्र ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के लिए आपका दिया हुआ ग्रहण करते हैं वे सुपात्र साधक हैं। वे शरीर की पुष्टि के लिए या स्वाद के लिए या केवल खाने के उद्देश्य को लेकर भी आहार ग्रहण नहीं करते। वे जो कुछ भी दिया हुआ ग्रहण करते हैं, वह संयम-यात्रा के सुचारू रूपेण निर्वहन के उद्देश्य से ग्रहण करते हैं। अतः इनको दिया गया दान ‘सुपात्र-दान’ के नाम से कहा जा रहा है।

सुपात्रदान के भी तीन भेद किए जाते हैं-उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। उत्कृष्ट सुपात्रदान में तीर्थङ्कर, गणधर, तपस्वी-अणगार की गणना होती है जो चार माह, छह माह, एक-एक माह का तप करते हुए आवश्यकता होने पर आहार-पानी के लिए निकलते हैं। मध्यम सुपात्रदान में वे सभी अणगार हैं जो पाँच महाब्रतों का पालन करते हैं, पाँच समिति-तीन-गुप्तियों का आराधन करते हैं तथा जीवन भर समभाव में रहकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना करते हैं। वे आजीवन त्रिकरण-त्रियोग से सावद्य योगों के त्यागी होते हैं। ऐसे साधु-साध्वियों को दिया गया आहारादि दान मध्यम-सुपात्रदान है। जघन्य सुपात्रदान वह है जिसमें श्रमणोपासक श्रावकों को उनकी आवश्यकता पूर्ति के लिए दान दिया जाता है। ये ऐसे श्रावक होते हैं जो संसार में रहते हुए सांसारिक व्यवहारों को गौण कर देते हैं और अपने जीवन में धर्म एवं धर्मी को, धार्मिक-अनुष्ठानों को, ब्रत-प्रत्याख्यानों को प्रधानता देकर समाज में धर्म के प्रचार-प्रसार के कार्य में लग जाते हैं। ये कभी अभ्यदान के कार्य में कभी धार्मिक अध्ययन-अध्यापन में तो कभी अन्य धर्म-संस्थाओं के कार्य में ही जीवन-यापन करते हैं और इन कार्यों के लिए घर-बार छोड़ देते हैं। ऐसे श्रमणोपासकों की सहायता करना जघन्य सुपात्रदान कहा जा रहा है। इसी भाँति जिसकी दृष्टि सम्यक् है अर्थात् जो सम्यग्दर्शन वाला है, जो देव अरिहंत, गुरु निर्गन्थ और दयामय धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाला है पर आर्थिक दृष्टि से कमजोर है तो उसकी सहायता करना भी सुपात्रदान की श्रेणी में आता है।

आगम-ग्रन्थों में ऐसे अनेक दृष्टान्त भरे पड़े हैं जिनमें जीवों ने इस तरह का दान देकर जन्म-मरण जन्य सभी दुःखों का अन्त कर लिया। उड़द के बाकले देकर कर्मबंधन शिथिल कर लिए। शालिभद्र की बात आप सुन चुके हैं। पूर्व भव में संगम नामक बालक के रूप में माता द्वारा माँ-ताँग कर

लाए गए चावल-दूध-शक्कर आदि से निर्मित खीर खाने का जिसे जीवन में पहली बार अवसर मिला, उसे भी उसने दान कर दिया। दान भी कैसा? द्रव्य शुद्ध, पात्र शुद्ध और भाव शुद्ध।

**बन्धुओं!** आज दुनियाँ में कई ऐसे लोग हैं जिन्हें बढ़िया और स्वादिष्ट वस्तुएँ जब-जब खाने के लिए प्राप्त होती हैं तो वे बाहर का दरवाजा बन्द कर, अन्दर की कुन्दी लगाकर उन वस्तुओं को खाते हैं। अनेक ऐसे मिलेंगे जो बाहर जाकर होटलों में और खौमचों पर जाकर खाते हैं, जिससे घरवाले वंचित रहते हैं।

संगम को पहली बार खीर मिली। मासक्षण तप के पारणे में निकले मुनिवर को भावपूर्वक उसने वह खीर दी। थाली के बीच में रेखा खींच दी उस बालक ने कि आधी इनकी, आधी मेरी। खीर तो तरल। सारी की सारी पात्र में चली गई पर संगम को कोई खेद नहीं। शास्त्र वर्णन करते हैं कि उसे अगले भव में ऐसी ऋद्धि-सिद्धि मिली कि सम्पदा किधर से आती है, कुछ पता ही नहीं।

### दान : एक गुण

दान देना एक गुण है। यह गुण व्यक्ति के सहज प्रकट होता है, सिखाने से कभी नहीं आता। नीति कहती है-

**स्वर्गच्युतानां इह जीवलोके, चत्वारि चिह्नानि वसंति देहे।**

**दानप्रसंगो मधुरा च वाणी, त्यागार्जनं सत्यजनेषु सेवा ॥**

नीतिकारों का कहना है कि जो जीव देवगति से च्यव कर आते हैं, उनमें सहज रूप से चार बातें पाई जाती हैं- (1) देने का प्रसंग आने पर खाद्य-पदार्थों को देने में जितना आनन्द अनुभव वे करते हैं, उतना स्वयं खाने में नहीं करते। (2) कम बोलते हैं, पर जब भी बोलते हैं मधुर एवं कर्णप्रिय बोलते हैं। कर्ण कटु या किसी के दिल को ठेस लगाने जैसी बोली से तो नहीं बोलना

ही अच्छा है। एक माँ ने दर्द प्रकट किया- ‘बाबाजी ! छोरो बोले कोनी ?’ वह लड़का बारह साल की उम्र का हो गया, तब तक अबोला ही रहा। बारह साल बाद जबान खुली तो बोला माँ से- ‘ए माँ ! तूँ मोड़ी कद होई ?’ सुनकर माँ का हृदय तिलमिला गया। माता मोड़ी कब होती है ? पुराने जमाने में पति का स्वर्गवास होता था तब पत्नी सिर के केश उतरवाती थी। उसे मोड़ी होना कहते हैं। उस बच्चे की बात पर माँ ने अपने हृदय की वेदना को शब्दों में उतारते हुए कहा-इससे तो नहीं बोलता तो ही ठीक था।

देव भव से मानव के रूप में जन्म मिलता है तो (3) तीसरी बात सहज रूप से जो मिलती है, वह है त्याग की भावना। सुपथ पर चलने का अवसर यदि समुख उपस्थित हो जाए तो जीवन में प्राप्त समस्त भोगों को छोड़कर ‘त्याग’ का अर्जन करने में वे विलम्ब नहीं करते। एक बार, केवल एक बार संयोग मिलने की आवश्यकता है फिर उहें घर-बार, परिवार, संसार छोड़ते देर नहीं लगती। (4) चौथी और अन्तिम बात है-सज्जनों की सेवा। किसी व्यक्ति या प्राणी को दुःखी देखते हैं तो तुरन्त उनमें उसके दुःख को दूर करने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

ये चार बातें किसी के सिखाने से नहीं आती, कोई सीखना चाहे तो नहीं आती, ये तो सहज आती हैं, स्वतः प्राप्त होती हैं। नीति कहती है-

**दातव्यं प्रियवक्तव्यं, शूरत्वं चातुर्यगुणाः ।**

**शिक्षातो नैव लभ्यन्ते, चत्वारो सहजाः गुणाः ॥**

चार गुण-दान देना, मधुर बोलना, शूरता और चतुराई-ये सहज ही प्राप्त होने वाले गुण हैं जो स्वतः व्यवहार में लक्षित हो जाते हैं। ऐसे स्वाभाविक गुणवाले अनेक व्यक्ति देखने में आते हैं। बच्चा खेल रहा है, कोई माँगने वाला आ गया, खेल छोड़कर चला जाता है उसे कुछ देने के लिए। घर के बाहर भिखारी आया, बच्चा सहज में कह उठा-रोटी दो, मैं उसे दूँगा।

दान का गुण सहज ही प्राप्त होता है। सहज में ही कभी-कभी सब कुछ देने वाले, सर्वस्व दान कर देने वाले, न्यौछावर कर देने वाले भी अनेक व्यक्ति मिल जाते हैं। बात वही है जो पहले कही गयी-

**बिना कहे दानी पुरुष पूरे पर की आश।  
कौन कहत है सूर्य को, घर घर करो प्रकाश ॥**

आचार्य भगवन्त से सुना है, आप में से भी अनेक ने उनके श्रीमुख से सुना होगा। रियाँ के सेठ जीवणदास जी मुणोत के परिवार में हुए अजमेर वाले सेठ श्री छगनलाल जी मुणोत। उनके झाँसी, ग्वालियर, दिल्ली, पटना, पेशावर आदि भारत के सत्ताईस शहरों में सदाब्रत चलते थे। वहाँ पर कहीं से भी कोई भी भूखा व्यक्ति आ जाए तो बिना उसके नाम, जाति, कुल आदि की पूछताछ किए, उसे भोजन कराया जाता था। इसी मुणोत परिवार से पूज्य आचार्य भगवन्त की दीक्षा का आयोजन हुआ था।

मद्रास में गेलड़ा परिवार और चोरड़िया परिवार के लिए सुनते हैं कि मारवाड़ से जब भी कोई सज्जन काम के लिए मद्रास जाता और उसे काम नहीं मिलता तो तब तक, उसके भोजन की व्यवस्था के लिए इन परिवारों के सौजन्य से चौका खुला रहता था। बस शर्त यह थी कि वह बन्धु नित्य पाँच सामायिक करे। देने वाले का धन कभी देने के कारण से कम नहीं होता। कहावत है-

**‘चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घटियो नीर।  
दान दिया धन ना घटे, कह गये दास कबीर ॥’**

अलवर के एक भामाशाह लाला काशीराम जी के लिए कहा जाता है कि स्वतन्त्रता की लड़ाई में जो भी व्यक्ति जोश में आकर घर से चला जाता उसके परिवार का पोषण, परवरिश वे करते थे। एक बार वे अपने किसी कार्य

से कहीं जा रहे थे। राह में उन्हें किसी घर से नारी का दर्द भरा रुदन सुनाई दिया। वे अनुमान लगाते, रुदन की ध्वनि के सहरे बढ़ते हुए उस घर के पास पहुँचे। अन्दर देखा तो एक बुढ़िया माँ रो रही थी। मालुम पड़ा कि इसका पति आजादी की लड़ाई में शहीद हो गया है, पुत्र को अंग्रेजों ने जेल में डाल दिया है, घर में कोई कमाने वाला नहीं है अतः जीवन दूधर हो गया है।

वे बाहर आए। एक थैली में कुछ जवाहरात रखे। थैली का मुँह बन्दकर उसे अपने कोट की जेब में डाला। बुढ़िया के घर के पिछवाड़े में पहुँचे। पिछवाड़े के रास्ते से नोहरे में गए। वह जवाहरात की थैली नोहरे में गाढ़ दी। पुनः सामने वाले मुख्य रास्ते पर आकर बुढ़िया के घर गए और बोले-क्यों माँ! रोती क्यों है? क्या दर्द है?

बुढ़िया ने उन्हें देखा, कहा ‘दर्द तो बेटा कुछ नहीं है पर क्या करूँ मैं, समझ में नहीं आता। पति शहीद हो गए, पुत्र जेल में है, मुझे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है। मैं भी देश के लिए शहीद हो जाना चाहती हूँ, पर आजादी की लड़ाई में हम बूढ़े लोग कुछ कर भी तो नहीं सकते। अब तो जीवन भी भार बन गया है, घर में कोई कमाने वाला भी नहीं है।’

काशीराम जी बोले-माँ! तुम्हारे शहीद होने की जरूरत नहीं है। अब बात रही कमाने की सो माँ! कल रात मुझे सपना आया था कि अमुक घर के पीछे नोहरे में कहीं धन गड़ा है। मैं तो उसी स्वप्न को याद करके यहाँ आया था। चलो देखते हैं, मेरा सपना सच है या नहीं।

लालाजी के साथ बुढ़िया भी घर के पीछे बने नोहरे में गई। लालाजी ने नोहरे में घूमने का अभिनय ऐसे किया जैसे स्वप्न में देखे स्थान को पहचानने का प्रत्यत्न कर रहे हों। फिर वही स्थान खुदवाया जहाँ उन्होंने स्वयं जवाहरात की थैली गाड़ी थी। खुदाई में थैली निकल गई, अन्दर थे जगमग करते जवाहरात। बुढ़िया को जीवन का सहारा मिल गया। देने वालों के लिए कहा है-

जो जल बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।

दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥

सागर में तैरती हुई किसी नाव के पैंदे में छिद्र हो गया। छिद्र से पानी नाव के भीतर आने लगा, बढ़ने लगा, नाव डूबने का खतरा पैदा हो गया। नाव में सवार मुसाफिर सम्भल गए। जीवन किसे प्यारा नहीं होता। किसी ने अपने सामान से लोटा निकाला, जिसको जो मिला उसी से वे लोग नाव का पानी फेंकने लगे। खतरा आपको भी हो सकता है। तिजोरियाँ भरने जा रहे हैं, खूब धंधा फैला रहे हैं, खूब धन संचित कर रहे हैं, पर वह धन कहीं आपकी जीवन-नौका में छिद्र बन नौका को डुबो न दे, अतः सौ हाथों से संचय करिए, पर साथ ही हजार हाथों से देते जाइये। कहावत है-

तुलसी जग में आय कर, कर लीजे दो काम।

देने को अन्नदान है, लेने को हरिनाम॥

बीकानेर में डागाजी रामरतन जी शंकर के भक्ते थे। घर पर आने वाले याचक को वे कभी निराश नहीं करते थे। एक बार एक ब्रह्मदेव (ब्राह्मण) उनके घर पहुँचा। उस समय डागाजी अपने बाड़े में एक शिला पर बैठे नहा रहे थे। ब्राह्मण ने कहा- ‘यजमान की जय हो। सेठजी, मेरी एक पुत्री है। वह सयानी और विवाह योग्य-वय की हो गई है। शादी करनी है अतः कुछ मदद चाहिए।’

वहाँ तो सेठ के पास कुछ था नहीं, उन्होंने इधर-उधर देखा। पास फूटे हुए मटके के टुकड़े बिखरे हुए थे। उन्होंने एक ठीकरी उठाई और कोयले से उस पर एक आँक लिख कर ब्राह्मण को दे दिया। बोले- ‘मुनीम जी को दे देना, तुम्हें कुछ न कुछ मिल जाएगा।’

ब्राह्मण वह ठीकरी लेकर मुनीम जी के पास गया। मुनीम जी जरा

दिल से तंग थे, व्यर्थ का पैसा निकलता तो, उनकी तो जैसे जान ही निकली जाती थी। धन भले ही सेठ का था, पर हिसाब रखने वाले तो मुनीमजी थे। ब्राह्मण ने ठीकरी दी, मुनीम जी ने उस पर एक रुपये का आँक देखा, पर एक रुपए की जगह ब्राह्मण को दो आने देने लगे। पुराना जमाना था, उस जमाने में रुपया, आना, पैसे का चलन था। एक रुपये में सोलह आने और एक आने में चार पैसे हुआ करते थे। ब्राह्मण ने मुनीम जी के हाथ में दो आने देखे तो लेने से मना कर दिया। मुनीमजी ने ठीकरी वापस दे दी कि मैं नहीं देता एक रुपया। ब्राह्मण ठीकरी लेकर पुनः सेठ के पास आया। सेठ ने पूछा-क्या हुआ? ब्राह्मण ने बता दिया। सेठ ने ठीकरी उसके हाथ से ली और एक के आगे बिन्दी बढ़ा दी और कहा-अब जा मुनीम के पास। ब्राह्मण गया। मुनीम ने फिर मना कर दिया। ब्राह्मण पुनः सेठ के पास आया। एक बिन्दी और लगा दी। भेजा मुनीम के पास। इस बार भी आधा देने पर और ब्राह्मण के वापस आने पर एक बिन्दी बढ़ा दी। उस समय के एक हजार रुपये आज के करोड़ रुपयों के बराबर कह दूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ब्राह्मण को दी जाने वाली ठीकरी पर अब एक हजार का आँक हो गया था। सेठ ने उससे कहा-ब्रह्मदेव मुनीम के पास जाओ, यदि वह नहीं दे, अब भी मना कर दे तो मेरे आने तक वर्ही बैठना।

ब्राह्मण मुनीम जी के पास पहुँचा। मुनीम जी ने आँक देखा तो घबराए। मेरे कारण एक का एक हजार हो गया। सेठ जी अवश्य नाराज होंगे। मैं पहले ही दे देता, मना नहीं करता तो सेठ जी को नौ सौ निन्यानवें ज्यादा नहीं देने पड़ते मेरी तो आज नौकरी ही गई।

मुनीम जी विचार कर ही रहे थे कि अब क्या करूँ? रुपये इसे दूँ या नहीं दूँ? इतने में सेठ जी आ गए। ब्राह्मण को उन्होंने तुरन्त एक हजार रुपये दे दिए। ब्राह्मण देवता ने अनेक आशीर्णे दी और खुश होकर अपने घर चल दिए।

उधर मुनीम जी का उतरा मुँह देख, सेठ ने पूछा- ‘क्या बात है, मुनीम जी ? इस तरह उदास, घबराए हुए क्यों हैं ?’

मुनीम जी तो धूज रहे थे। हकलाते हुए मुश्किल से बोले- ‘मेरी गलती से आज आपका बड़ा नुकसान हो गया।’

सेठजी ने कहा- अरे मुनीम जी ! यह आपके कारण हुआ है, ऐसा क्यों मानते हो। घबराओ मत ! शंकर का यही हुक्म था। इस ब्राह्मण के भाग में एक हजार लिखे थे, जो उसे मिल गए। तुम चिन्ता छोड़ो। जो कुछ हुआ, शंकर की इच्छा से हुआ।

देने वालों के नाम में महाराणा जगतसिंह जी का बड़ा नाम है संवत् 1684 की बात है। जगतसिंह जी तब उदयपुर के महाराणा थे। देने में कभी कमी नहीं रखते थे। पच्चीस वर्षों के अपने शासन में उन्होंने खूब दिया और नाम कमाया। उनके लिए एक कवि ने कहा-

जगतो तो जाणे नहीं, माता-पिता रो नाम ।

निशदिन वो रटतो रहे, तात-पिता रो नाम ॥

महाराणा जगतसिंह जी अपने माता-पिता अर्थात् माता के पिता (नाना) का नाम नहीं जानते। वे तो अपने तात-पिता अर्थात् पिता के पिता (दादा) का नाम ही जानते हैं। कवि का तात्पर्य यह है कि जगतसिंहजी याचक को ‘ना-ना’ कभी नहीं करते थे, वे ‘ना’ करना जानते ही नहीं थे। वे देना ही जानते हैं (दा-दा) जो भी आया उसे मन इच्छित दे दिया।

राजा भोज की दानवीरता भी लोक प्रसिद्ध है। नीति कहती है-

‘अनुकूले विधौ देयं, यतः पूरयिता हरिः ।

प्रतिकूले विधौ देयं, यतः सर्वं हरिष्यति ॥’

मानव ! अगर तेरे भाग्य चमक रहे हैं, तेरी अन्तराय दूरी हुई है तो दिए जा । देते रहने से धन घटने वाला नहीं है । अनुकूलता जब है तो देने में हिचकिचाहट क्यों ? अनुकूलता में कोई देता है तो उसमें आश्चर्य भी क्या ! बात तो तब है जब प्रतिकूलता में भी दिया जाए । सम्पदा जा रही है तो वह देगा तब भी जाएगी और नहीं देगा तब भी जाएगी, फिर देने से क्यों चूंकता है । मारवाड़ में लोक कहावत है-खाओगे तो दुर्गंध आएगी, खिलाओगे तो सुगन्ध आएगी । अगर जीवन सफल बनाना है तो देना सीखो ।

जननी जणे तो ऐड़ो जण, के दाता, के शूर ।

नहिं तर रहीजे बाँझड़ी, मती गमाजे नूर ॥

माता से कहा गया कि तुझे पुत्र को जन्म देना हो तो ऐसे पुत्र को जन्म देना जो या तो ‘दाता’ हो या ‘शूर’ हो, नहीं तो तुम्हारा वन्ध्या रहना ही अच्छा है । ‘दाता’ का महत्व सबके लिए है । स्वयं दाता अपनी आसक्ति तोड़कर शुद्ध भावना से दान करता है तो उसके कर्मों की निर्जरा होती है तथा जिसे दिया जाता है उसका भी कल्याण होता है ।

□☆□

## हाथ को दीधो, ऐलो नहीं जावे

(14 सितम्बर, 1996 को पर्युषण पर्व के अवसर पर अजमेर चातुर्मास में फरमाया गया यह प्रवचन अभ्यदान, सुपात्रदान और ज्ञानदान के साथ मानव को उदार बनने की प्रेरणा कर रहा है।)

### दान का महत्व

पर्वाधिराज पर्युषण का आज पंचम दिवस है। यह पर्व कृष्ण पक्ष से प्रारम्भ हुआ था, शुक्ल पक्ष की ओर बढ़ रहा है। अन्धकार से हटकर प्रकाश की ओर बढ़ रहा है। पाप का विनाश कर जगती तल में धर्म-जागरण का सन्देश प्रदान कर रहा है। इन सन्देशों में मोक्ष-मार्ग के चार चरण रखे गये थे-ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। संसार पार करने हेतु चार मार्ग अब दूसरी तरह से बताए जा रहे हैं-१. दान, २. शील, ३. तप व ४. भाव। आचार्यों की वाणी में-

दानं सुपात्रं सुभगं च शीलं, तपो विचित्रं शुभ भावना च ।

भवार्णवोत्तारणयानपात्रं, धर्मं चतुर्धा मुनयो वदन्ति ॥

धर्म चार प्रकार का है-१. सुपात्र दान, २. निर्दोष शील, ३. विविध तप व ४. शुभ भाव। भव रूप अर्णव को पार करने में जहाज के तुल्य जो धर्म है उसमें सबसे पहला दान है। छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब हर प्राणी लेता भी है, देता भी है। मानव का यह आदि धर्म है। शील पालने का प्रयास समझ आने

के बाद अथवा अवस्था-सम्पन्न होने पर होता है। शील-पालन की बात कुछ जानते भी हैं, कुछ नहीं भी जानते हैं। शील-पालन की बात अन्य को ज्ञात नहीं भी होती और शील-पालन करने का लाभ स्वयं को मिलता है। तप का लाभ भी अपने आपको मिलता है। भावना का लाभ भी व्यक्तिशः मिलता है, पर दान ऐसा धर्म है जो दाता को भी लाभ पहुँचाता है और दूसरों को भी लाभ पहुँचाता है। दान देने वाले का भी तर्पण करता है, दूसरों का भी तर्पण करता है। दान से व्यक्ति अपने भव-बन्धन काटता है और दूसरों को भी मोक्ष-मार्ग की ओर बढ़ाने में सहायक बनता है।

प्राकृतिक आपदाओं में कई बार लोग बाढ़ से घिर जाते हैं, कभी अग्नि के विप्लवों में सब कुछ स्वाहा हो जाता है। ऐसे समय दानियों का दान ही उनके जीवन में प्राण फूँकने वाला बनता है। दान अपने आपके लिए लाभकारी है और दूसरों के लिए भी लाभ का कारण है।

पौराणिक कथानक में कहा जाता है—देव, दानव और मानव तीनों ब्रह्माजी के पास पहुँचे। कुछ नीति की, मर्यादा की और जीवन उत्थान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ब्रह्माजी से निवेदन किया। ब्रह्माजी ने देव, दानव और मानव तीनों के लिए एक शब्द का उच्चारण किया—‘द’ ‘द’ ‘द’।

एक शब्द के कई अर्थ होते हैं। देवों के लिए यही ‘द’ दमन करने के अर्थ में, दानवों के लिए ‘द’ दया करने के अर्थ में और मानवों के लिए ‘द’ दान करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। दानव उच्छृंखल वृत्ति वाले होते हैं, मन का चिन्तन अधिक उत्तेजना पूर्वक चलता है, उनके पास शक्ति है, सत्ता है इसलिए उनसे ब्रह्माजी ने कहा—तुम दया करना। देव ऋद्धि वाले होते हैं इसलिए उन्हें दमन करने को कहा गया। जो दिन-रात इन्द्रियों के विषय में, दूरदर्शन के चित्रों में, खाने-पीने में, सुख-भोग में निमग्न रहते हैं उन मनुष्यों

को दान की शिक्षा दी गई। सुखियों के लिए दमन की बात, क्रूर के लिए दया की बात और मानव के लिए दान की बात कही गई।

### पाया है तो दान करो

तूने पाया है तो दान कर। मैं आदि धर्म की बात कह रहा हूँ। अगर पाया है तो उसका सदुपयोग कर, मिला है तो लाभ प्राप्त कर। आप अपने आपको हीन-हँसी का पात्र नहीं बनाना चाहते हैं तो शास्त्र कह रहा है-देना सीखो। दान अनुपम समाधि वाला धर्म है। भगवती सूत्र में गौतम ने पृच्छा की-भगवन्! निर्दोष अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम देने वाला गृहस्थ क्या प्राप्त करता है? क्या वह समाधि प्राप्त करता है? दुर्लभ वस्तु दे रहा है उसका क्या फल? भगवान ने कहा-देने वाले को कर्म-निर्जरा होने से समाधि प्राप्त होती है।

इसी बात को लेकर नीतिकार तो यहाँ तक कहते हैं कि आप अगर मकान के चबूतरे पर बैठे हैं और आपके सामने कोई सूरदास (अन्धा व्यक्ति) निकल रहा है, सामने गाय बैठी है, इस तरफ खड़ा है, उसकी नजर नहीं है और आप हिरण की तरह बड़ी-बड़ी आँखें लेकर बैठे हैं, देख रहे हैं कि सूरदास खड़े में गिरने जा रहा है, तो शायद उसे कोई कहेगा नहीं, पर आपको जरूर कहेंगे कि वह तो सूरदास था भगवान ने आपको तो आँखें दी उसे बचाया क्यों नहीं? आपके बैठे वह गिर रहा है तो आँखे मिलने का लाभ क्या?

आपको तैरना आता है और आप नदी के किनारे खड़े हैं। एक अबोध बच्चा आया कपड़े धोने के लिए, पैर फिसल गया और वह पानी में गुचलकियाँ खाने लगा। आपको तैरना आता है और आपने बच्चे को बचाया नहीं, तो उस तैराकी की कला का क्या उपयोग? लोग बच्चे को नहीं, तैराक को कहेंगे-आप कैसे मानव हो? तैरना जानते हुए आपके सामने बच्चा ढूब

रहा है, आँखें होते हुए आपके सामने एक आदमी खड़े में गिर रहा है आप नहीं बचाओ तो आपकी वह मानवता होगी या दानवता ? वह पाप कहा जायेगा या धर्म ?

दुःखियों पर अनुकर्मा आनी चाहिये । इसी तरह आपने पुण्यशालिता से जो पाया है, आपके पास सोना है, चाँदी है, धन और सम्पदा है वह यदि दुःखी-दरिद्र की सेवामें काम नहीं आया तो.....? भगवान ने तो तप का आधार दान बतलाया है । जो तप करता है वह भूखे की वेदना जानता है । भूख की पीड़ा भूखा जानता है । आपके उपवास-बेला-तेला आठ की तपस्या है तो आपको अनुभव होता है कि पेट में रोटी नहीं होने पर कितनी पीड़ा है ? भूखा भोजन की ओर कैसे देखता है ? तपस्या में भूखे को भूख का अनुभव होता है इसलिये आपके सामने कोई भूखा आए तो ख़याल आता है । उपवास में रात कैसे निकलती है उसका अनुभव होने पर भूखे की वेदना सहज समझी जा सकती है । जो भूख की वेदना जानता है वह देता है ।

### अभयदान

शास्त्र 'दान' के तीन रूपों का कथन करता है । तीनों एकान्त निर्जरा वाले हैं । पहला रूप है-अभयदान । सूत्रकृतांगसूत्र में कहा गया है-दाणाण सेद्गमभयप्याणं । अर्थात् अभयदान से बढ़कर कोई दान नहीं । जिसने अभय दिया उसने जीवन दिया । जिन्दा रहेगा तो सत्य का पालन करेगा, जिन्दा रहेगा तो शील का पालन करेगा, जिन्दा रहेगा तो क्षमा की आराधना करेगा, जिन्दा रहेगा तो सामायिक-पौष्ठ करेगा, जिन्दा रहेगा तो निर्जरा करेगा । इसीलिए सबसे बड़ा दान है-अभयदान । इससे बढ़कर कोई दान नहीं और मारने से बढ़कर कोई पाप नहीं । जो अपने मौज-शौक के क्षणिक सुख और सन्तुष्टि में हजारों-लाखों-असंख्य जीवों को मारता है वह सबसे बड़ा पापी है । खाने,

पीने, पहिनने, ओढ़ने में हिंसा बचाई जा सकती है। आप हिंसा से बचने की कोशिश कीजिये जिससे आप अभयदान के भागी बनेंगे।

### सुपात्रदान

दूसरा दान है—‘सुपात्र दान।’ यह भी संसार सागर से तिराने वाला है। सुपात्र दान के भी शास्त्रकारों ने कई भेद किए हैं। आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमल जी म.सा. ने एक छोटी सी कड़ी में इसकी विधि समझाते हुए कहा है—

सुपात्र दान के तीन भेद कर लेना,  
साधु श्रावक समदृष्टि को देना ।  
ज्ञानदान और अभयदान रस लीजे,  
पात्र दान का भूषण ध्यान धरीजे ।  
चित्त-वित्त और पात्र की महिमा गाई,  
षट् कर्माराधन की करो कमाई ॥

योग्य पात्र को दान देना सुपात्र दान है। इस दान के लिए तीन व्यक्ति सुपात्र हैं—१. साधु-साध्वी, २. श्रावक-श्राविका एवं ३. सम्यग्दृष्टि। दान देकर नयसार के जीव ने भगवान महावीर के भव को ग्रहण किया। सुमुख, युगबाहु आदि अनेक दाताओं के शास्त्र में उदाहरण भरे पड़े हैं। दान-धर्म की आराधना करने वाले शंख राजा, संगम ग्वाला ने भी दान देकर लाभ प्राप्त किया। मात्र पानी देकर तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा जा सकता है। जीवन में एक बार एक समय के लिए थोड़ी सी खीर बहराकर शालिभद्र की ऋद्धि का मिलना सुपात्र दान के फल का उदाहरण है।

दान के पात्रों में उत्तम से उत्तम पात्र है—तीर्थङ्कर। मध्यम है—गणधर और जघन्य है—महान् तपस्वी। इसी तरह संतों के भेद किए गए हैं। श्रावकों

के भी भेद हैं—प्रतिमाधारी, व्रती और स्वधर्मी के रूप में। देव-गुरु धर्म की आराधना करने वाला विपदा में आ जाय तो उसकी सहायता करना, उसे धर्म में आगे बढ़ाना उसके प्रति वात्सल्य भाव पैदा करके उसे भव भ्रमण मिटाने में सहयोग देना श्रावक का कर्तव्य है। दान देने में तीर्थঙ्कर भगवन्तों ने जाति और कुल को महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने कहा—

अन्ने देसे जाया, अन्ने देसे बहुया ।

जे जिणधम्मे अणुरत्ता, ते सब्बे बन्धुआ भणिया ॥

कहते हैं—भले ही देश अलग हो, कोई अमरीका में रहने वाला हो, किसी अन्य प्रान्त वाला हो, कर्नाटक का हो या महाराष्ट्र का अथवा मारवाड़ में जन्मा हो, उसका वर्धन चाहे जहाँ हुआ हो वह अगर वीतराग को देव, निर्ग्रन्थ को गुरु मानता है और दयाधर्म पर श्रद्धा करता है तो फिर वह चाहे गरीब है या अमीर, वह चाहे ओसवाल है, या अग्रवाल, वह स्वधर्मी भाई है इसलिये उसकी सहायता करना धर्म की आराधना है।

### ज्ञान-दान

तीसरा दान है ज्ञान-दान। ज्ञान-दान की ओर आपका लक्ष्य रहना चाहिए। आज नेत्रदान करने वाले मिल जायेंगे, गुर्दे का दान करने वाले मिल जायेंगे, खून देने वाले मिल जायेंगे, किन्तु अंग-प्रत्यंग का दान, मात्र द्रव्य दान है। ज्ञान-दान इनसे श्रेष्ठ है। ज्ञान का दान किया है तो मिथ्यात्वी सम्यक् दृष्टि बन सकता है। ज्ञान-दान की बात जो कह रहा हूँ उसका तात्पर्य अन्य दान को नकारना नहीं है। अंग-प्रत्यंग का दान भी कदाचित् अभयदान के रूप में हो सकता है। किसी की किडनी फैल हो गई, उसे किडनी का दान दिया, तो हो सकता है उसका जीवन बच जाये और वह धर्म-साधना करने वाला बन सकता है। आप कभी दीक्षा-प्रसंग पर एक जिले में बूचड़खाना बन्द करवाते हैं, वह

भी पुण्य का कारण है। एक अधर्मी को धर्मी बनाया तो वह भी सर्वश्रेष्ठ दान होगा। ज्ञान-दान करने पर व्यक्ति ज्ञान-चारित्र की आराधना करके मोक्षगामी बन सकता है। वह समस्त जीवों को अभय दे सकता है।

### दान का विज्ञापन न हो

दान के सात स्थान बताये गए हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका को देना। दान की महिमा एवं प्रवृत्ति व्यापक है। चन्दन को कितना ही घिसो उसकी सुगन्ध नहीं जाती। अगरबत्ती अपने शरीर का एक-एक अंग जल जाने पर खुशबू नहीं छोड़ती। मेघ आते हैं, बरसते हैं, खेत-खलिहान, पोखर, नाले-नदियाँ भर जाती हैं, पर मेघ भी देकर दी गई मात्रा की गणना नहीं करता है। उन्मुक्त भाव से देते हुए भी वह कुछ कहता नहीं है। आचार्य भगवन्त श्री शोभाचंद जी महाराज ने दान के विषय में कहा है—

दीन को दीजिये होत दयावंत, मित्र को दीजिये प्रीति बढ़ावे,  
सेवक को दीजिये काम करे बहु, शायर को दीजिये आदर पावे।  
शत्रु को दीजिये वैर रहे नहीं, याचक को दीजिये कीरति गावे,  
साधु को दीजिये मुक्ति मिले पिण, हाथ को दीधो तो ऐलो न जावे ॥

आप दीन को दीजिये, वह गाँव में प्रवेश करने के साथ पूछेगा—फलाँ सेठ साहब कहाँ रहते हैं ? मित्र को देने से दोस्ती गहरी होती है। सेवक को दीजिये तो वह दौड़कर काम करेगा। आपने सेवक से आठ घण्टे काम करवाया, और जाते समय कहा—धन्यवाद। इस धन्यवाद का वह क्या करे ? नीति कहती है सेवक से काम लेना है तो उसको कुछ दो। साहिब है, राजा है, महाराज है लोग उन्हें नजराना देते थे, उनको देने से आदर मिलेगा, यह भावना थी। इसी प्रकार शत्रु है उसे दोगे तो वैर नहीं रहेगा। याचक को देने से वह कीर्ति गायेगा, आपका नाम आपकी पहचान आपकी गैर मौजूदगी में पहुँचा देगा।

दानी को जब भी कोई दुःखी-गरीब एवं आवश्यकता वाला दिखता है तो वह उसे देता ही है। उसे देने के लिए कहता कोई नहीं, फिर भी देता रहता है। मैं एक कहावत कहकर बात समाप्त करूँ -

**बिना कहे दानी पुरुष, सबकी पूरे आश ।**

**कौन कहत है सूर्य को, घर-घर करो प्रकाश ॥**

देने वालों की कमी न पहले थी, न आज है। देने वाले लाखों रूपये बिना नाम के दे रहे हैं। वह देता है तो सोचता है यह मेरा नहीं।

देने वाले ऐसे हैं जिनका पता तक नहीं चलता। आचार्य भगवन्त की भाषा में कहूँ-अगर यह पेट लेता ही लेता जाये और देना बन्द कर दे तो.....। आप खाते ही खाते जायें और निकालना बन्द कर दो तो ? क्या डॉक्टर को नहीं बुलाना पड़ेगा ? इसलिए कहा-सौ हाथ से लीजिये, हजार हाथ से दीजिये ।

नीति की कहावत है-आपके पास माँगने के लिए कोई आया वह आपको कह रहा है-

**शिक्षयन्ति न याचन्ते, भिक्षाचराः गृहे गृहे ।**

**दीयतां दीयतां दानमदातुं फलमीदृशं ॥**

ये माँगने वाले जो भी आ रहे हैं आपको सीख देने के लिए आ रहे हैं कि हमारे पास भी कभी था, पर हमने दिया नहीं इसलिए आज माँग रहे हैं। आपके पास है, आप दो तो आपको मिलेगा, नहीं तो आपको माँगना पड़ेगा। किसी ने कहा है-

**जगतो तो जाणे नहीं, माता-पिता रो नाम ।**

**तात-पिता रटतो रहे, निशदिन यो ही काम ॥**

माता के पिता को नाना कहते हैं, वे 'ना' कहना नहीं जानते। तात के पिता को दादा कहते हैं जो 'दो' का सूचक है। व्यक्ति 'नाना' नहीं 'दादा' का

नाम रटता है। यही इन नामों की सार्थकता है। यह तो परिवार की बात हुई, किन्तु समाज के लिए सहयोग करना भी व्यक्ति का कर्तव्य है।

समाज-धर्म में सहयोग करना भी दान है। जितनी-जितनी संस्थाएँ चलती हैं वे सब सहयोग से चलती हैं। सब देने वाले भी नहीं होते तो सब नटने वाले भी नहीं होते।

**सारा देवे तो राखे कठे, सारे नटे तो जावे कठे।**

आपके पास देने को द्रव्य है तो निर्जरा के लिए दीजिये। आपके पास समय है तो उसका दान कीजिये। आपके पास अक्ल है तो अज्ञानी के अज्ञान को दूर कीजिये। आपके पास प्रेम है तो प्रेम दीजिये। आपने जो कुछ पाया है, वह दीजिये। जो देगा वह तिरेगा।



## शील से सुवासित हो नारी

(24 सितम्बर 1997 को जोधपुर में श्राविका-अधिवेशन के अवसर पर प्रदत्त यह प्रवचन नारी में सदगुण और सदाचरण की आवश्यकता का प्रतिपादन करता है।)

तीर्थঙ्कर भगवान महावीर की अन्तिम-आदेय वाणी उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें अध्याय में दो प्रकार के जीवों का वर्णन मिलता है-एक-बुभुक्षु और दूसरे मुमुक्षु। बुभुक्षु का अर्थ है-भोग की इच्छा वाला, मुमुक्षु का अर्थ है-मोक्ष की इच्छा वाला। एक संसारी कामनाओं की पूर्ति में प्रयास करने वाला है तो दूसरा बन्धन को काटकर स्थायी सुख हेतु साधना करने वाला है।

भूखे व्यक्तियों की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। उन्हें कितना ही प्राप्त हो जाय, वे हमेशा अतृप्त रहे हैं, अतृप्त रहेंगे। कुछ लोग वस्तुओं, व्यक्तियों के नहीं मिलने से भूखे हैं, कुछ लोग इन्हें पाकर के भोग की शक्ति नहीं रहने से भूखे हैं। कुछ इन्हें प्राप्त किए हुए हैं, पर दूसरों की नजर नहीं पड़ जाय इसलिए भूखे हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि जो पाया है उसका वियोग नहीं हो जाय, इस चिन्ता में भूखे हैं। तीर्थঙ्कर भगवान महावीर ने कहा-

कस्मिं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।

तेणावि से न संतुस्से, इङ् दुप्पूरए इमे आया ॥उत्तरा. 8.16 ॥

उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें अध्याय की सोलहवीं गाथा को भगवन्त की भाषा में कहूँ-

**धनधान्यों से पूर्ण विश्व यह, दिया एक को यदि जाए।**

**सन्तुष्ट नहीं होता उससे भी, इच्छा दुष्पूर न भर पाए॥**

एक घर मिल जाय, एक सुशील नारी मिल जाय, एक जीवन चल सके इतना धन मिल जाय, क्या उससे मनुष्य को सन्तोष आयेगा? यही नहीं उसे यदि एक हजार रानियाँ मिल जायें, एक ग्राम-नगर की जागीर मिल जाये और सात पीढ़ियाँ खावे उतनी लक्ष्मी-सम्पदा मिल जाये फिर भी मनुष्य भूखा ही रहता है। शास्त्र तो इससे आगे बढ़ रहा है। शास्त्र कह रहा है कि विश्व में जितना धन है, सोना-चाँदी-नकद-रत्न हैं वे सभी एक आदमी को दे दिए जायें फिर भी वह भूखा ही रहता है। हजार रानियाँ मिल गई, फिर भी रावण सीता का हरण कर रहा है। छः खण्ड का राज्य मिल गया, हजरत की भूख अभी भी नहीं भगी, सातवें खण्ड को साधने जा रहा है। पच्चीस हजार देवता सेवा करने वाले हैं तब भी भूख बाकी है। आगम कहता है- ‘जहा लाहो तहा लोहो।’

जैसे-जैसे लाभ होगा, वैसे-वैसे लोभ बढ़ेगा। ज्यों-ज्यों मिलता जायेगा, लोभ का गङ्गा गहरा होता जायेगा। ज्यों-ज्यों मनुष्य पाता जायेगा, त्यों-त्यों भूख बढ़ती रहेगी। यह भूखे आदमी की पहिचान है।

‘भूख’ शब्द का अर्थ है- ‘भू’ यानी जमीन और ‘ख’ यानी आकाश। जमीन पर रहते हुए जिसको आसमान दिखाई दे, यहाँ रहते हुए देवों की सम्पदा की इच्छा करे फिर भी तृप्ति नहीं हो उसे भूख कहते हैं। यह भूख, यह तृष्णा एक जन्म से नहीं, जन्म-जन्म से लगी हुई है। इसी भूख ने विग्रह करवाये हैं, इसी भूख ने धर्म का सत्यानाश किया है, इसी भूख ने नीति,

मर्यादा और जीवन की विशुद्ध पद्धतियों का लोप किया है। ‘उत्तराध्ययनसूत्र’ के नवम अध्ययन में यही बात कही जा रही है।

सुदर्शनपुर नगर में मणिरथ राजा था। उसके एक छोटा भाई था, जिसका नाम युगबाहु था। युगबाहु की शीलवती धर्मपत्नी थी ‘मदनरेखा।’ मदनरेखा के रूप को देखकर युगबाहु के भाई मणिरथ की भूख जागृत हुई। नीति तो कहती है-चार प्रकार की पुत्रियाँ होती हैं, उनमें अनुज वधू भी पुत्री के समान गिनी जाती है,- “अनुजवधू भगिनि सुत नारी, सुन सठ ये कन्या समचारी॥” -रामचरित मानस ॥ पर भूख इन्सान की सारी मर्यादाओं का लोप कर देती है।

भारतीय संस्कृति में नारी को पूज्या माना गया है। प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक स्थिति में नारी को आदर और सम्मान दिया गया है। आज जिस नारी का वर्णन मैं करने जा रहा हूँ, ऐसे दिन में वर्णन करने जा रहा हूँ, जिस दिन नारी-रत्नों का सम्मेलन होने जा रहा है।

नीति स्पष्ट कहती है कि पुरुष को संस्कार देने से भी अधिक आवश्यकता नारियों को संस्कार देने की है। आदमी संस्कारित होगा तो एक ही घर को चमकाएगा और यदि नारी संस्कारित होगी तो वह दो कुलों को उजागर करेगी। आदमी संस्कारित होगा तो अपना निर्माण करेगा और नारी संस्कारित होगी तो घर-परिवार-समाज-राष्ट्र का निर्माण होगा।

नीति पर चलने वाली नारी बन्दनीय रही है। साहित्य में तो यहाँ तक मिलता है कि नारी बर्फ-सी शीतल है तो अग्नि-सी उष्ण है। नारी दाख-सी कोमल है तो वज्र-सी कठोर है। नारी सागर-सी गम्भीर है तो पर्वत-सी ऊँचाई वाली है। नारी वात्सल्य भाव वाली बन कर व्यक्ति को स्नेह-सद्भाव से भर देती है तो कठोर बनते समय काल सी छूर बन जाती है। दयालुता में उसका

नम्बर लक्ष्मी के सदृश है तो प्रचण्ड रूप धारण करने पर वह दुर्गा सी चण्डी भी है। समस्याएँ उत्पन्न होने पर नारी सरस्वती के जैसा समाधान करने वाली है तो समर्पण किया में इतनी भोली होती है कि अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है। भारतीय नारी के बारे में ‘इदं इत्थं’ कुछ भी कहना कठिन है।

नारी ने तीर्थङ्करों को जन्म दिया है, इसलिए तीर्थङ्करों के समान तीर्थङ्कर की माता भी वन्दनीय होती है। जिसे आप त्रिलोक-पूज्य मानते हैं जो तिरने-तारने वाले हैं, जो तीर्थ के संस्थापक हैं, उनको जन्म देने वाली कौन ? नारी। मनुस्मृति में कहा है-

**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।**

जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ सुख-सौभाग्य के देव रमण करते हैं। ‘नारी’ शब्द का सधि-विच्छेद (न+अरि) करेंगे तो फलितार्थ होगा जिसका कोई दुश्मन नहीं है और जो किसी का दुश्मन नहीं है वह नारी है। नारी का कोई दुश्मन नहीं, नारी किसी की दुश्मन नहीं, क्योंकि उसके जीवन में स्नेह है, प्रेम है, वात्सल्य है, कर्तव्य परायणता है, करुणा और ममता है। नारी, धरती के समान धैर्यशालिनी है। परन्तु ऐसी नारियाँ कम मिलती हैं। जो ऐसी नारी होती है वही पूज्या होती है।

तीर्थङ्कर कहिये, गणधर कहिये, सत्यवादी कहिये, शीलवान कहिये, दयालु कहिये, नीतिमान कहिये, बुद्धिमान कहिये-इन सबको जन्म देने वाली मातृ रूपा पूज्या नारी ही है। इसने ऐसे लालों को जन्म दिया है जिन्होंने संसार में नीति, धर्म और चारित्र का निर्माण किया है। कहा तो यह जाता है-

**“खन्तिसूरा अरिहन्ता”**

क्षमा करने में अरिहन्त भगवन्त के समान कोई नहीं। इसी प्रकार साधक सन्त सहनशील होते हैं, परन्तु नारी की-माता की सहनशीलता तक

कोई नहीं पहुँच पाता। मैं कई बार कह चुका हूँ, आज फिर कह रहा हूँ-आप किसी नौकर को आज्ञा दो और वह नहीं माने तो आपका चेहरा दूसरी बार कहने के साथ बदल जायेगा। कभी घर वालों को किसी काम का कहें तो शायद दूसरी-तीसरी बार कहने का मन नहीं करेगा और आप सोचेंगे कि काम करवाने के बजाय खुद कर लेना अच्छा है। पर इस जननी को देखो जिसने आपको बैठाने में सौ बार सहारा दिया, खड़े होने में अँगुली पकड़ कर खड़ा किया, बोलना सिखाया, कितनी बार मेहनत की है। लेकिन माँ के मन में कभी रोष नहीं आया। कहलाने को तो आप पिता कहलाते हैं, दर्जा माता से ऊपर गिना जाता है, शायद बच्चे को संस्कार देने का मौका आए तो आप दूसरी-तीसरी बार में थक जायेंगे। हैरान परेशान हो उठेंगे।

नारी, जीवन-निर्मात्री है, भाग्य विधात्री है। इसने चाहा, तो एक नहीं, सात-सात वैरागी बना दिये। इसने चाहा तो पेट में रहने वाले को जन्म न देकर गर्भपात करा दिया। निदान करने वालों में भी इसने ऐसा प्रेम उत्पन्न किया, जिससे वह पिंजरा तोड़ने को रवाना होगया। इसने चाहा तो क्रोध को कपूर की तरह उड़ा दिया। पाँच-पाँच, सात-सात लड़कों के हत्यारे को माफ कर दिया, यह कह कर कि मैं अपने बेटों के लिए रो रही हूँ तुम्हारी माँ भी इसी तरह रोयेगी। यह धैर्य-क्षमा अगर किसी में है तो वह है माँ में। ऐसी क्षमा दुनिया में विरलों को प्राप्त होती है।

नारी मातृ-रूप में पूज्या है तो देवी रूप में आदरणीय। ऐसी कौनसी विद्या, कला या साधना है जिसमें देवियों को याद नहीं किया? धन चाहिये तो लक्ष्मी को, ज्ञान चाहिये तो सरस्वती को, शौर्य चाहिये तो काली-दुर्गा को याद करते हैं। आचार्य भगवन्त फरमाते थे-नारी अगर सती-साध्वी है, वन्दनीया है, पूज्या है और अगर पुत्र उत्पन्न नहीं करती उसकी भाषा में वन्ध्या

है, किन्तु पतिव्रता है तो भी वह सती-साध्वी की तरह पूज्या है। यह पुत्र उत्पन्न नहीं करके भी धरती के धर्म को बदलने की सामर्थ्य रखती है। अपने पतिव्रत धर्म के सहारे, ब्रह्मचर्य के सहारे, शीलवती नारी धरती का धर्म बदल सकती है। शेर जैसा खूँखार जानवर उसके समक्ष कुते की तरह पूँछ हिलाकर निकल सकता है। गले में पड़ा साँप फूलमाला बन सकता है। इसके स्पर्श से अग्नि की ज्वाला शान्त हो सकती है, इसके शील की शक्ति से कच्चे सूत की साँकल बन सकती है, सौ छेद वाली चलनी में पानी रुक सकता है। ऐसी नारी पुत्रवती है तो भी पूज्या है। अगर वह पुत्र उत्पन्न करती है तो अपने साथ जगत का कल्याण करने में सहायक बनती है। उसके मातृभाव में पूज्य पद पाया है।

आपने गार्गी के रूप में ऐसी-ऐसी सतियों की बातें भी सुनी होंगी, जिन्होंने ब्रह्मज्ञान वाले सन्तों को तर्क और विद्या के आधार से परास्त किया है तथा सैंकड़ों गिरे हुए पतन-मार्गियों को उठाने का प्रयास किया है। आदमी पथ भूल जाता है पर नारी ने मर्यादा का पथ कायम रखा है। रथनेमि पथ भूल गया, पर राजुल के सुभाषित वाक्यों से सन्मार्ग पर आ गया। रथिक पथ भूल गया पर चेलना ने उसे भी सद्गुद्धि देने का अनुपम श्रेय लिया है। महासती मदन रेखा के माध्यम से विद्याधर ‘मणिप्रभ’ सहीपथ पर आ गया। आप महिलाएँ धर्म पर कायम रहें तो समाज में सुधार होते देर नहीं लगेगी। आपका प्रभुत्व कायम रहेगा तो अनीति अन्याय दरवाजे में घुस नहीं सकते।

भगवन्त (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) फरमाते थे-गाँव के ठाकुरों की ठकुरानियाँ ऐसी होती थीं जो शासकों को मांस-मदिरा से दूर रखती थीं। उनके चौके में अखाद्य-अपेय प्रवेश नहीं कर सकता था। गौरव के साथ कहना चाहिये कि प्रत्येक तीर्थঙ्कर के शासन-काल में जितने संत बने उनसे साधियों की संख्या ज्यादा रही, पर आज न जाने सहधर्मिणी, पतिव्रता,

वात्सल्यमयी माता को समान अधिकार का भूत कहाँ से लग गया, कह नहीं सकता। सहधर्मिणी, सह धर्मिणी रहे, वह बराबर का हक पाने की कोशिश करेगी तो अपना सत्त्व खो देगी। आदर-सम्मान घटा देगी। मेरा यह कथन कार्य की दृष्टि से नहीं है, अधिकार की दृष्टि से है।

इतना जरूर याद रखिए कि अधिकार की चाहना से अधिकार नहीं मिलते, किन्तु समर्पण से सारे अधिकार मिल जाते हैं। जिसने समर्पण करना सीख लिया वह सर्वपूज्य बन गया।

घर में पिता है, पुत्र है, बहन है, भोजाई है, बड़े पिता है उन सबको जो अधिकार नहीं मिलता वह बाहर से आने वाली बहू को मिल जाता है। जो बहू समर्पण करके आती है घर की मालकिन बन जाती है। नारी ने देने में भी मर्यादा रखी है। स्कन्ध पुराण कभी पढ़िये वहाँ वर्णन मिलता है कि हिमराज की पुत्री पार्वती ने शंकर को प्राप्त करने के लिए लम्बे काल तक कठोर तपस्या की। तब तक तप करती रही जब तक शंकर से साक्षात्कार नहीं हो गया। शंकर ने कहा-मैं तुम्हारा तपः पूत दास हूँ। मैंने सब कुछ तुझे अर्पित कर दिया। पार्वती बोली-‘देव! मैं मन तो आपको पहले ही दे चुकी, किन्तु शरीर तो जन्म देने वाले माता-पिता का है, अतः उनसे सम्मान प्राप्त करें। “मनसस्त्वं प्रभुः शम्भो ! दत्तं तत्त्वं मया तव । वपुष पितरावेतौ, सम्मानयितुमर्हसि ।” मन की चाहना होने पर भी अनुचित कार्यरूप मिलन की भूल पार्वती ने नहीं की।

सैकड़ों दृष्टान्त कहे जा सकते हैं महियामयी मर्यादाशीला महिलाओं के। नारी ने अपने आपको आग में सौंप दिया, जीभ खींच कर प्राण दे दिये, पर शील का हरण नहीं होने दिया। नारी की महिमा उसके शील से है, धर्म से है, ममता से है मर्यादा से है। जिस दिन शीलधर्म और मर्यादा में कमी आयेगी

उस दिन वह नारी नहीं नागिन कहलायेगी, देवी नहीं राक्षसी शब्द से सम्बोधित होगी। माथा उसके पैरों में डालने के बजाय जेल में भी मिलने का प्रसंग आयेगा तो दाँतों से उसकी नाक काट ली जायेगी। यह एक सच्ची घटना है। नाक काटने वाले से जेलर ने पूछा-यह क्या किया? उसने कहा यह मेरी माँ नहीं, मुझे मारने वाली है। जिस दिन पाठशाला से मैंने पैसिल चुराई, उस दिन यह मुझे डाँट देती तो मैं चोर नहीं बनता और चोर नहीं बनता तो मेरी यह दशा नहीं होती।

अगर नारियाँ जागृत हो जायें, मर्यादाएँ कायम कर लें, शील पर दृढ़ हो जायें तो संसार की काया पलटते देर नहीं लगे। उस सन्नारी मदन रेखा ने नरक जाने वाले पति को चन्द क्षणों में स्वर्ग में भेज दिया। ऐसे कई प्रसंग हैं जिन्हें आप जानते हैं, पर रथ एक चक्र से नहीं चलेगा। सती शीलवती है, पति व्यभिचारी है तो यह ऊँट-बैल की जोड़ी है। ऐसी जोड़ी चलने वाली नहीं है। एक दिन उलट जायेगी।

विश्व का आधा भाग नारी है 'अर्द्धनारीश्वर' के रूप से। सामाजिक रूप से शायद नारी ने ऊपर नम्बर पाया है। 'गोविन्द-राधा' कोई नहीं बोलता सब 'राधा-गोविन्द' बोलते हैं। सब नारी को पहले बोलते हैं-राधे गोपाल, सीताराम आदि। जिस शील के कारण आपका नाम आगे है आप उसे आगे रखकर चलें। आप अपनी मर्यादा बनाकर चलेंगी तो आपको पीछे रखने वाला कोई नहीं है।

आप स्वयं जागृत बनिये। आप मात्र लिपिस्टिक-पाउडर लगाकर, उजली साड़ियाँ पहन कर, अपना शरीर, अपने बर्तन और आँगन धोकर सन्तोष नहीं कर लें, आप मन को संस्कारों से उज्ज्वल करें, शरीर को शीलगुण से सुवासित करें।

आप सेवा कार्य करने वाली सभी बहिनें वेशभूषा से एक-सी साड़ी पहन कर आ जाएगी लेकिन एक रूप के कपड़ों से एकता नहीं आने वाली है, आप सदुणों से एकता का परिचय उपस्थित करें। आप दिखने में अलग दीखें पर मर्यादाओं से मन अलग नहीं रखें। अपने-अपने घरों में, मनों में इस बात को तोलना कि आप दो हैं या एक। अगर दो हैं तो मारवाड़ी में कहावत है- जहाँ दो बर्तन हैं वहाँ खड़खड़ाहट होगी। बाहर से दो होना खराब नहीं। पाजामा नीचे से दो है, ऊपर से तो एक ही है। जहाँ एक मन है वहाँ स्वर्ग है, जहाँ विकारों के विविध रूप हैं वह नरक है। इसलिए आप स्वयं जर्गें। आप जग गई तो निश्चित मानिए आपका घर जग जायेगा। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति भी अगर जगी हुई माँ के पास है तो नीति कहती है- “एक सती नगर सारा, एक चन्द्रमा नवलख तारा।” सारे नगर वाले मिलकर भी एक सती का मुकाबला नहीं कर सकते। आप संसार में रहते हुए स्वर्ग-सा सुख उत्पन्न कीजिये यह आपका कर्तव्य है, धर्म है, मर्यादा है।

□☆□

## दान-शील-तप-भावना

(25 अप्रैल 2001 को औरंगाबाद में फरमाया गया यह प्रवचन दान, शील, तप एवं भावना में विशेषतः ब्रह्मचर्य-पालन के महत्व को उजागर कर रहा है।)

तीर्थঙ्कर भगवान महावीर ने संसार समुद्र से तिरने के चार मार्ग बतलाये हैं-ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। दान, शील, तप और भावना के नाम से भी मोक्ष-मार्ग कहा गया है। इन चारों मार्गों में से एक का अवलम्बन लेकर भी अनन्त प्राणी संसार से तिरने की ओर आगे बढ़े हैं।

जीवन में एक बार दिया हुआ दान संसार समुद्र से पार लगाने वाला हो सकता है। महाराजा शंख ने मात्र धोवन पानी बहराया और उससे उनके तीर्थकर गोत्र का बन्ध हो गया। संगम ग्वाले ने खीर का दान दिया और उस जीव को शालिभद्र के रूप में अखूट सम्पत्ति प्राप्त हुई एवं फिर संयम-मार्ग अपनाकर जीवन सार्थक किया। ऐसे एक नहीं, अनेकानेक उदाहरण उपलब्ध हैं। दान देकर सम्यक्त्व प्राप्त करने वालों ने आगे बढ़कर “तिन्नाणं-तारयाणं” वाला तीर्थकर पद प्राप्त किया है।

दान का मार्ग सबसे सरल और सहज है। छोटा बच्चा भी इस मार्ग पर बढ़ सकता है। अंतगडदसा सूत्र में अतिमुक्त कुमार का उल्लेख मिलता है। खेल खेलने वाला राजकुमार अतिमुक्त गणधर गौतम को भिक्षा के लिए जाते देख जिज्ञासा करता है-“आप कहाँ जा रहे हैं?” गणधर गौतम बालक

की जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- “मैं भिक्षा के लिए जा रहा हूँ।” गणधर गौतम चौदह पूर्व के ज्ञाता और चौदह हजार श्रमणों के मुखिया भगवान महावीर के ज्येष्ठ और श्रेष्ठ शिष्य एवन्ता (अतिमुक्त) के द्वारा परिचय पूछने पर कहते हैं- “मैं भगवान महावीर का शिष्य गौतम हूँ।” आज आपमें से किसी से परिचय पूछा जाय तो अधिकांश लोग अपना नाम बताते हैं। महाराष्ट्र में रिवाज है- अपना नाम पहले, पिता का नाम बाद में। गणधर गौतम प्रभु महावीर के शिष्य के रूप में अपना परिचय देते हैं। एवन्ता कुमार का बाल-मन केवल खेल में ही सीमित नहीं था, वह खेल को भूलकर गणधर गौतम के साथ चलता है और कहता है- “आप मेरे साथ मेरे घर पधारिए। वहाँ आपको भिक्षा मिलेगी।”

गणधर गौतमस्वामी ने भिक्षा ग्रहण की और भगवान महावीर के चरणों में पहुँचने की भावना से वे लौटने लगे। एवन्ता पृच्छा करता है- “क्या मैं भी आपके साथ चल सकता हूँ?” गौतम स्वामी ने कहा- “अहा सुहं” जैसा तुमको सुख हो। एवन्ताकुमार ने भिक्षा की दलाली में उपदेश सुना और वैराग्य हो गया। मैं दान की बात कह रहा हूँ कि दान से तिरना कैसे संभव है?

शीलधर्म के कई चमत्कार हैं। शील की ताकत से शूली का सिंहासन बन सकता है, चालनी से पानी निकाला जा सकता है, साँप माला के रूप में बदल सकता है। शील धर्म है, तो शेर का कान पकड़ कर उसकी सवारी की जा सकती है। माताओं की अगर महिमा है तो उसके पीछे शील धर्म कारण रहा हुआ है। उन्होंने अपने तन पर किसी अन्य पुरुष को हाथ नहीं लगाने दिया। जीभ खींचकर प्राण दे दिये, जलती चिता में कूद गई, जर्मिंदोज हो गई, परन्तु अपने शीलधर्म की उन्होंने रक्षा की। सतियों पर कैसे-कैसे संकट आए? उन संकटों में भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा और अपने शीलधर्म को सुरक्षित रखा। शील की अखण्डता के कारण उनका नाम पुरुष के नाम से

पहले लिया जाता है। पुरुषों के सारे कार्यों में प्रधानता होती है, परन्तु जहाँ भी नाम आता है पहले नारी का नाम रहता है। सीताराम हो या गौरीशंकर, नारी के नाम के बाद पुरुष का नाम आता है। श्यामराधे नाम कोई नहीं रखता, राधेश्याम नाम ही सुनने को मिलता है।

मैं आपको तिरने के मार्ग बता रहा हूँ। दान तिरने का मार्ग है, शील तिरने का मार्ग है। ऐसे ही तप भी तिरने का मार्ग है। तप बाह्य एवं आध्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। फिर उनके अनशन, ऊनोदरी आदि भेद हैं। किन्तु किसी अपेक्षा से कहा गया है- “तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं।” तपों में कोई श्रेष्ठ तप है, तो वह है ब्रह्मचर्य। आज कई लोग हैं जिन्होंने इसकी महिमा को भुला दिया। दूसरे शब्दों में लोग वासना और कामना के इतने आधीन हो गये कि उनकी इस व्रत की ओर बढ़ने की हिम्मत नहीं होती। आपने सुना है-आचार्य भगवन्त ने दस वर्ष की उम्र में संयम ले लिया था। आप आज भी इन बालमुनियों को देख सकते हैं, दस-बारह-तेरह वर्ष के मुनि हैं। एक तरफ ऐसे उदाहरण हैं तो दूसरी तरफ बहुत से ऐसे भाई हैं, जिनकी उम्र साठ को पार कर गई है। उनके बेटे तो हैं ही, बेटे के बेटे भी हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का कहें तो उनमें साहस नहीं दिखाई देता। बाल काले थे, सफेद हो गये। बाल का कालापन तो चला गया, मन का कालापन अभी तक नहीं गया।

मैं सभा में बैठे श्रावकों से कभी-कभी प्रश्न करता हूँ कि आप बुजुर्ग हो गये, आपने कभी कबड्डी, या गिल्ली-डण्डा नहीं खेलने का नियम लिया था? आपने कबड्डी नहीं खेलने का नियम नहीं लिया, पहलवानी के सौंगन नहीं किये। आपको अगर आपका पोता कहे-“दादा! आओ कबड्डी खेलते हैं तो.....?” आपमें से कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो जवाब देंगे-“मारे काँई गोड़ा फोड़ावना है। तूँ म्हारे काँई हाड़का तोड़ायी।” यह उम्र कोई खेलने की है? आप कबड्डी खेलने का मना कर जाते हैं, फिर वासना की कबड्डी में

आपका मन क्यों आसक्त है? अवस्था के साथ व्यवस्था होनी चाहिए। यह वासना का खेल कब तक खेलते रहोगे? अवस्था के साथ व्यवस्था बदलती है, आप चाहे नियम लें, न लें आपको संकल्प करके चलना चाहिये। मैं शील की ताकत की बात कह रहा हूँ। तपों में श्रेष्ठ तप ब्रह्मचर्य की महत्ता बता रहा हूँ।

जयपुर में एक दादूंथी आश्रम है। दादूंथी भी अपने तरीके से साधना करते हैं। आश्रम में रहने वालों को कनक और कामिनी से दूर रहना पड़ता है। आश्रमवासी न पैसे के साथ सम्बन्ध रखते हैं और न ही औरत के साथ। आश्रमवासी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं। भक्तिवासी बहिन ने भूल से एक दिन दूध में शक्कर डालने के बजाय पतंग की डोर में माँजा बनाने में जो काँच का बुरादा लगता है, डाल दिया। काँच की तासीर है वह नसों और हड्डियों को छेद-छेद कर देता है। आश्रमवासी के काँच मिला हुआ दूध पीने में आ गया। दूध पीते ही उसका प्रभाव शरीर पर परिलक्षित होने लगा। उस भाई ने कसरत प्रारम्भ की और सारे काँच को पसीने के माध्यम से बाहर निकाल दिया। यह है ब्रह्मचर्य की ताकत का नमूना। आप बाल-ब्रह्मचारी नहीं बन सकें तो कोई बात नहीं, अब भी आप ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकते हैं।

अवस्था के साथ व्यवस्था बनाकर चलने में हित है। यह बात त्याग-तप के लिए ही नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में जरूरी है। आज कई लोग हैं जो लकड़ी लेकर चलते हैं, फिर भी उनसे दुकान नहीं छूटती। आँखें काम नहीं देती, सुनने में दिक्कत है फिर भी जब तक बाजार नहीं जाते उन्हें चैन नहीं मिलता। बच्चे कहते हैं- “पिताजी, आप दुकान क्यों आते हैं?” लड़के नहीं चाहते, तब भी उनका मन नहीं मानता। सामायिक-प्रतिक्रमण में तो कहने पर भी नहीं आते हैं और दुकान लड़कों के मना करने भी जाते हैं। मन

लगाने के लिए घण्टों ताश खेल लेंगे, परन्तु एक से दूसरी सामायिक उन्हें भारी लगती है।

मैं कल कह गया, आज फिर कह रहा हूँ तीर्थकर जैसे देव और निर्गन्ध जैसे गुरु भी मिल जायेंगे, पर जब तक करणी नहीं होगी तब तक तिरना नहीं होगा। तिरने के सोपान हैं-दान, शील, तप और भावना। दान छोटे-बड़े सब दे सकते हैं। शील और तप में प्रयास किया जा सकता है और भावना में शुभ विचारों का समावेश होता है। भावना है, तो शील का आराधन है और भावना है, तो तप में पुरुषार्थ फलित होता है।

आपके लिए अवसर उपस्थित है। आज कुछ लोग सामायिक में बैठे हैं। जो भाई खुले बैठे हैं, वे सामायिक करके प्रवचन सुनें तो उन्हें सहज लाभ हो सकता है। आप सुन्न हैं, मेरे ज्यादा कहने की जरूरत शायद नहीं है। घर में मेहमान आते हैं तो मिठाई मिल जाती है। पावणे आ जायें तो घर के छोटे-बड़े सभी सेवा में तत्पर रहते हैं। आप यह समझें महाराज भी पावणे हैं। आपकी सामायिक में उपस्थिति स्वयं के लिए तो हितावह है ही, संघ के लिए भी शोभादायक होगी। आप यहाँ उपस्थित हैं, इसलिए प्रेरणा के दो शब्द सुनने को मिल रहे हैं अन्यथा हम घर-घर जाकर तो प्रेरणा नहीं कर सकते। औरंगाबाद श्री संघ के श्रावक-श्राविकाओं से मेरा आह्वान है कि आप सब धर्मस्थान में एक सामायिक चाहे संत-सती हों, न हों, जरूर करेंगे। मेरा बुजुर्गों से आह्वान है कि आप श्रेष्ठ तप ब्रह्मचर्य की ओर ध्यान दें। आप करणी करेंगे तो आपको उसका फल मिलेगा। इन्हीं शब्दों के साथ.....।

□☆□

## चातुर्मास का मंगल सन्देश

(सन् 1994 के जोधपुर चातुर्मास के प्रारम्भ में प्रदत्त प्रवचन साधना की दृष्टि से चातुर्मास की महत्ता स्थापित कर रहा है।)

### सिद्धि की ओर बढ़ें

परम-पुनीत चातुर्मासिक पर्व पूर्णमासी को उपस्थित हो रहा है। साधक साधना के सोपानों पर चरण बढ़ाकर पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र की भाँति अपनी साधना की समस्त कलाओं को विकसित करता हुआ सिद्धि की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहे, यही इस पर्व का पावन सन्देश है।

### साधना के लिए सन्नद्ध हों-

आप श्रोता भी साधक हैं और हम वक्ता, जिनवाणी के उपदेशक तो साधक हैं ही। आप और हम सन्नद्ध हो जाएँ चातुर्मासिक साधना के लिए, आध्यात्मिक आराधना के लिए, आत्म-विकास के लिए। यों तो हर क्षण, हर पल आध्यात्मिक आराधना, धर्म-साधना होनी ही चाहिए। जो भी समय, जितना भी समय हम इस पुनीत कार्य में, अनुष्ठान में लगायेंगे वही समय सफल होने वाला है। ऋषि-महर्षियों ने, साधु-सन्तों, ज्ञानियों और आचार्य भगवन्तों ने, तीर्थकर-भगवन्तों और अर्हन्तभगवन्तों ने धर्म के क्षेत्र में चातुर्मासिक पर्व को विशेष महत्त्वपूर्ण बतलाया है।

## चातुर्मासिक पर्व का महत्व

चातुर्मासिक पर्व प्रतिवर्ष उपस्थित होता है। साधक प्रतिवर्ष साधना की ओर आगे से आगे कदम बढ़ाने का प्रयत्न करता है। आत्मोन्नति की लगन जिसे लग जाती है, उस साधक के लिए यह पर्व अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ज्ञानियों ने चातुर्मासिक पर्व की तीन बातों का विशेष वर्णन किया है- 1. पर्व की प्रधानता, 2. पर्व की पवित्रता, 3. पर्व की प्रगतिशीलता।

### चातुर्मास की प्रधानता

चातुर्मासिक प्रमुखता को हम जल के साथ जोड़ लेते हैं। जीवन के लिए जल की प्रमुखता स्वयं सिद्ध है और चातुर्मास अर्थात् वर्षा ऋतु के चार मास रिमझिम-रिमझिम जल वर्षा कर जगत को जीवन देते हैं। एकेन्द्रिय अर्थात् वृक्षादि से लेकर पंचेन्द्रिय मानव तक प्राणी मात्र का पोषण करने वाला तत्त्व है यह जल। चार माह बरसता है, वर्ष भर सरसता है, जीवन देता है।

### बारह में से चार गए, क्या बचा ?

एक राजा ने दरबार में एक प्रश्न पूछा- “बारह में से चार चले गए तो पीछे क्या रहा ?” आप कहेंगे, बड़ा सरल प्रश्न है। पहली, दूसरी कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा भी बता सकता है यह बात तो। शायद आप ठीक कहते हों क्योंकि अंकगणित के ज्ञान से बारह में से चार घटाने पर आठ बचेंगे। यह प्रारम्भिक शिक्षा में ही सिखा दिया जाता है। अब आप सोचिए राजा ने दरबारियों से क्यों पूछा इतना सरल प्रश्न ? अवश्य कुछ गूढ़ता रही होगी। इसीलिए तो तीर्थकर भगवन्तों ने अनेकान्तवाद के द्वारा स्पष्ट दिग्दर्शन किया है कि किसी वस्तु का एक ही पक्ष, एक ही स्वरूप न देखकर, उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करना चाहिए। अन्य-अन्य अपेक्षाओं से वस्तु का भिन्न-भिन्न स्वरूप ज्ञात होता है।

राजा के दरबार में बैठे सैकड़ों दरबारियों ने अपने-अपने दिमाग लड़ाकर अनेक तरह के उत्तर दिए, पर राजा किसी भी उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुए। दरबारियों पर धूमती हुई राजा की असन्तुष्ट दृष्टि अपने महामन्त्री के चेहरे पर अटक गई। संकेत समझ महामन्त्री ससम्मान खड़े हुए और बोले- “अन्नदाता ! बारह में से यदि चार चले गए तो पीछे कुछ भी नहीं बचेगा।”

सभी सभासद अचम्भित ! ऐसे विज्ञ, सुज बुद्धि-विधाता महामात्य आज कैसी अबूझी सी विचित्र बात कह रहे हैं। सभी के चेहरों पर उलझन, सभी के नयनों में प्रश्न, एक ही प्रश्न कि मंत्रीवर यह कैसे ?

पृथ्वीपति ने भी अपनी सन्तुष्टि के लिए प्रतिप्रश्न किया- “यह कैसे मंत्रीवर ?” नाथ ! एक वर्ष में बारह मास होते हैं। इन बारह महीनों में से वर्षा ऋतु के, चातुर्मास के चार महीनों को निकाल दें तो पीछे तो शून्य ही रहेगा। महाकाल का ताण्डव नृत्य भी होगा, मौत की विभीषका भी होगी। “बिन पानी सब सून।” प्राणी मात्र त्राहि-त्राहि कर उठेगा। न अन्न भण्डारण होगा खाने के लिए और न जलभण्डारण होगा पीने के लिए। आप ही बताइए पशु-पक्षी, मानव, प्राणी मात्र की क्या दशा होगी ?” मंत्री प्रमुख ने प्रत्युत्तर में निवेदन किया।

### चार नहीं तो चौपट

बन्धुओं ! भारतवर्ष की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मानसून पर टिकी है। “मानसून का जुआ” कहा जाता है इस देश को। ऐसे देश में बरसात के चार मास ऋतु चक्र से निष्क्रमित कर दिए जाएँ तो स्थिति चौपट ही होगी।

### जीवनदायी जल और चातुर्मास

मारवाड़ में हर तीसरे वर्ष अकाल या, सूखे का अभिशाप बताया जाता है। इस धरती की गोद में जन्म लेने वाले उद्यमी, व्यवसायी इस धरती को छोड़कर बाहर कमाने चले जाते हैं। सूखा पड़ने पर मजदूर, किसान,

पशुपालक भी पलायन कर जाते हैं। सन्तों और शूरों की यह धरा अपने जाये-जन्मे सपूत्रों से खाली क्यों रहती है?

एक बार गुरुदेव आचार्य भगवन्त ने कृषकों से पूछा- “आप इस तरह अपनी माता अन्नदात्री, जन्मदात्री को छोड़कर बाहर क्यों चले जाते हैं?” किसान कहते- “महाराज! क्या करें अकाल पड़ा है। खाने को कुछ नहीं है। पशुओं के लिए चारा तक नहीं है। हम तो दूध देने वाले अपने प्राणप्रिय पशुओं को भी कुम-कुम का तिलक लगाकर जंगल में आवारा, अनाथ छोड़ने को मजबूर हैं। उनका मरना या बचना ईश्वर के हाथ है। अपनी झोंपड़ी के चारों ओर बाढ़ बनाकर, सुरक्षित कर हम भी धरती माँ को छोड़कर बाहर, अन्य प्रदेशों में जाने को विवश हैं। हमें यह सब अच्छा तो नहीं लगता, पर पानी नहीं है, सूखा पड़ा है अतः मजबूरी है।”

**वस्तुतः** किसी ढाणी, किसी ग्राम, किसी नगर की शोभा, रौनक, चमक-दमक जल से है। कवि कहता है:-

नगरी सोहन्ती जल मूल वृक्षाः  
राजा सोहन्ता चतुरंगी सेना ।  
नारी सोहन्ती गुण-शीलवन्ती  
साधु सोहन्ता अमृत वाणी ॥

जीवनदायी जल प्राप्त होता है चातुर्मास में, अतः चातुर्मास का महत्त्व बढ़ गया है। उसका यह महत्त्व ही उसकी प्रधानता है।

### आध्यात्मिक क्षेत्र और चातुर्मास

सांसारिक और भौतिक क्षेत्र की ही भाँति आध्यात्मिक क्षेत्र में भी चातुर्मास की प्रमुखता की बात उतनी ही सत्य है। इस समय वर्षा, कीचड़, गन्दगी, सीलन आदि के कारण गमनागमन कम होता है, अतः उद्योग एवं व्यवसाय भी कम होता है। ऐसे समय में अधिकतर व्यक्ति समय का सदुपयोग

धार्मिक कार्यों में करते हैं। लगभग सभी परम्पराओं, सम्प्रदायों, फिरकों, पंथों के साधु-सन्त, संन्यासी इन चार महीनों में किसी एक स्थान पर रहकर जन-जन के आत्मलाभ हेतु प्रवचनों एवं धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन करते हैं। विशेष रूप से जैन-मुनि तो आत्म-कल्याण, धर्म-जागृति एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के लिए, जैन श्रावक-श्राविकाओं को जिनवाणी रूप धर्म-सन्देश देने के लिए, सूक्ष्म एवं बादर, छोटे-बड़े जीवों की अनचाही हिंसा से बचने के लिए एक स्थान पर चातुर्मास करते हैं। सदैव पैदल विहार करने वाले हम संत-सती केवल चातुर्मास में चार माह की लम्बी अवधि तक एक स्थान पर रह धर्माराधन करते हैं।

### चातुर्मास की पवित्रता

आत्मलक्ष्यी पर्वों में पवित्रता अत्यन्त आवश्यक होती है। शारीरधर्मा व्यक्ति भी शारीरिक पवित्रता का ध्यान रखते हैं तो आत्मधर्मी ध्यान रखें, यह जरूरी है। शारीर-धर्म और भौतिकता में व्यक्ति का सम्मान संसार के जन्म-मरण को बढ़ाता है जबकि आत्म-धर्म व आध्यात्मिकता का जीवन-लक्ष्य बना लें तो जन्म-मरण घट सकता है। सांसारिक-प्रपंचों में फँसकर भी व्यक्ति यदि धर्म का ध्यान रखे तो उसे पवित्रता की ओर बढ़ता हुआ कदम ही समझना चाहिए।

### शादी विवाह के अनुष्ठान नहीं

चातुर्मासिक पर्व की पवित्रता भी परम्परागत है। भारतीय समाजों में इन दिनों संसार को बढ़ाने वाले शादी-विवाह आदि के अनुष्ठान नहीं किये जाते यद्यपि आज, युग बहुत बदल गया है। भौतिकता की चकाचौंध और आडम्बर के प्रदर्शन ने अध्यात्म के रंग को फीका बनाने में कोई कसर नहीं रखी है। इतना होने पर भी भारत की संस्कृति में अभी परम्पराओं और पर्वों

की पवित्रता बनी हुई है। आज भी भारतीय-व्यक्ति चातुर्मास में शादी-विवाह के अनुष्ठानों से दूर रहकर चातुर्मासिक पवित्रता का निर्वहन करते हैं। अपवाद को छोड़ दीजिए, अपवाद हर जगह होते हैं।

इस देश में अनेक सम्प्रदाय और परम्परा वाले प्रायः देवशयनी एकादशी को देवताओं को सुलाते हैं, उसी के साथ विवाह के इन रीति-रिवाजों को भी सुला देते हैं और आत्मा की अलख जगाने, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की चेतना को विकसित करने तथा सत्संग-स्वाध्याय का लाभ लेने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

### निर्माण कार्य नहीं

इस चार मास के पर्व की पवित्रता के लिए एक परम्परा, लोक-नियम यह भी है कि इन दिनों कोई नया निर्माण कार्य नहीं करवाया जाता। भवन आदि नहीं बनवाया जाता। निर्माण-कार्यों में अर्थ-अनर्थ की अत्यधिक जीव हिंसा होती है। आरम्भ-समारम्भ के कार्यों से बचने के लिए, इनसे होने वाले पापों से बचने के लिए ही ये परम्पराएँ बनायी गई हैं। शादी-विवाहों के बड़े भोजनों में भी आरम्भ-समारम्भ होता है। इस तरह इन दोनों का निषेध, पर्व की पवित्रता को सिद्ध करता है। कुछ मनचले लोग कदाचित् ज्योतिष को, प्राचीन परम्पराओं को और संस्कृति में रहे इस हार्द को नहीं समझते, पर उन्हें भी अपवाद रूप में ही माना जाना चाहिए।

### युद्ध विराम

प्राचीन काल में चातुर्मासिक पर्व की पवित्रता के लिए चार महीनों तक नैतिक रूप से युद्ध बन्द रहते थे। युद्धों की विभीषिका का न होना, जन-जन में अतुलित शान्ति का कारण होता है और शांति में पवित्रता का चिर-निवास रहता है। अनायों की बात अलग है। वे धर्म, संस्कृति, शांति में विश्वास नहीं रखते थे, पर आर्य परम्परा में युद्ध के लिए सेनाओं के प्रयाण के

अवसर आते तो चातुर्मास काल को टाल दिया जाता था। उस समय युद्धों के कुछ नियम थे और उन नियमों का पालन स्वानुशासन में, नीति में शुमार था। राम ने अन्याय के विरोध में युद्ध करने का निश्चय किया पर जब देखा कि अभी चातुर्मास काल है तो उस काल तक युद्ध-प्रयाण को स्थगित कर दिया। चातुर्मास काल के पश्चात् ही युद्ध प्रारम्भ हुआ।

आज युद्ध के मामले में स्थिति भिन्न है। युद्ध के लिए समय-असमय, काल-अकाल, क्षेत्र-अक्षेत्र, ऋतु-अऋतु कुछ भी तो नहीं देखा जाता। आज युद्ध लड़ा जाता है, वैज्ञानिक शक्ति और साधनों से। आज एटमिक प्रहार से संहार होता है विशाल मानव समूह का। आकाश में उड़ान भर कर अथवा समुद्रों में डुबकी लगाकर सेनाएँ अपना काम करती हैं। कौन कितनी तादाद में मर रहा है, इस बात को कोई ध्यान में नहीं रखता। मरने वाला दोषी है या निर्दोष, मूक/अबोले पशु-पक्षी तो नहीं हैं, बालक-वृद्ध-रुण या नारीवृंद तो नहीं है, आज इसका खयाल तक नहीं किया जाता। महाभारत जैसे महाभयंकर युद्ध में भी सूर्यास्त के पश्चात् सेनाओं को लड़ने का हुक्म नहीं था। सूर्यास्त होते ही सेनाएँ अपने खेमों/तम्बुओं में लौट जाती थीं। आज तो असली युद्ध रात्रि में ही लड़े जाते हैं। अध्याधुन्ध फायरिंग, बमबारी फिर चाहे जो मरे। चाहे राष्ट्रीय स्तर के युद्ध हों, विश्व युद्ध हों या उग्रवादी-आतंकवादी लोगों के प्रहार हों कहीं कोई नैतिकता, पवित्रता के नियम नहीं है, पर प्राचीन परम्परा में युद्धों की स्थिति में भी चातुर्मासिक पवित्रता का ध्यान रखा जाता था।

### **भ्रमण, यात्राएँ भी कम से कम**

दयालु, सद्धर्मपालक, सद्गृहस्थ घूमने-फिरने में भी चातुर्मास काल का ध्यान रखते हैं। वर्षा ऋतु में अनेक जीवों की उत्पत्ति और स्थान-स्थान पर हरियाली होने से गमनागमन में, भ्रमण में, यात्राओं में जीव हिंसा होती है। उससे अपना बचाव करने का ध्यान किया जाता है। इन दिनों व्यापार,

व्यवसाय भी कम रहता है। इस मंदी के समय में व्यापारिक-कार्यवश गमनागमन भी कम हो जाता है। वहीं धर्म के व्यापार में चातुर्मास में तेजी आती है। मुनि-दर्शन, प्रवचन-श्रवण, सन्त-सेवा, ज्ञानाराधना, तपाचरण आदि का लाभ इन्हीं दिनों भरपूर कमाया जा सकता है। आचार्य भगवन्त फरमाते थे कि चातुर्मास काल में व्यापार का मन्दा रुख देखकर ज्ञान का प्रकाश पाने और आत्मिक गुणों का विकास करने की भावना से अनेक सुधर्मी श्रावक सपरिवार पूज्य आचार्य भगवन्त श्री शोभाचंद जी म.सा. के चरणों में पहुँचते थे। जिन्हें साधन के साधन अपने ग्राम-नगर में प्राप्त नहीं होते वे कभी अकेले और कभी घर, परिवार छोड़कर संत-सेवा में चातुर्मास स्थल पर उपस्थित हो ज्ञानाराधन करते थे।

आज की स्थिति भिन्न है। युवावर्ग तो युवावर्ग, हमारा बुजुर्ग वर्ग भी बदल रहा है। उन्हें तीर्थ-यात्राएँ चाहिए। घूमना-फिरना चाहिए। गोठघूंघरी चाहिए। दर्शनीय स्थानों, प्राकृतिक स्थलों एवं तीर्थाटन पर जाने वाले खूब मिलेंगे। मनोरंजन के स्थलों, क्रीड़ा स्थलों पर उपस्थिति देने वालों की भी कमी नहीं है। दूरदर्शन पर परिवार सहित न देखने योग्य दृश्यों को भी रुचि सहित देखने वालों का झुण्ड मिल जाएगा, पर संत-दर्शन, प्रवचन-श्रवण, धर्माराधन और तपश्चरण के लिए समय निकालने वाले गिनती के लोग ही मिलते हैं। जीवन में पवित्रता आए आत्मा का परमात्मा के प्रति श्रद्धाभाव जागृत हो इस भावना के साथ परिवार सहित धर्म स्थानकों में, गुरु चरणों में आने वाले विरले मिलेंगे।

### चातुर्मास में प्रगतिशीलता

सांसारिक पर्व हँसी-खुशी से मनाये जाते हैं। कुछ समय के लिए घरेलू एवं व्यापारिक सभी गतिविधियों को तिलांजलि देकर उत्तम खाद्य पदार्थ सेवन, उत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकरण और आपसी मधुर-मिलन, यही सब

सांसारिक पर्वों की प्रगतिशीलता है। चातुर्मासिक काल में सांसारिक पर्व भी आते हैं और धार्मिक भी। प्रायः सभी सम्प्रदायों के अधिकांश पर्व चातुर्मासिक काल में आते हैं। चूँकि चातुर्मासिक काल साधना के सोपानों पर चरण बढ़ाने वाला है अतः इसमें प्रगतिशीलता निहित है। आचार्य भगवन्त चातुर्मासिक पर्व की प्रगतिशीलता का कथन करते समय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार प्रकारों से पर्व की प्रगतिशीलता को अंकित करते थे।

**1. द्रव्य से-द्रव्य से** यह पर्व धन के अर्थात् द्रव्य के व्यय और उपयोग को घटाता है। आरम्भ-समारम्भ नहीं होने से, निर्माण कार्यों में गतिरोध रहने से और व्यर्थ का गमनागमन न होने से धन के व्यय में कमी आती है। जिस अनुपात में द्रव्य-व्यय घटता है, लगभग उसी अनुपात में, बल्कि उससे भी अधिक धर्म और पुण्य का बल बढ़ता है। इस पर्व में साधना करने की अनुकूलताएँ अन्य ऋतुओं की तुलना में कहीं अधिक हैं। आप देख रहे हैं इस काल में न अधिक गर्मी रहती है और न अधिक सर्दी। अधिक गर्मी हो, धरती और आकाश तपते हों, हवाएँ जलती हुई चलती हों तो अनशनादि तप अर्थात् तेला, अड्डाई, मासक्षमण आदि तपश्चरण की आराधना सहज रूप से नहीं की जा सकती। सर्दी अधिक हो तो जठरानि तेज रहती है, भूख अधिक लगती है। अतः आदमी चाहकर भी अधिक तपादि नहीं कर सकता। ऊषा के प्रकोप से तपाराधन में आगे बढ़ना कठिन होता है तो शीत के प्रकोप से तपाराधन का प्रारम्भ ही सुहाता नहीं। यह काल, चातुर्मासिक काल, वर्षा ऋतु काल, समशीतोष्ण काल है। तप की आराधना में इसकी ठंडक समशीतोष्णता अत्यधिक सहायक है।

**2. क्षेत्र से-क्षेत्र से** आज तीर्थकर भगवान् महावीर की आज्ञा का आराधन करने वाले महाब्रती संत-सतीगण जहाँ कहीं भी विराजमान होंगे,

चार महीनों के लिए एक जगह स्थिर रहने की आज्ञा की आराधना करेंगे। संत-सती वर्ग को, महाब्रतधारियों को, अहिंसा प्रेमियों को जीवदया और संयम-पालन के लिए चातुर्मासिक यह ठहराव भी विशुद्ध धर्माधान का निमित्त है और जीवों की विराधना से बचने में सहायक है।

### गति और उष्णता

भगवती सूत्र में वर्णन आता है कि पुद्गल में अथवा सकर्मा जीव में जब उष्णता बढ़ती है तब वह गति करता है। जितनी-जितनी मात्रा में उष्णता बढ़ेगी, ताप का प्रसार होगा, उतनी-उतनी मात्रा में स्थिरता कम होती जाएगी। शास्त्र में वर्णन आता है, अधो लोक के नीचे में रहा हुआ परमाणु, ऊष्मा का संचरण होने पर उसके प्रभाव से ऊर्ध्वलोक के अग्रभाग पर चला जाता है। वर्षों, महीनों, दिनों में नहीं अपितु केवल एक समय में। पुद्गल के भी आठ स्पर्श माने गए हैं, उनमें परमाणु पुद्गल चार स्पर्श वाले होते हैं। इन चार में दो स्पर्श हैं शीत व ऊष्मा। जब शीत पुद्गल कम होते हैं और उष्मा पुद्गल अधिक होते हैं तब वे गति करते हैं।

साधक-सन्त भी गर्भी के मौसम में अधिकाधिक विचरण कर ज्ञान-प्रकाश प्रदान करते हैं। धर्म की पावन-गंगा जन-जन में प्रवाहित करते हैं। स्वयं आगे बढ़ते हुए दूसरों को भी आध्यात्मिक मार्ग पर ज्ञान के आलोक में व्रत-नियम द्वारा आगे बढ़ाते हैं।

### आयो वर्षा काल धर्म री....

चातुर्मास काल संधि काल है। गर्भी और सर्दी का संधि काल। गर्भी का अन्त तो सर्दी का प्रारम्भ। एक चौमासी समाप्त होगी। दूसरी प्रारम्भ होगी। वर्षावास का प्रारम्भ होगा इसी के साथ। वर्षावास ठहरने की बात कहता है। क्यों ठहरने की बात कहता है? पूज्य गुरुदेव आचार्य भगवन्त के शब्दों में-

जीव री जतना कर लीजो रे, जीव री.....  
 आयो वर्षाकाल धर्म री करणी कर लीजो ॥ टेर ॥

जीव री.....

मुनिवर तज संचार काल, वर्षा में स्थिर रहते, अरे हाँ.....  
 उत्तम श्रावक-धर्मी भी नहीं, बिन मतलब चलते ॥

जीव री.....

जीव असंख्य हुए भूमि पर, भटकत मर जावे, सुघड़ नर  
 ताते ज्ञानी जीवदया हित, पौषध ब्रत ठावै.....

जीव री..... ॥

### वर्षाकालीन संचरण अधिक दोष-युक्त

ऊष्मकाल में सहज रूप से अनेकानेक त्रस प्राणियों की, असंख्य-अनन्त स्थावर प्राणियों की उतनी उत्पत्ति नहीं होती, जितनी वर्षाकाल में होती है। मच्छर, डॉस, कीड़े-मकोड़े, गजाई, लीलण-फूलण का संचरण वर्षाकाल में विशेष होता है। चार कदम भी चलना हो, अविवेक रखकर बिना देखें चलें तो सैकड़ों जीवों की विराधना हो सकती है। साधन-सम्पन्न इस ओर ध्यान नहीं दे पाते। कदाचित् ध्यान में आवे तो भी बचाने में असमर्थ होते हैं। प्रातःकाल के समय बाहर जाता हूँ तो देखता हूँ कि सड़क पर सैकड़ों कीड़े-मकोड़े होते हैं। पैदल चलने वाले फिर भी कुछ बचाव कर सकते हैं, किन्तु वाहनों का प्रयोग करने वाले कितना ध्यान रख सकते हैं? वाहनों से असंख्य जीवों की विराधना होती है।

शास्त्र कहते हैं, जब इतनी छोटी-सी जमीन पार करने में इतना घमासान, तो जो लोग सैकड़ों-हजारों मीलों का बिना कारण भ्रमण करते हैं, कितने जीवों का घमासान करते हैं वे।

कुछ युवक तो इन्हीं वर्षा के दिनों में गोठ-घूँघरी और सैर-सपाटे के लिए निकलते हैं, वे कितने-कितने उड़ने वाले, चलने वाले जीव-जन्तुओं की विराधना/हिंसा करते हैं, कितनों की जीवन-लीला समाप्त करते हैं, कहना बड़ा कठिन है।

### संचरण को मर्यादित करें

उत्तम-धर्मी श्रावकों का यह कर्तव्य है कि असंख्य जीवों की विराधना नहीं हो, इसका वे पूरा ध्यान रखें। विवेक रखकर व्यर्थ के गमनागमन को, संचरण को रोकें। आप सभी जन्मजात श्रावक हैं, यह बात मैंने इसलिए कही कि बहनों, माताओं के घर जब पुत्रादि की प्राप्ति होती है तो हम संतों को भी बधाई में शामिल करते हुए सन्देश दे देती हैं- “बाबजी ! आपके एक और श्रावक आ गया।”

“कप्पई निगंथाण वा निगंथीण वा सव्वओ समंता  
सक्कोसं जायेण उग्गहं उग्गिणित्ता चिद्वितए।”

*बृहत्कल्पसूत्र, तृतीय उद्देशक, 34*

निर्ग्रन्थ साधु-साध्वी, महाब्रती, संत-सतीगण वर्षाकाल में चातुर्मासिक पर्व प्रारम्भ के दिन जहाँ कहीं भी होंगे 4 मास के लिए ठहर जायेंगे और तब तक मर्यादित भूमि के बाहर गमनागमन नहीं करेंगे जब तक कि चातुर्मास पूर्ण न हो।

यहाँ मर्यादित शब्द आया है। मर्यादित का अर्थ है दो कोस भूमि (जाने एवं आने की अपेक्षा से) या चार मील भूमि या फिर आज की भाषा में लगभग सवा छः किलोमीटर भूमि मानी जा सकती है। जहाँ चातुर्मासिक प्रतिक्रमण महाब्रती संत-सती ने किया हो, उस स्थान से पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में इस भूमि की मर्यादा से बाहर जाना नहीं। स्थंडिल के लिए

कभी जाना पड़े तो इस मर्यादा से एक मील आगे तक वह जा सकता है, पर वहाँ से अन्न-जलादि ग्रहण नहीं करे। यह है चातुर्मासिक-क्षेत्रीय-मर्यादा। इसी तरह सुश्रावक भी क्षेत्र निर्धारण करता है, मर्यादा करता है और चातुर्मास काल में संकल्पित मर्यादा से आगे आवश्यक या अनावश्यक रूप से भी नहीं जाता। ध्यान रखता है वह अपनी क्षेत्रीय मर्यादा का। कम से कम भूमि रखता है, कम से कम भूमि के प्रयोग/उपयोग की मर्यादा करता है। मर्यादा में जितनी कमी रखता है, उतना ही वह कर्मबन्ध से, पाप से बचता है। ऐसे-ऐसे भी साधना-रसिक, स्वाध्याय-प्रेमी, वीतराग वाणी के पिपासु देखे हैं, जो दूर-दूर से, कोई मद्रास, कोई बरेली, कोई धूलिया, कोई सतारा से वर्षावास प्रारम्भ होने के पूर्व चातुर्मास स्थल पर आ जाते हैं और एक स्थान पर यथाशक्ति ठहर कर जिनवाणी का अमृत पान करते हैं। सामायिक-प्रतिक्रमण, दयाव्रत, पौष्टि आदि विभिन्न व्रतों को धारण कर तथा अनेक नियम ग्रहण कर वे पाप से हटते हैं और साधना के सोपानों पर आगे बढ़ते हैं। अंतः-बाह्य, साधना-आराधना का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए वे श्रावकर्व्य अतिथिसंविभाग व्रत की आराधना में संत-सतीवृंद को प्रतिलाभ देने के साथ स्वधर्मी श्रावक-बन्धुओं की सेवा भी आदर-पूर्वक करते हैं।

**3. काल से-**काल से चातुर्मास तीन प्रकार होता है-जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य चातुर्मास चार मास का होता है। श्रमण निर्ग्रन्थ आषाढ़ी पूर्णिमा या चतुर्दशी जिस दिन भी पक्खी (पाक्षिक पर्व) हो, चातुर्मासिक स्थल पर पहुँच जाते हैं और कार्तिकी चौमासी के पश्चात् विहार कर देते हैं। मध्यम काल का चातुर्मास पाँच मास तक होता है। कुछ वृद्ध, बाल, ग्लान, रुण, अशक्त संतों के कारण चातुर्मास के पूर्व आना पड़ता है और वर्षादि कारणों से कुछ समय बाद विहार करना पड़ सकता है, ऐसी स्थिति में पाँच

माह तक विराजना भी हो जाता है। उत्कृष्ट काल का चातुर्मास छः माह तक होता है। इसमें अभिवर्द्धित संवत्सर का एक माह बढ़ जाता है। अभिवर्द्धित संवत्सर वह होता है जब वर्ष में एक माह बढ़ता हो और यदि बढ़ा हुआ माह श्रावण भाद्रपद, आश्विन हो तो उत्कृष्ट काल छः माह का हो सकता है।

4. भाव से-भाव की अपेक्षा में चातुर्मास काल में चार सूत्र स्मृति में रखने चाहिए और उन पर चलते हुए अग्रसर होना चाहिए। चार सूत्र हैं- सामायिक, स्वाध्याय, साधना और संगठन। इन चार सूत्रों के अतिरिक्त चातुर्मास काल में आत्मचिन्तन पर मुख्य ध्यान देना चाहिए। दशवैकालिक सूत्र की चूलिका के अनुसार चातुर्मास काल आत्मचिन्तन का पर्व है। कहा है-

किं मे कडं किंच मे किच्चसेसं ।

किं सक्कणिज्जं न समायरियामि ॥

(दशवैकालिक की गाथा)

भाव की अपेक्षा से शास्त्रों में तीन अन्य सूत्र भी हैं- आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त। चातुर्मासिक पाक्षिक पर्व में साधक आत्म-शुद्धि करने हेतु चिन्तन करे कि मैंने पूर्व में जो व्रत-नियम, प्रत्याख्यान ले रखे हैं उनमें किन-किन में भूल की धूल लगी है। अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार आदि से कब-कब किस-किस व्रत के दूषित होने का प्रसंग आया था-इसका चिन्तन कर आत्मनिरीक्षण करे। अगर असावधानी से दोष लगा है तो “मिच्छामि दुक्कडं” दे। न चाहते हुए भी कभी बीज, वनस्पति आदि सचित्त पदार्थों का संघट्ठा (स्पर्श) लग सकता है, वर्षा की बूँद लग सकती है, इसी तरह के अन्य दोषों के लिए खेद प्रकट करें, “मिथ्यादुष्कृत हो” कह कर पश्चात्ताप करे और शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त ग्रहण करे।

## विविध आत्मशुद्धि

आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त रूप विविध आत्मशुद्धि के पर्व पर साधक ! तू चिन्तन कर कि जन्म लेने के पश्चात् तूने कितने-कितने कार्य व्यवहार जगत में कर लिए, पर तेरा आध्यात्मिक क्षेत्र का बहीखाता क्या कहता है ? क्या किया तूने अब तक आध्यात्मिक क्षेत्र में ? कषायों को घटाया या नहीं ? विकथाओं से मुख मोड़ा या नहीं ? सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई या नहीं ? देवी-देवताओं की असत्य आस्था से मन हटा या नहीं ? तेरे दुःखों का कारण तू स्वयं है, तेरे कर्म हैं-इस पर श्रद्धा जमी या नहीं ?

### आप चिन्तन करें

मैं आप सभी श्रोतागण को आज इस चौमासी पर्व पर चातुर्मास काल के लिए एक विषय दे रहा हूँ, आप चिन्तन करें कि जीवन के जो वर्ष आपने जीये उनमें क्या किया ? पढ़ाई-लिखाई, व्यवसाय, शादी, पुत्र-पुत्रियों की शादी, पोते-पोतियों-दोहिते-दोहितियों की शादी आदि की बात तो आप बढ़-चढ़कर बता देंगे। क्या शेष रहा है-यह भी बता देंगे। सोने की निसन्नी चढ़ जायेंगे, पर फिर भी कुछ न कुछ करना आपके शेष ही रहेगा। आचार्य भगवन्त की भाषा में कहूँ तो संसार के प्रति आपके कर्तव्यों का कोई अन्त ही नहीं है। शरीर का, धन का, कुटुम्ब का काम कभी पूरा होने वाला नहीं है। मेढ़कों का धड़ा होता हो तो सांसारिक कार्य पूरे हों, चलनी में पानी ठहरता हो तो व्यावहारिक एवं व्यावसायिक कार्यों का अन्त आए। बन्धुओं ! इनका अन्त आने वाला नहीं है। अतः आध्यात्मिक जगत की ओर मुड़िए। आत्मिक कर्तव्यों पर ध्यान दीजिए। पुरुषार्थ को कर्म काटने में लगाइए। एक बार क्षायिक ज्ञान हो गया तो फिर वह कहीं जाने वाला नहीं है। वीतरागता यदि आ गई तो वह आकर कभी जायेगी नहीं।

## शिव सुख पावणा रे

आप साधु नहीं बन सकते। महाब्रतधारी नहीं बन सकते, पर श्रावक तो बन सकते हैं। एक ब्रतधारी यावत् बारह ब्रतधारी तो कहला सकते हैं। चिन्तन करिए इस बात का कि कौनसा व्रत आप स्वीकार करने की शक्ति रखकर भी प्रमाद के कारण स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं? चातुर्मासिक पर्व का दिन चिन्तन करने का दिन है। आपको चिन्तन मनन करके संकल्प करना है कि इन चार महीनों में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप में आप निरन्तर अग्रसर होते रहेंगे, आगे बढ़ते रहेंगे। इसी मंगल भावना के साथ अन्त में संगीत की एक कड़ी के माध्यम से इतना ही कहूँगा कि-

चार कषाय के बन्धन तोड़ो।  
 विकथा चारों से मुख मोड़ो॥  
 नाता मोक्ष मार्ग से जोड़ो॥  
 कर लो दया-धर्म आराधन, शिव सुख पावणा रे.....  
 पूज्य श्री हस्ती गुरु का आज, सभी गुण गावणा रे.....



## मुक्ति-पथ : क्षमा और अहिंसा

(जिनवाणी के अक्टूबर, 1997 के अंक से गृहीत यह प्रवचन जीवन में निवृत्सन्ता, क्षमा, अहिंसा आदि सद्गुणों को स्थान देने की प्रेरणा कर रहा है।)

परम पावन आष्टाङ्गिक-पर्व पर्युषण का आज मुख्य पर्व-दिन संवत्सरी है। आचार्य भगवन्त (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) इसे अहिंसा-दिवस के रूप में मनाने हेतु जन-जन को प्रेरणा देते रहे। यह दिवस मानव-जाति का वह चिरस्मरणीय दिवस है जब बयालीस हजार वर्षों तक असहनीय कष्टों को भोग कर मानव-जाति ने मांसाहार का एकदम त्याग कर वृक्ष के फलों का आहार करने की प्रतिज्ञा की है। तिर्यञ्च, मानवादि की हिंसा का त्याग तो साधारण बात है, पर आज के इस परम-पवित्र पर्व पर एक इन्द्रिय वाले प्राणियों को भी घर-घर में अभय दिया जाता है। ग्राम और नगरों में सैंकड़ों-हजारों छूल्हे आज के दिन बन्द रहते हैं। भोजनादि के लिए हिंसा भी आज के दिन बंद रहती है तो कल्लखाने, मांस-विक्रय के संस्थान आदि बन्द रहें, अन्यान्य हिंसा-कार्यों पर प्रतिबन्ध लगे, तो इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है।

पर्व के इन आठ दिनों में अन्तगड सूत्र के माध्यम से जिन-जिन मोक्षगामी महापुरुषों के पावन त्याग-तप मय जीवन का श्रवण किया गया है, उनके जीवनादर्शों को आप सभी अपने-अपने जीवन में ग्रहण करने का प्रयास

करें। मन में अतिमुक्त कुमार की भाँति संयम ग्रहण करने, दीक्षा लेने, पंच महाब्रती बनने की भावना रखें। आठ वर्ष के अतिमुक्त कुमार अन्य बाल-सखाओं के साथ मैदान में खेल, खेल रहे थे कि उनकी नजर भिक्षार्थ भ्रमण करते गणधर गौतम स्वामी पर पड़ती है। श्रेष्ठ संयम एवं प्रज्ञा के धारक चौदह हजार मुनिवृंद के नायक गणधर गौतम को देखते ही अतिमुक्त, खेल खेलना छोड़ देते हैं। मुनि के प्रति सहज आकृष्ट होकर, उनके निकट जाते हैं और पूछते हैं—“भंते ! आप कौन हैं और क्यों घूम रहे हैं ?” श्रमण का भ्रमण बालक की जिज्ञासा का कारण बन जाता है। शायद वह चाहता है कि इनका अधिक भ्रमण न हो।

गौतम, बालक की जिज्ञासा को शान्त करते हुए सहज स्वर में कहते हैं—‘देवानुप्रिय ! मैं श्रमण-निर्गन्थ हूँ। तप के पारणक हेतु भिक्षार्थ भ्रमण कर रहा हूँ।’

सुनते ही बालक ने सहज में कहा—“भगवन् ! आप मेरे साथ मेरे घर चलिए। मेरी माँ आपको भिक्षा योग्य उचित खाने-पीने की सामग्री देंगी।”

बन्धुओं ! लघुवय का वह बालक मुनि की समस्या का समाधान करने की प्रबल इच्छा व चेष्टा करता हुआ उन्हें भिक्षार्थ ले जा रहा है। अब आज के युग की बाल-पीढ़ी पर दृष्टि डालिए। ये आज के बालक समस्याओं का समाधान करने के स्थान पर नित्य नई-नई समस्याएँ उत्पन्न कर रहे हैं। फैशन की, आमोद-प्रमोद के साधनों की, व्यर्थ के खर्चों की.....और भी न जाने कितनी समस्याएँ इनके कारण आपके समक्ष नित्य ही आती रहती हैं।

भिक्षाग्रहण कर जब गणधर गौतम चलने लगते हैं तो अतिमुक्त कुमार पूछते हैं—“भगवन् अब तक जितने भी भिक्षा ग्रहण करने वाले इस घर में आए, सभी ने इसी भवन में बैठकर भोजन किया। आप यहाँ भोजन क्यों नहीं करते ? भिक्षा लेकर आप कहाँ जा रहे हैं ?”

गौतम कहते हैं—“मैं अपने धर्म-गुरु, धर्माचार्य, तीर्थঙ्कर भगवन्त प्रभु महावीर के चरणों में जा रहा हूँ।”

यह सुनकर अतिमुक्त कुमार भी महावीर के दर्शनार्थ गणधर गौतमस्वामी के साथ चले जाते हैं। देशना देने का समय नहीं होते हुए भी प्रभु के मुख से वाणी वागरित होती है। बालक ने प्रभुवाणी सुनी, समझी, हृदय में धारण की और प्रभु महावीर से कहा—‘प्रभो ! मैं अपने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। मेरे आज्ञा प्राप्त करने तक आप यहीं विराजें।’

अतिमुक्त कुमार, माता श्री देवी के पास पहुँचे। उनके चरणों में प्रणाम कर विनय सहित बोले—“हे माता ! आपकी अनुमति हो तो मैं श्रमण भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा ग्रहण कर अनगार बनना चाहता हूँ।”

माता कहती है—“बालेसि ताव तुमं पुतां ! असंबुद्धे सि तुमं पुता ! किणं तुमं जाणसि धर्मं ?” अर्थात् हे पुत्र ! तुम अभी बालक हो, असंबुद्ध हो। अभी तुम धर्म को क्या जानो ? महाव्रत क्या होते हैं, चारित्र क्या होता है, यह तुम क्या समझो ?

तब अतिमुक्त कुमार कहते हैं—“अहं अम्याओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि।” अर्थात् हे माता ! मैं जिसे जानता हूँ, उसे नहीं जानता और जिसे मैं नहीं जानता, उसे मैं जानता हूँ।

बालक बालपन में कितनी गूढ़ बात कह गया। कहता है—“जानता हूँ सो नहीं जानता।” क्या अर्थ है इसका ? वह कहता है—“मैं यह जानता हूँ कि जिसने भी जन्म लिया है, वह निश्चित रूप से मृत्यु को प्राप्त होगा, पर ‘मौत कब आएगी—यह नहीं जानता।’” बात गहरी है। कहीं भले अतिमुक्त कुमार ने है, पर लागू सब पर हो रही है—आप पर भी, हम पर भी और जो यहाँ

नहीं हैं उन सभी पर भी । जानते आप भी हैं कि एक न एक दिन मरना है । नित्य देख रहे हैं मरने वालों को । अनेकों को आपने अपने कंधों पर बिठाकर-अरिहंत नाम सत्य है-कहते हुए श्मशान घाट पहुँचाया भी है, उन्हें जलाया भी है । किन्तु घर आकर स्नानादि करके भूल जाते हैं उस घटना को, लग जाते हैं पुनः सांसारिक प्रवृत्तियों में । समझते हैं जैसे कुछ हुआ ही न हो । कभी यह नहीं समझा कि एक न एक दिन मेरा भी यही हश्च होना है ।

जन्म के साथ मृत्यु अवश्यम्भावी है और मुझे भी एक दिन मृत्यु की राह पर जाना है । इस बात को हृदय में उतार लीजिए । आपकी समझ में अभी यह बात प्रवेश नहीं कर पायी है, पर जिस दिन समझ आयेगी उस दिन अन्याय, अत्याचार, मिलावट, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, कामचोरी, झूठ-कपट आदि जो अभी जीवन में विद्यमान हैं, उन सबसे आप दूर हो जायेंगे ।

एक सरकारी बड़ा अफसर जो सरकारी बँगले में रह रहा हो, वह प्रायः बँगले की मरम्मत पर ध्यान नहीं देता, उसकी धुलाई, पुताई नहीं कराता । किरायेदार को आपने किराए के मकान की मरम्मत कराते कम ही देखा होगा । क्यों ? क्योंकि वह जानता है कि यह मकान मेरा नहीं, मुझे इसे छोड़ना है ।

आपने भी समझ लिया होगा कि यह जो शरीर-रूप में आत्मा का मकान है, वह आपका नहीं है । वह तो कुछ समय के लिए प्राप्त हुआ है, अन्त में तो यह घर छोड़कर जाना पड़ेगा । हंसा निकल जायेगा और काया रूप घर पड़ा रह जायेगा । जब यह मकान आपका नहीं है तो इसके लिए इतना आल-पम्पाल क्यों ? इसके लिए जो किया जा रहा है, जो जोड़ा जा रहा है, जो पाया और मिलाया जा रहा है, कभी चिन्तन करें कि वह सब क्या आपको

उभारने वाला है, उद्धार करने वाला है, तिराने वाला है या बीच भँवर में डुबाने वाला है।

शरीर के लिए, तन-पोषण के लिए आप क्या-क्या नहीं करते ? बन्धुओं ! छोटे से छोटा पाप-कार्य भी डुबाने वाला होता है और आप तो बड़ी-बड़ी पाप-प्रवृत्तियों से भी नहीं डरते । मुझे बात याद आ रही है-एक माँ के नन्हे मुन्ने लाल को कूकर (सूखी) खाँसी हो गई । वैद्य से दवा दिलाई, डॉक्टर को भी दिखाया पर खाँसी ठीक नहीं हुई । बड़ी-बूढ़ी औरतों ने भी अनेक देशी दवाइयाँ बताईं, कुछ टोटके भी बताए, पर उनसे भी खाँसी पर कोई असर नहीं पड़ा । किसी पड़ौसन ने कह दिया-बच्चा दिन-रात खाँसता रहता है । तूँ गाँव के ठाकुर साहब के वहाँ चली जा, उनसे खाँसी की दवा माँग लेना । वे जो दवा दें, वह बच्चे को पिला देना ।

बच्चे की माँ ठाकुर के ठिकाने के रजवाड़े में पहुँची और बच्चे की खाँसी की हालत बता कर कुछ शराब की मांग की । ठाकुर साहब ने एक प्याले में चुल्हा भर शराब डाल दी । माँ की एक नजर शराब के प्याले पर जाती है और फिर वहाँ से उठकर वही नजर सीधी ठाकुर साहब पर जा टिकती है । कहती है-‘बस इत्ती-सी ! काँइ व्हैई इत्ती-सी शराब सूँ ?’

ठाकुर साहब ने सुना तो अन्तर के दर्द को दबाते हुए ऊपर में मुस्कान लाकर बोल उठे-“बहन ! इस इत्ती-सी ने तो मेरा पूरा रजवाड़ा खलका दिया, भला इस बच्चे की खाँसी क्यों नहीं खलकेगी ?”

बन्धुओं ! सप्त-कुव्यसनों में से प्रत्येक कुव्यसन दुर्गति का कारण है । कुव्यसनों से इस लोक में धन-तन-प्रतिष्ठा की हानि के साथ परलोक भी बिगड़ता है । वासुदेव श्रीकृष्ण ने तीर्थङ्कर भगवन्त अरिष्टनेमि से पृच्छा की-‘प्रभो ! इस देव निर्मित द्वारिका नगरी का विनाश किस प्रकार होगा ?’ अरिहन्त

अरिष्टनेमि ने फरमाया- “कृष्ण ! तुम्हारी इस वैभव सम्पन्न द्वारिका के नाश का मूल कारण बनेगी शराब । द्वीपायन ऋषि निमित्त बनेंगे और आग से इसे नष्ट करेंगे ।”

शराब ने राजाओं के राजघरानों को नष्ट कर दिया । द्वारिका को जलाकर नष्ट करने में वही निमित्त बनी, आप यह सब जानते हैं, समझते हैं पर समझ-बूझ कर भी अनजान बने रहते हैं । अजमेर में आचार्य भगवन्त के चरणों में एक आबकारी अधिकारी का इन्हीं पर्युषण पर्व-दिनों में दर्शनार्थ आना हुआ । दर्शन-वन्दन के पश्चात् वार्ता के मध्य उस अधिकारी ने बताया- “महाराज ! मैं पाली, सिरोही, सोजत होता हुआ आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ । यहाँ प्रवचन में श्रोताओं की भीड़ देखी । दर्शनार्थियों की रेल-पेल भी देखी । शायद आप इस जन-समूह को देख-देख प्रसन्न हो रहे होंगे, पर मेरे हृदय में बड़ी बैचेनी है, बड़ी पीड़ा है ।”

गुरु भगवन्त ने पूछा- “क्यों भाई ? ऐसा क्यों कहते हो ?” अधिकारी ने कहा- “महाराज ! ये लोग यहाँ आते हैं, गुरु चरणों में शरण ग्रहण करते हैं, दर्शन-वन्दन-पर्युषण उपासना करते हैं, व्याख्यान वाणी का श्रवण करते हैं, पर उधर भ्रमण के नाम पर घर से निकले हुए हजारों जैन-युवक पर्वाधिराज पर्युषण के इन्हीं दिनों में शराब खरीद कर पीते हैं, ताश के माध्यम से जुआ खेलते हैं । मेरे निरीक्षण के अनुसार सात-आठ दिनों में जैन घरों के बच्चों, युवावर्ग और प्रौढ़ों ने कुल लगभग सात लाख रुपये की शराब क्रय करके मद्य-पान सेवन किया है ।” अधिकारी की बात चौंका देने वाली है । सामान्य आदमी तो देशी ठरा पीते हैं, पर जैन समाज की यह पीढ़ी ऊँची कीमत की विदेशी शराब पीती है, पिलाती है ।”

जान लीजिए कि मरना निश्चित है, इसे हृदय में उतार लीजिए, अपने

घर के बच्चों और युवकों के हृदय में भी यह बात बिठा दीजिए, फिर कुव्यसन, स्वतः दूर रहेंगे। न मद्यपान में पड़ेंगे न मांसादि सेवन करेंगे, न जुआ खेलेंगे और न सगाई में साई और खाई की बात करेंगे। पर आप तो जागते हुए भी आँख मूँद कर चल रहे हैं। यहाँ क्या बोलते हैं और घर जाकर क्या करते हैं? कारण एक ही है—आपके हृदय में ‘मरण की बात’ अभी बैठी नहीं है। अगर आज कोई ज्योतिषी यह घोषणा कर दे कि आपके दिन निकट आ गए, अब आप केवल कुछ ही दिनों के मेहमान हैं, इस दुनिया में। तो क्या होगा? विश्वास यदि हो गया उस ज्योतिषी की बात पर तो एक ही दिन में चेहरे की रौनक बदल जाएगी। व्यापार, धन्धे में मन लगेगा नहीं, घर में बैठना सुहाएगा नहीं। अतः जरूरी है कि अतिमुक्त कुमार की तरह आप भी जान लें कि मृत्यु सुनिश्चित है और उसके आने का कोई निश्चित समय नहीं है। जो जन्म लेता है वह मरेगा, पर कब, कैसे, कहाँ, किस स्थिति में? मृत्यु होगी, यह आप नहीं जानते।

“मृत्यु के पश्चात् क्या बनूँगा, किस गति में जाऊँगा? यह मैं नहीं जानता, पर इतना जरूर जानता हूँ कि जैसी मेरी करणी है, जैसे मैंने कर्म किए हैं, वैसी ही गति मुझे मिलनी है” अतिमुक्त ने माता को कहा था। आप चिन्तन करें कि आपकी गति क्या होगी? कैसी करणी है आपकी?

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व का पावन सन्देश है कि हे मानव! लक्ष्मी चंचल है, धन-यौवन चंचल है, जीवन चंचल है इसलिए ऐसा काम कर कि इस बिजली के झब्बे के रूपी जीवन में उपकार के, दया-दान के, तप-त्याग के मोती पो सके। अवसर अनमोल है, पो सके तो पो ले। बीत गया अवसर तो केवल पछताना ही शेष रह जाएगा। स्वार्थ की सड़क पर ही जीवन भर सरपट भागता रहा तो तेरी यह गाड़ी कहीं भी टक्कर खा जायेगी। अन्तर्मन में यह

बात गहरी बिठाले कि मरना निश्चित है और करणी के अनुसार ही आगे की गति मिलेगी। यह ज्ञान जगाने का पर्युषण-पर्व एक अवसर है। यह शास्त्र-वाणी है, तीर्थङ्कर वाणी है और इस वाणी में आपकी श्रद्धा सेठ सुदर्शन की तरह ही दृढ़ होनी चाहिए। नहीं है दृढ़ श्रद्धा तो उसे दृढ़ बनाइए। रत्नत्रयी में सम्यग्ज्ञान के बाद सम्यग्दर्शन का क्रम है। शास्त्रवाणी पर, सुदेव-सुगुरु-सदूधर्म पर दृढ़ श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है।

राजगृही नगरी के बाहर जब मौत का ताण्डव नृत्य हो रहा था। प्रतिदिन छः पुरुष एक स्त्री का वध किया जा रहा था। तब हत्यारे अर्जुनमाली को न राजा ही वश में कर सका, न राज्य-सेना उससे पार पा सकी थी। तभी तीर्थङ्कर भगवंत महावीर का वहाँ पदार्पण हुआ, समवशरण लगा। सुना सेठ सुदर्शन ने, तो दर्शन की अभिलाषा जाग उठी। पहुँचा वह माता-पिता के चरणों में। आज्ञा मांगी—‘मैं प्रभु महावीर के दर्शनों का, चरण-वन्दन का, पर्युपासना का अभिलाषी हूँ। मुझे उनके चरणों में जाने की आज्ञा दें।’

माता-पिता का हृदय ! बेटे को नगर से बाहर जाने की आज्ञा कैसे दे ? हत्यारा अर्जुनमाली जो वहाँ तत्पर है हत्या के लिए। माता मना करती है पुत्र को, कहती है—‘पुत्र ! प्रभु सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं। वे घर-घर की बात जानते हैं। तुम यहीं से उन्हें वन्दन कर लो, वे वहीं स्वीकार कर लेंगे।’

सुदर्शन तो दृढ़मना, दृढ़ श्रद्धावाला, दृढ़ प्रतिज्ञ था। वह भला वहीं से कैसे वन्दन कर लेता। बोला—“माता ! यह कैसे हो सकता है ? वे सर्वदर्शी, त्रिकालज्ञ हैं, पर मैं तो दर्शनाभिलाषी हूँ। वे मेरी वन्दना देख लेंगे, पर मैं उन्हें कैसे देख पाऊँगा, दर्शन कैसे होंगे मुझे ?

बन्धुओं ! दर्शन की बात भावाधारित है, पर स्वयं प्रभु उपस्थित हैं तो दर्शन की केवल भावना करना कैसे उचित है ? याद आ रहा है—एक प्रजाचक्षु

भाई अपने पोते के कन्धे पर हाथ रख कर नित्य संत-दर्शन को जाता था। संत-दर्शन के बाद मन्दिर में अर्चना के लिए पहुँचता था। किसी मनचले नवयुवक ने जब उसे आँख न होते हुए भी नित्य मन्दिर जाते देखा तो एक दिन चुटकी भर ली-“दोनों आँखें काम नहीं करती, फिर प्रतिदिन प्रभु के मन्दिर में क्या देखने जाते हो? मालूम होता है पहले पाप ज्यादा किए हैं अतः उन पर ढक्कन लगाने के लिए मन्दिर में नित्य हाजिरी देनी पड़ रही है।”

अन्धे ने सुना और बोला-“आँखे तो मेरे नहीं है, यह सत्य है, पर मैं भीतर से अन्धा नहीं हूँ। अन्तर की आँखे मुझे अनुभव-दर्शन कराती है।”

बन्धुओं! कितनी गहरी बात है। अन्तर की आँख खुलनी चाहिए। आप भी अपनी ज्ञान-श्रद्धा की आँखें खोलें। अगर धर्म के प्रति श्रद्धा की आँख अन्तर में खुल गई तो पाप-प्रवृत्तियाँ फिर आप से नहीं होंगी। ये पाप तभी तक होते हैं जब तक केवल बाहर की आँखें ही खुली हों और भीतरी आँखें बन्द हों।

सुर्दर्शन सेठ माता-पिता से कहता है-“किण्णं अहं अम्मयाओ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं इह पत्तं इह समोसढं इहगए चेव वंदिस्सामि नमसिस्सामि? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ! तुब्मेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव पञ्जुवासामि।”

भगवान जब नगर के बाहर पधार गए हैं, बाहर उद्यान में विराजमान हैं, समवसृत हैं तो मैं घर बैठकर वन्दन कैसे करूँ? यह नहीं हो सकता। दृढ़ श्रद्धा से सुर्दर्शन को माता-पिता की आज्ञा मिलती है। वह जाता है पर मङ्गधार में नहीं डूबता। मङ्गधार में तो वह डूबता है जिसने राम को छोड़ दिया। लंका-विजय के अवसर पर समुद्र पर पुल बाँधा जा रहा था। नल और नील विशाल पत्थर एकत्रित कर ला रहे थे। वाल्मीकि रामायण के

अनुसार हनुमान पत्थरों पर ‘राम’ शब्द लिखते और समुद्र में छोड़ देते थे। कहते हैं वे पत्थर डूबते नहीं थे। ‘राम’ यह देख रहे थे। उनके मन में विचार आया कि यदि मैं पत्थर डालूँ तो तिरेगा या नहीं? जब मेरे नाम से पत्थर तिरते हैं तो मेरे हाथ से डाला गया क्यों नहीं तिरेगा? वे एक पत्थर उठाकर समुद्र में छोड़ देते हैं। देखते हैं कि पत्थर तो डूब गया। इधर-उधर देखते हैं कि कोई देख तो नहीं रहा है। हनुमान पीछे थे, देख लिया था उन्होंने। राम बोले—“देख लिया है पर कहना मत किसी से।”

हनुमान बोले—“मैंने तो जो देखा उसे कहे बिना रहूँगा नहीं, सबको बताऊँगा।”

राम ने कहा—“क्या तुम मेरी प्रतिष्ठा समाप्त करोगे?”

हनुमान बोले—“आपकी प्रतिष्ठा की चिन्ता मैं नहीं करता, पर मैं बिना कहे नहीं रहूँगा। कोई पूछे या न पूछे कहूँगा जरूर।”

राम परेशान होकर बोले—‘क्या कहोगे?’

हनुमान ने कहा—‘कहूँगा क्या, यही कहूँगा कि जिसको राम ने छोड़ दिया वह डूब गया।’

आप सभी अपने हृदय पर हाथ रखकर देखिए, विचार कीजिए कि आपके घर में राम है या हराम है।

भीतर में राम है तो डुबोने वाला कोई नहीं और प्रदर्शन के लिए बाहर लोगों को दिखाने के लिए राम है और भीतर में हराम है तो बचाने वाला कोई नहीं। मारवाड़ी में एक कहावत है—‘हाथाँ रो राम निकल गयो काँई।’ मारवाड़ी व्यक्ति के हाथ से कोई वस्तु गिर जाए तो उसके लिए इस कहावत का प्रयोग किया जाता है। तात्पर्य यह है कि राम नहीं तो शक्ति नहीं। जब आप कोई दुष्कर्म करते हैं यथा चोरी, मिलावट, धोखाधड़ी, झूठ-कपट तब अंदर राम नहीं रहता। तब कौन होता है? हराम।

आप अपने अंतस्तल में किसे बिठाना चाहते हैं राम को या हराम को ? आपके हृदय में कौन बैठा है ? राम या हराम ? मुझे आपसे उत्तर नहीं चाहिए। आप सभी चतुर हैं। मुझे आपको बुलवाना नहीं है, बस यही कहना है कि अपने भीतर में झाँके, देखें और विचार करें।

सुदर्शन की दृढ़श्रद्धा के सम्मुख यक्ष की सारी शक्तियाँ निस्तेज, निष्प्रभावी हो गई, समाप्त हो गई। यही है दर्शन की शक्ति। आप दर्शन करते हैं या प्रदर्शन करते हैं, आप अच्छी तरह जानते हैं। आज जहाँ देखिए वहीं प्रदर्शन है, विज्ञापन है, प्रचार है, दिखावा है। घर में प्रदर्शन, बाहर प्रदर्शन, धर्मस्थानों में भी प्रदर्शन। भीतर का आचरण टटोलें तो रावण जैसा है, पर दुपड़ा राम-नामी धारण करेंगे। बन्धुओं ! बदलिए अपने आपको। बाहर से दिखावे का प्रदर्शन करने की जगह चारित्र में, संयम में, तप-त्याग में चरण बढ़ाएँ।

धर्म के पथ में न उम्र का अटकाव है, न पद या सत्ता का। यहाँ तो आठ साल के भी वैरागी बने हैं और साठ साल के भी। राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, राजकुमार और राजरानियाँ भी साधना के पथ पर बढ़े हैं, चढ़े हैं। जो असूर्यस्पर्शी थीं, सूरज की किरणों तक को जिन्होंने जीवन में कभी देखा नहीं, ऐसी उच्चघरानों की कोमलांगी कुल वधुएँ, सुकुमार राजकुमारियाँ दीक्षा के पथ पर बढ़ गई। उन्होंने सुकुमार होते हुए धर्म का पथ अपनाया और आप सुकुमारता में धर्म समझ रहे हैं। बन्धुओं ! सुकुमारता एवं उससे जुड़ी बुरी प्रवृत्तियों को त्यागिए। पाप की वृत्तियाँ छोड़िए, क्रोध को रोकिए, क्षमा में और संयम में चरण बढ़ाइए।

‘राजधानी’ एक्सप्रेस गाड़ी है, छोटे-मोटे स्टेशनों पर रुकती नहीं, पर यदि सिंगल नहीं लगा तो ? एक्सप्रेस ट्रेन को जंगल में भी रुकना पड़ता है।

राष्ट्रपति हो या प्रधानमंत्री, मुख्यमन्त्री हो या अन्य कोई बड़े से बड़ा व्यक्ति, पर यदि चलती हुई कार के लिए यातायात पुलिस ने हाथ दे दिया तो कार को रुकना ही होगा। घर में सारे साधन हैं, बढ़िया खाद्य-पदार्थ तैयार हैं, पर डॉक्टर ने मना कर दिया कि खाओगे तो मर जाओगे। खा पायेंगे क्या? षट्टरस व्यंजन तैयार हैं, थाल लगा है, आप भोजन करने बैठ गए हैं, भूख भी जोर की लगी हुई है, पर किसी बच्चे ने भी कह दिया कि खाने में जहर मिला है तो आप खाना नहीं खा पाएँगे।

बन्धुओं! घर-परिवार-संसार में आप परिवार जनों की बात मानते हैं, पर अपने इष्ट तीर्थङ्कर प्रभु महावीर जिन्होंने सैंकड़ों बार उट्ठोधन किया ‘मानव! क्रोध मत कर! क्रोध प्रीति का नाश करने वाला है।’ क्या आपने मानी उनकी बात? क्रोध जन्म-जन्म तक दाग लगाने वाला है, डुबोने वाला है, तड़फाने वाला है, फिर भी अच्छे-अच्छे साधक भी क्रोध को नहीं जीत पा रहे हैं।

आज क्षमा-दिवस है। क्षमा करना सीखें, क्षमा माँगना सीखें। चारित्र में, तप-त्याग में चरण बढ़ाएँ। प्रतिकूल स्थितियों को, प्रतिकूल एवं कटु वचनों को, व्यवहारों को सहन करें। स्वयं मन, वचन एवं व्यवहार में बदलाव लाएँ। भीतर में विगत भूलों का शोधन करें। अपने आप पर क्षमाभाव लाना सीखें। आपकी भूलें हट गई तो आप समाज में सम्मान पायेंगे। अपनी ही अकड़ में रह गए तो टूट जायेंगे, बिखर जायेंगे। आज आप न जाने कितने रूप में बिखर गए हैं, आगे न जाने कितनी प्रकार से बिखरेंगे? क्या स्थिति है इस जैन समाज की? आपसे छुपी बात नहीं है। पर्वराज आज क्षमा का सन्देश देने आया है-

पर्व महान्, पर्व महान्, पर्युषण है पर्व महान्.....।

**पर्वराज पर्युषण आया, त्याग-वैराग्य की सौरभ लाया ।**

**जन-जन के मन आनन्द छाया, करो आत्म-कल्याण ॥**

क्षमा से अर्जुनमाली जैसा भयंकर हत्यारा तिर गया । शिक्षा लीजिए  
इन महापुरुषों से और क्षमा, सरलता, सन्तोष जीवन में अपनाइए । पर्वाधिराज  
पर्युषण इन्हीं आत्म-गुणों की जागृति का सन्देश लेकर आए हैं । आप एक-  
एक गुण धारण करके भी चलेंगे तो आपका पर्व पर्युषण-आराधन सफल  
होगा । यदि पर्व की आराधना के लिए रंग-बिरंगे बहुमूल्य भड़कीले वस्त्र  
धारण कर धर्मस्थान की रैनक बढ़ाने आ गए, आभूषणों से अपने को सजाकर  
धर्म-सभा में प्रदर्शन की भावना से बैठ गए तो आपकी यहाँ जो उपस्थिति है  
वह भले ही इस स्थान को शोभा और सुगन्ध प्रदान कर दे पर पर्व के मूल  
उद्देश्य-आत्म लाभ, भीतर की शान्ति, आत्मगुणों के प्रकटीकरण में सफलता  
प्राप्त नहीं होगी ।

आवश्यकता इस बात की है कि आप प्राणी मात्र के दुःख-दर्द को  
जानें, समझें । समाज में व्याप्त व्यसनों एवं कुरीतियों, गलत परम्पराओं को  
दूर करें और अपने आप में झाँकें, भीतर की ओर मुड़ें । आप यदि अपने  
आत्मिक गुणों के वर्धन का लक्ष्य रखकर गति करेंगे तो आत्मोत्थान के  
साथ-साथ समाज एवं राष्ट्र का उत्थान भी कर सकेंगे ।

□☆□

## श्रद्धा बिन सब सून

(आचार्य श्री ने मई, 1996 में धार्मिक शिक्षण शिविर, पीपाड़ शहर में अपने व्याख्यानों में सम्यग्दर्शन का विस्तृत विवेचन किया था, उसी का सारांश यहाँ सम्पादित रूप में प्रस्तुत है। इसे जिनवाणी के ‘सम्यग्दर्शन विशेषाङ्क’ से लिया गया है।)

-----  
**(1)**

### सम्यग्दर्शन का अर्थ

‘सम्यग्दर्शन’ में दर्शन शब्द विद्यमान है। ‘दर्शन’ शब्द का प्रयोग कई अर्थों में प्रचलित है। दर्शन के लिए प्राकृत-साहित्य में ‘दंसण’ शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृत में ‘दर्शन’ शब्द की निष्पत्ति ‘दृश्’ धातु से ‘ल्युट्’ प्रत्यय लगने पर हुई है। ‘दर्शन’ शब्द के अर्थ प्रचलित हैं-

(1) दृश् धातु का अर्थ होता है-देखना (देखने की क्रिया करना)। अतः ल्युट् प्रत्ययान्त ‘दर्शन’ शब्द का सामान्य अर्थ है-देखना (संज्ञा)। इस देखने के अन्तर्गत नेत्र से देखना, अनुभव से देखना आदि सभी का समावेश हो जाता है।

(2) दर्शन का एक अर्थ मान्यता या सिद्धान्त भी है। जैनदर्शन, बौद्धदर्शन, न्यायदर्शन आदि पदों में दर्शन का यही अर्थ अभीष्ट है। फिलासॉफी

के अर्थ में जो ‘दर्शन’ शब्द प्रचलित है वह भी विचार, मत या सिद्धान्त के अर्थ में ही स्वीकृत है। इसका एक अर्थ दृष्टिकोण भी है जो भी फिलासॉफी को ही व्यक्त करता है।

(3) जैन दर्शन में ‘दर्शन’ एक पारिभाषिक शब्द है। इसके, यहाँ दो अर्थ प्रचलित हैं। उनमें एक अर्थ है-सामान्य बोध। दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से जीव में जो दर्शनगुण प्रकट होता है वह ‘सामान्यबोध’ अर्थ का परिचायक है। यह ‘दर्शन’ ज्ञान के पूर्व होता है। दर्शनोपयोग एवं ज्ञानोपयोग के रूप में इनका क्रम निरन्तर चलता रहता है।

(4) ‘दर्शन’ का अन्य पारिभाषिक प्रयोग सम्यग्दर्शन के अर्थ में हुआ है। सम्यग्दर्शन का अर्थ है नव तत्त्वों के प्रति श्रद्धा। यहाँ श्रद्धा कोई अन्धविश्वास एवं अंधश्रद्धा का द्योतक नहीं है, अपितु जीवादि तत्त्वों को समझकर श्रद्धा करने का द्योतक है। इसमें अंध श्रद्धा एवं अंधविश्वास का कोई स्थान नहीं है। श्रद्धा को आस्था, विश्वास एवं प्रतीति के नाम से भी जाना जाता है। श्रद्धा में आत्मभाव एवं स्व का संवेदन होता है। यह मात्र बौद्धिक स्तर का विश्वास नहीं है, यह तो अन्तःकरण से होने वाली विवेकयुक्त आस्था है।

**श्रद्धा :** अर्थ-सम्यग्दर्शन के विभिन्न रूपों में ‘श्रद्धा’ अर्थ की प्रधानता है। बिना आस्था, बिना विश्वास या बिना श्रद्धा के आचरण सम्यक् नहीं बन पाता। आस्था एवं श्रद्धा भी किस पर हो ? इसके लिए दो प्रकार से समाधान मिलते हैं- 1. जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष नामक नवतत्त्वों के स्वरूप पर यथा-तथ्य श्रद्धा करना (उत्तराध्ययनसूत्र 28.14-15 एवं तत्त्वार्थसूत्र 1.2) और 2. अरिहंत एवं सिद्ध रूप वीतराग देव, पंच महाव्रतधारी गुरु एवं जिनप्रज्ञप्त धर्म पर आस्था या विश्वास रखना, यथा-

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।

जिणपण्णतं तत्तं, इय सम्मतं मए गहियं ॥

दोनों प्रकार के समाधान में बाह्य भेद प्रतीत होता है, किन्तु वह स्वरूपतः एक ही है। नवतत्त्वों या तत्त्वार्थों पर श्रद्धा होगी तो देव एवं गुरु पर भी श्रद्धा हो जाएगी और देव एवं गुरु पर श्रद्धा है तो जिनप्रज्ञप्त धर्म पर भी श्रद्धा हो जाएगी।

जीवन का बाह्य व्यवहार भी पारस्परिक विश्वास पर टिका हुआ है। लाखों-करोड़ों का लेन-देन भी इसी पर निर्भर करता है। विश्वास नहीं है तो चरण आगे नहीं बढ़ते। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति मार्ग में आए चौराहे पर निर्णय नहीं कर पाता कि उसे किस ओर जाने पर गंतव्य मिल सकेगा। वह बालक से मार्ग पूछता है। बालक मार्ग बताता है, किन्तु विश्वास नहीं हुआ, तो चरण आगे नहीं बढ़े। किसी अन्य व्यक्ति से पूछा। उसने भी वही मार्ग बताया, किन्तु उस पर भी विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि उस व्यक्ति से वह पहले धोखा खा चुका है। तीसरा व्यक्ति आया, उससे पूछा गया, किन्तु वह पागल है, अतः उसके चरण पर भी विश्वास नहीं हुआ। अन्त में मार्ग को जानने वाले पुलिसमेन से पूछा गया। उसने जो मार्ग बताया, उस पर विश्वास हो गया और व्यक्ति चल पड़ा।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी विश्वास अनिवार्य है। विश्वास के बिना यहाँ भी चरण नहीं बढ़ते। विश्वास भी उसी पर करने योग्य है जिससे निश्चिन्तता एवं निःशंकता आ सके। सबसे बड़ा विश्वास तो स्वयं अपनी आत्मा पर होना चाहिए। तभी समस्त तत्त्वों पर विश्वास हो सकेगा। आत्मा पर श्रद्धान् करने पर सम्यग्दर्शनी का चिन्तन चलता है- ‘‘मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे यहाँ क्या करना है? मैं दुर्लभ जीवन को किस प्रकार जी रहा हूँ।’’ मिथ्यात्मी

‘पर’ का चिन्तन करता है जबकि सम्यक्त्वी ‘निज’ का चिन्तन करता है। क्या है मेरा लक्ष्य? क्या है मेरा उद्देश्य, क्या है मेरा साध्य? ऐसे प्रश्नों का उद्गम सम्यग्दर्शन का द्योतक है। साध्य के प्रति यदि श्रद्धा नहीं है तो सिद्धि सम्भव नहीं। सिद्धि के लिए श्रद्धा नितान्त अनिवार्य है।

बिना विश्वास या श्रद्धा के बाह्य व्यवहार भी सफलतापूर्वक नहीं चल पाता है इस कारण आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता के लिए अपने आप पर विश्वास होना अनिवार्य है। अपने आप पर विश्वास से तात्पर्य आत्मा पर विश्वास से है। सम्यग्दर्शन का एक अर्थ भेद-विज्ञान भी लिया जाने लगा है, किन्तु यह भी श्रद्धा के बिना सम्भव नहीं। आत्म-तत्त्व पर श्रद्धा होने पर ही अनात्म से अपने को भिन्न समझा जा सकता है।

(2)

### एकान्त निश्चय : भ्रामक

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन का प्रथम स्थान है, क्योंकि दर्शन के सम्यक् हुए बिना ज्ञान एवं चारित्र सम्यक् नहीं होते (उत्तराध्ययनसूत्र, 28.30)। दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों के सम्यक् होने पर ही सांसारिक बन्धन से सदैव के लिए छुटकारा प्राप्त होता है। (तत्त्वार्थसूत्र, 1.1)

प्रश्न यह उठता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में ज्ञान एवं क्रिया का कोई योगदान होता है या नहीं? प्रश्न गम्भीर है। ज्ञान एवं क्रिया अभी सम्यक् नहीं है, फिर भी वे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में सहयोगी बनते हैं। यदि ऐसा नहीं हो तो कभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। निश्चय एवं व्यवहार सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन करने वाले यह निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि जब तक जीव के मोहनीय कर्म की स्थिति अन्तःकोटाकोटि सागरोपम नहीं होती है तब तक उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट

बंध स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम की होती है। उसका एक कोटाकोटि सागरोपम से भी कम रह जाना बिना क्रिया या पुरुषार्थ के सम्भव नहीं है। इसमें प्राप्त ज्ञान एवं क्रिया का मुख्य योगदान होता है। यदि विचारों में शुभ्रता नहीं होगी एवं आचरण में शुभ्रता नहीं होगी तो मोहकर्म की स्थिति अन्तःकोटाकोटि मात्र नहीं रह सकती। मोहनीय कर्म की स्थिति घटने के साथ आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष कर्मों की भी स्थिति घट जाती है। तप, संयम आदि से होने वाली निर्जरा भी कर्म-क्षय में साधन बनती है। निश्चयवादियों का मत है-

इम समकित पायाँ बिना, जप तप करणी थोक ।

मुरदे को सिणगारणाँ मात्र दिखावा लोक ॥

यह कथन एकान्त निश्चय नय का कथन है। वस्तुतः व्यवहार को भी उतना ही महत्व देना होगा जितना कि निश्चय को। एकान्त निश्चय का कथन भ्रामक हो सकता है। मुर्दे का शृंगार व्यवहार में भी फलदायी नहीं होता है, किन्तु तप, संयम आदि की क्रियाएँ मात्र लोक दिखावा हो, ऐसा नहीं है। शास्त्रादि के श्रुतज्ञान का आश्रय लेकर चिन्तन-मनन करना एवं कर्म-निर्जरा के लक्ष्य से तप-संयमादि करना लोक दिखावा नहीं कहा जा सकता। यह तो मार्ग है जिससे सम्यग्दर्शन की उपलब्धि सम्भव है। यदि मार्ग का ही निषेध कर दिया जाएगा तो सम्यग्दर्शन तक कथमपि पहुँचना सम्भव नहीं है। इसलिए व्यवहार का पूर्णतः निषेध करके सम्यग्दर्शन की बात कहना समीचीन नहीं है।

मक्खन की प्राप्ति के लिए बिलौने की रससी के दोनों सिरों को क्रम से खींचना होगा, अन्यथा मक्खन नहीं निकल सकेगा। निश्चय एवं व्यवहार दोनों दृष्टियों का महत्व है। कभी निश्चय की प्रधानता होती है और व्यवहार गौण होता है तो कभी व्यवहार प्रधान एवं निश्चय गौण होता है। पक्षी के जिस प्रकार दोनों पंखों का महत्व है, उसी प्रकार जीवन में निश्चय एवं व्यवहार के

समुचित समन्वय की आवश्यकता है। एकान्त रूप से व्यवहार पर बल देना एवं एकान्त रूप से व्यवहार को गौण करना उचित नहीं है।

(3)

### सम्यक्त्व : दृष्टि परिवर्तन

सम्यग्दर्शन रूप बोधिरत्न प्राप्त हो जाए तो एक रंक भी चक्रवर्ती से बढ़कर होता है-

अप्राप्ते बोधिरत्ने हि चक्रवर्त्यपि रंकवत् ।

संप्राप्ते बोधिरत्ने तु रंकोऽपि स्यात्ततोऽधिकः ॥

यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ है तो चक्रवर्ती भी रंक के समान है और यदि बोधिरत्न प्राप्त हो गया है तो रंक भी चक्रवर्ती से बढ़कर है। सम्यग्दृष्टि के लिए बाह्य धन-सम्पदा का प्रलोभन नहीं होता। वह उसे सम्यज्ञान एवं सम्यक् चारित्र के समक्ष तुच्छ ही समझता है। इसीलिए निम्न कथन प्रचलित हो गया है-

चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग ।

काकबीट सम गिनत हैं, सम्यग्दृष्टि लोग ॥

इसका अर्थ यह नहीं है कि सम्यग्दृष्टि व्यक्ति सांसारिक कार्यों का निर्वाह नहीं करता। वह निर्वाह करता है, किन्तु निर्लिप्त एवं निरासक्त भाव से। उसकी सांसारिक विषय-भोगों के प्रति रुचि नहीं रहती, घर-परिवार एवं धन-सम्पदा पर ममत्व एवं आसक्ति न्यून हो जाती है। इसीलिए कहा गया है-

अहो समदृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल ।

अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल ॥

सम्यग्दृष्टि का चरण जब आगे बढ़ता है तो वह देशविरति एवं सर्वविरति को प्राप्त करता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो अप्रमत्त-भाव को प्राप्त

कर उसी भव में (आयुष्य न बाँधने पर) भी मोक्ष के अनन्तसुख को प्राप्त कर लेता है। वह अनन्तज्ञानी एवं अनन्तदर्शनी होने के साथ दानादि लब्धियों को भी प्राप्त कर लेता है।

अनन्तानुबन्धी कषाय एवं दर्शनमोहनीय का उदय में अभाव होने पर सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है तथा सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर अन्य कषायों का भी क्षय करना सम्भव है।

शास्त्र कहते हैं कि जहाँ सम्यक्त्व नहीं वहाँ ज्ञान भी अज्ञानरूप ही है। सम्यग्दर्शन के बिना आत्मलक्ष्यी अथवा मोक्षाभिमुखी ज्ञान का अभाव ही रहता है। यद्यपि अज्ञानी एवं ज्ञानी दोनों ही बाह्य वस्तुओं को एक जैसे नामों से जानते एवं पुकारते हैं, तथापि उनकी दृष्टि में भारी अन्तर होता है। दोनों ही गाय को गाय, हाथी को हाथी और कुत्ते को कुत्ता ही कहते हैं, किन्तु अज्ञानी जहाँ बाह्य दृष्टि तक सीमित है वहाँ ज्ञानी उसका वास्तविक स्वरूप जानता है। उसकी नित्यानित्यता को जानता है।

मिथ्यात्वी कहता है यह तन अनमोल है। नर भव की यह देह पहले कभी मिली नहीं, इसलिए इसको खूब सजाओ, सँवारो। इसे किसी प्रकार का कष्ट मत दो। इसे खूब नहलाओ, धुलवाओ और खूब खिलाओ-पिलाओ, इस प्रकार उसका चिन्तन चलता रहता है। सम्यग्दृष्टि भी नरतन को अनमोल मानता है और उसकी असाधारण सत्ता को स्वीकार करता है। वह सोचता है- ‘यही तो वह अनुपम, अनमोल मनुष्य देह है जिसे प्राप्त कर अनन्त जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।’ जब किसी को सम्यक्त्व प्राप्त होता है तो उसका जीवन, उसके विचार उसका कार्यकलाप सभी में परिवर्तन स्पष्ट लक्षित होता है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, यह नियम सम्यग्दृष्टि व्यक्ति पर भी घटित होता है। उसका संसार बदल जाता है। उसके भीतर जो बदलाव आता है वह उसे काम, क्रोध, मद, लोभ आदि से बचाता है।

दृष्टिभेद से संसार की वस्तुएँ सबको भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई पड़ती हैं। मिथ्यात्वी जहाँ संसार की वस्तुओं को भोग्य वस्तुओं के रूप में देखता है, सम्यक्त्वी वहाँ उन वस्तुओं से अपने को पृथक् समझता है एवं उसका भोग करने की भावना से विरत रहता है। एक मृत युवति को देखकर भोगी उससे भोग करना चाहता है, चोर उसके जेवर लूट लेना चाहता है। सियार उसे मांस समझकर खा लेने का इच्छुक है और एक संत उसकी लाश को देखकर जीवन की क्षण भंगुरता का विचार करता है। यह सब दृष्टि का भेद है। सम्यक्त्वी की दृष्टि संत के समान होती है, जिसमें वस्तुओं की क्षणभंगुरता का बोध होता है। धन्ना सेठ जिस सुभद्रा को पत्नी समझते थे, दृष्टि बदली तो उसे बहन मानकर वैसा ही व्यवहार करने लगे।

आवश्यकता दृष्टि में परिवर्तन की है, मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में आने की है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होते ही मुक्ति निकट हो जाएगी। संसार का स्वरूप बदला हुआ प्रतीत होगा। फिर व्यक्ति बालक की भाँति बेर के लिए कीमती हीरे को नहीं फेंकेगा कहा है-

जहाँ जिसकी समझ नहीं, वहाँ अंधेरा घोर।  
रत्न कीमती छोड़कर, बालक पकड़े बोर॥

बालक के हाथ में कीमती रत्न हो और उसे खाने का बोर दिया जाय तो वह रत्न को फेंककर बोर ले लेता है, कारण कि उसको रत्न का मूल्य ज्ञात नहीं है। मिथ्यात्वी भी इसी प्रकार अमूल्य मानव-भव को भोगों के बदले में खो देता है, किन्तु सम्यक्त्वी उसका मूल्य जानकर उसे सार्थक बना लेता है।

(4)

#### सम्यक्त्वी की पहचान

शरीर की कोई हड्डी क्रेक हो जाय तो एक्स-रे से पता चलता है, सिर

में कहीं गाँठ आदि हो तो सी.टी. स्केन से पता चल जाता है, शरीर के भीतर अन्य कोई गाँठ आदि हो तो सोनोग्राफी से ज्ञात हो जाती है, थर्मामीटर से बुखार नाप लिया जाता है। इस प्रकार बाह्य विकार के अनेक परीक्षण यन्त्र हैं, किन्तु भीतर के विकारों का एवं सम्यग्दर्शन का बोध किसी यन्त्र से नहीं, व्यक्ति के आचरण से होता है। सम्यग्दर्शन होने के पाँच लक्षण माने गए हैं-

1. सम, 2. संवेग, 3. निर्वेद, 4. अनुकम्पा और 5. आस्तिक्य।

सम्यक्त्वी समता में रहता है। वह विषम परिस्थितियों में भी समभाव में रहता है। उसका समभाव नाटक नहीं होता। कषाय के पतले होने से वह समभाव में रहता है। उसका समभाव सहज रूप से होता है। यदि धर्मकार्यों को करते हुए मन प्रमुदित होता है, प्रसन्न होता है और पापकार्य करते हुए लज्जा, ग्लानि एवं विक्षोभ का अनुभव करता है तो यह भी सम्यक्त्वी होने की पहचान है। विषय-भोगों के प्रति आकर्षण में कमी होना निर्वेद है। यह एक प्रकार से वैराग्य है। सम्यक्त्वी जीवन-निर्वाह के लिए आहारादि लेता है, भोग की भावना से नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव की यह भी पहचान होती है कि वह संसार में रहकर भी संसार में नहीं रहता। पानी में नाव है पर नाव में पानी नहीं। वह संसार में है, परन्तु उसमें संसार नहीं होता। दुःखियों के दुःख को देखकर सम्यक्त्वी अनुकम्पित होता है तथा उनके दुःख को दूर करने हेतु प्रयासरत होता है। सम्यक्त्वी की जीवादि नवतत्त्वों एवं सुदेव, सुगुरु एवं सुधर्म पर आस्था होती है। यही आस्तिक्य कहलाता है।

(5)

**सम्यक्त्व : एक दिव्य दृष्टि**

(प्रवचन से चयनित वचन)

- सम्यग्दर्शन अभी प्राप्त नहीं हुआ है, अन्यथा क्या मजाल कि स्थानक

में सामायिक में, ब्रत में, पौष्ठ में आप बैठे हों और मन घर जाने को करे। यह मोह एवं मिथ्यात्व की दशा है। बिना श्रद्धा या बिना विश्वास यह दशा टूटने वाली नहीं है।

- सम्यग्दर्शनी का व्यवहार सम्यग्दर्शन के पश्चात् शुद्ध-निर्मल नहीं रहा तो जो रत्न मिला था वह भी चला जायेगा।
- धर्म-कार्य को बाद में करने के लिए टालते रहना सम्यग्दर्शनी को शोभा नहीं देता।
- सम्यग्दर्शन एक दिव्य दृष्टि है जो व्यक्ति को अन्धकार से प्रकाश में लाती है।
- मिथ्यात्वी जहाँ गुणीजनों में बैठकर भी अवगुण ही तलाशता है वहाँ सम्यक्त्वी जीव अवगुणधारियों में बैठकर भी गुण को चुन लेता है। उसकी दृष्टि गुण-ग्राहक होती है।
- कहा जाता है कि व्यवहार-समकित की आराधना करते हुए भी जीव मिथ्यात्वी होता है। यह कथन सत्य के निकट है, पर इस कथन को लेकर यह मानना कि हमें व्यवहार समकित की आराधना-साधना ही नहीं करनी चाहिए, उचित नहीं है। मिथ्यात्वी भी वीतराग को देव, निर्ग्रन्थ को गुरु और दया में धर्म समझे और पुरुषार्थ करे तो वह वस्तुतः समकित को प्राप्त कर सकता है। मिथ्यात्व की गाँठ आज ढीली पड़ेगी तो कल वह गलेगी और अन्त में जीव के द्वारा तोड़ दी जायेगी।
- दृष्टि के अन्तर का ही सारा खेल है। दृष्टि संसार के काम-भोगों में उलझी तो घोर अन्धेरा है और तत्त्व श्रद्धान् एवं तत्त्व निश्चय की ओर चली गई तो प्रकाश ही प्रकाश है।

- सम्यगदर्शन होने के पश्चात् विषय भोग गंदगी के रूप में त्यज्य प्रतीत होते हैं। क्रोधादि भी त्यज्य प्रतीत होते हैं।
- जैसी अन्तःदृष्टि होती है वैसी ही बाह्य सृष्टि प्रतीत होती है। सम्यक्त्व, दर्पण है जिसमें अपनी आत्मा का दर्शन किया जा सकता है।
- सम्यक्त्वी का प्रत्येक विचार, प्रत्येक आचार कर्मबंध को हटाने के लिए, आस्त्रव को मिटाने के लिए और मुक्ति की प्राप्ति के लिए होता है।
- चिड़ी काँच पर बैठती है और स्वयं को देखती है। उसे काँच में अपना प्रतिरूप दिखता है, उसे वह अपना स्वजाति पक्षी समझकर लड़ने लगती है और चोंच मार-मारकर खुद की चोंच को घायल कर डालती है। यही दशा मिथ्यात्वियों की है। वे पुद्गलों में ही अपना जीवन मानकर उन्हीं में रमते हैं और इस प्रकार अज्ञान से अपनी आत्मा को आहत कर लेते हैं।
- आत्मा का वास्तविक घर मोक्ष है। उसकी प्राप्ति तत्त्वशङ्का रूप सम्यगदर्शन से संभव है।

□☆□

## ज्ञान-प्राप्ति में बाधक कारण

(29 अक्टूबर 1994 को नेहरू पार्क, जोधपुर में प्रदत्त इस प्रवचन में ज्ञान-प्राप्ति में बाधक कारण, अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग एवं आलस्य की चर्चा की गई है।)

संसार के सभी जीव स्थायी सुख पाना चाहते हैं। सभी दुःखों से पार पहुँचना चाहते हैं। पर यह तब तक नहीं होता जब तक सुख का साधन नहीं पकड़ लिया जाये। उस स्थायी सुख के साधन हैं-ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। उस सुख में बाधा डालने वाले कषाय हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ।

कल मैं कह गया कि क्रोधादि कषायों का रोग लोकव्यापी रोग है। निगोद से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक, इसकी सत्ता से कोई अलग नहीं है। इससे अलग होने वाला मात्र मानव है। मानव भी वह जिसने परमात्म-स्वरूप को समझकर अपने स्वरूप में दृढ़ विश्वास किया है। जब तक इस अविनाशी-इस अविकार-इस अकषायी आत्मा का विश्वास नहीं जगेगा, तब तक इस मार्ग में कदम नहीं बढ़ेगा। इसलिए संसार की जड़ों को सींचने वाले कषाय रूप पानी की आवक बन्द की जाय तभी आप ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे तभी आप दर्शन प्राप्त कर सकेंगे और तभी चारित्र मार्ग में चरण बढ़ा सकेंगे।

तीर्थङ्कर भगवान महावीर कह रहे हैं कि ज्ञान-प्राप्ति में पाँच बाधक कारण हैं-

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भइ ।

थंभा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सएण्य ॥ -उत्तरा. 11.3 ॥

(अर्थात् अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य ये ज्ञान-प्राप्ति में बाधक कारण हैं।)

आज जो ज्ञान लेने वाले हैं, जो ज्ञान के पात्र बनने लायक हैं, उनमें क्या नहीं होना चाहिये और क्या होना चाहिये, इन्हीं बाधक और साधक कारणों पर विवेचन किया जा रहा है। पहला बाधक कारण बताया अहंकार को। अहंकार क्या ? तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने मद के आठ रूप कहे हैं, मद और अहंकार में एकरूपता है, इसलिए अहंकार के आठ रूप हैं। कभी जाति-सम्पन्न व्यक्ति को जाति असम्पन्न गुरु मिलता है, तो श्रद्धा नहीं जम पाती। वह सोचता है यह निम्न जाति का व्यक्ति मुझे क्या ज्ञान देगा ? इसलिए कहा गया है कि अहंकारी को ज्ञान नहीं आता। छोटी सी बात कह रहा हूँ आप किसी के बारे में सोचते हैं-कल यह मेरे घर पर काम किया करता था, सफाई किया करता था, हाथ फैलाया करता था, आज यह मुझे क्या देगा ? इसी प्रकार अपने को उच्च समझने वाले कुछ लोगों ने दूसरे व्यक्तियों से ज्ञान लेने की चेष्टा ही नहीं की। हीन कुल वालों को वे ज्ञान देने का अधिकारी नहीं मानते। कोई सुनने आ भी जाय तो उन्हें उस स्थान से निकालने वाले भी हैं। अयोग्यता खुद में है, आरोपित करता है दूसरे पर। उत्तराध्ययन का अगला अध्ययन (12वाँ अध्ययन) आयेगा हरिकेशबल का। चाण्डाल कुल में जन्मा हुआ क्या ज्ञान देगा ? इसे क्या ज्ञान देना आता है ? जन्म-सिद्ध अधिकार किनका है ? आपका, उच्च कुल वालों का जन्म-सिद्ध अधिकार है तो इसे छोड़ क्यों ? आज आप धन के आगे इसे भूल गये।

दूसरी बात है-कभी अल्प वय का व्यक्ति गुरु मिलता है, सीखने वाला बड़ी उम्र का है, तब भी हीनभाव होते हैं। गुरुजी बीस साल के, चेलेजी साठ साल के, तो क्या ज्ञान देंगे? इस सोच वाले कहते हैं-‘मैं लूण खायो जीतो थें आटो कोनी खायो।’ यह अहंकार का रूप है।

यह ज्ञान मैंने अपने आप सीखा है। आप मैं ही नहीं, अच्छे-अच्छे ज्ञानियों में इस प्रकार का अहंकार हो सकता है। इन्द्रभूति गौतम को अहंकार था कि आज तक कोई ऐसा ज्ञानी मेरे सामने नहीं आया, जो मुझसे टक्कर ले सके। जिसमें ऐसा अहंकार होता है वह ज्ञान का अधिकारी नहीं होता। अहंकार टूटने पर ही ज्ञान आता है। इन्द्रभूति को भी ज्ञान आया।

ज्ञान-प्राप्ति के बाधक कारणों में दूसरा नम्बर है क्रोध का। क्रोधी व्यक्ति भी ज्ञान का अधिकारी नहीं होता। क्रोध कैसा? क्रोध के भी शायद मैं भेद करते-करते थक जाऊँगा। अनन्तानुबन्धी के भी अनेक भेद हैं, मैं उन सब भेदों को न कहकर मोटी-मोटी सीमा में भेद कर रहा हूँ। जो ज्ञान का पात्र बनना चाहता है वह अनुशासन किये जाने पर क्रोध नहीं करे। जो अकारण क्रोध करता है, वह भी ज्ञान का अधिकारी नहीं है। मारवाड़ी कहावत है-‘केई ने पीयोड़ी उगे, केई ने बिना पीयोड़ी उगे।’ ऐसे भी मिलेंगे जिन्हें देखने के साथ क्रोध आता है। ज्ञानियों ने कहा है कि कुछ मैं जन्मजात क्रोध है, जन्म-जात वैर है-

मृगमीनसज्जनानां, तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्।

लुब्धकधीवरपिशुना, निष्कारणवैरिणो जगति ॥

(तिनके या घास खाकर जीने वाले हिरण का जन्म-जात शत्रु शिकारी है, जल में जीने वाली मछली का जन्मजात (अकारण) शत्रु मछुआरा है। सन्तोषवृत्ति से जीने वाले सज्जन का अकारण शत्रु चुगलखोर होता है।)

कुछ लोग हैं जो बिना कारण दूसरे पर क्रोध करते हैं। वे जन्मजात शत्रु होते हैं, यथा मृग का शत्रु शिकारी, मीन का शत्रु धीवर और सज्जन का शत्रु चुगलखोर है। हिरण जंगल में चरता है, किसी का कुछ नुकसान नहीं करता, किसी के काम में बाधक नहीं बनता, फिर भी चमड़े के लोभी, मांसाहारी एवं सींग के लोभी कुछ लोग हैं जो हिरण के जन्मजात वैरी हैं। मीन का वैरी मछुआरा है। तालाब में मछली बिचारी क्या करती है? पर धीवर जन्मजात उसका वैरी है। इसी तरह सज्जन अपने रास्ते आता है, अपने रास्ते जाता है, किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं, हर प्राणी की रक्षा करते चलता है, ऐसे सज्जनों के जन्मजात वैरी होते हैं चुगलखोर। नीतिकार कहते हैं-

आदि वैर गैहूँ ने घट्टी आदि वैर वेश्या ने सती।

आदि वैर सासू ने बहू आदि वैर जोगी ने जती ॥

(गैहूँ का आदि वैर घट्टी या चक्की है, वेश्या का आदि वैरी सती नारी है, सासू का आदि वैरी बहू है और योगी का आदि वैरी यति है।)

यह भी एक नीति की कहावत है। कहावत कुछ भी हो, उसका भाव इतना ही है कि जितने सती-सज्जन और चारित्र वाले हैं, दुष्ट चारित्र वाले उनके जन्मजात वैरी होते हैं। उनसे चारित्र पलता नहीं, आराधना उनसे होती नहीं, इसलिये अपने आपको कैसे बड़ा बताना इसके लिए वे दूसरों को दोषी बताते हैं।

किसी में चाहे कितना ही ज्ञान क्यों न हो, पर अगर आचरण क्रोध वाला है तो उसकी सेवा-भक्ति और विनय करने वाला कोई नहीं होता। कहते हैं कि अनेक प्रकार की व्याधियों के जहर को मिटाने वाली मणि जिसके पास है, उस साँप के भी नजदीक कोई जाने वाला नहीं होता है-

कोपोऽस्ति यस्य मनुजस्य निमित्तमुक्तो, न तस्य कोऽपि कुरुते गुणिनोऽपि भक्तिं।  
आशीविषं भजति को ननु दन्दशुकं, नानोग्ररोगशमिना मणिनाऽपि युक्तम् ॥

(जिस मनुष्य के पास अकारण क्रोध है, वह यदि गुणी भी हो तो उसकी कोई सेवा नहीं करता है। अनेक प्रकार के लोगों को दूर करने वाली मणि से युक्त जहरीले सर्प की सेवा कौन करता है?)

अनेक प्रकार के दुःख-दारिद्र्य मिटाने वाली मणि जिसके पास है, उसकी सेवा करने वाले भी कोई नहीं। मणि से युक्त होते हुए भी सांप की सेवा कौन करे? इसी तरह जरूरत है लड़के की, जरूरत है चेले की, जरूरत है काम करने वाले मुनीम की, पर ऐसे की जरूरत नहीं है जिसे बिना पीये उगे, जिसे अकारण गुस्सा आ जावे। कई भाई कहते हैं- ‘बाबजी! काँई कराँ, छोरो बारे रेवे, छोको आदमी मिले कोनी। म्हारे बुढ़ापो है, लड़न वालो आ जावे तो और मुश्किल।’ आपको मुनीम चाहिये पर ऐसा नहीं जो माथा फोड़ने वाला हो।

क्या मतलब हुआ? जिस व्यक्ति को अकारण क्रोध आता है वह भी ज्ञान का अधिकारी नहीं है। क्रोध सबमें है। छद्मस्थ हैं, तब तक रहेगा, पर अकारण क्रोध नहीं हो। कारण से भी हो तो पानी में लकीर की तरह। निमित्त मिलने पर आया और तत्काल चला गया, जैसे पानी में लकीर खींची और चली गई। इससे भी अधिक क्षमाशील वे हैं जिन्हें कुछ भी कह दो, किन्तु उन्हें क्रोध नहीं आता। ऐसे लोगों की सबको चाहना रहती है।

ज्ञान-प्राप्ति में तीसरा बाधक कारण है-प्रमाद। जो प्रमादी है वह भी ज्ञान का अधिकारी नहीं है। प्रमाद क्या? आप काम भोलाओ, तो वह कहे, ‘मने नींद आवे।’ अथवा मूढ़ी है मन हुआ तो कर दिया नहीं तो नहीं किया। बुद्धिमान है, विचक्षण है, याद करने बैठे तो जल्दी याद हो जाय, लेकिन मूढ़ी है, प्रमादी है इसलिए ज्ञान नहीं आता।

पीपाड़ में आचार्य पूज्य श्री कजोड़ीमल जी महाराज अपने वस्त्रों की प्रतिलेखना करने के बाद चेले के वस्त्रों की प्रतिलेखना कर रहे थे। उनका

स्वावलम्बन था। आचार्य बनने के बाद भी स्वावलम्बन था। वे अपना काम स्वयं करते थे। क्या प्रतिलेखन, क्या भिक्षाचरी, क्या ज्ञानदान, सब काम खुद किया करते थे। आचार्य अपना काम करे वह तो ठीक पर चेले का करे तो.....।

एक बाईं से रहा नहीं गया। उसने पूछ लिया- “बाबजी! चैलाजी रे काँई तकलीफ है?” “बाई! कोई तकलीफ नहीं है।” “तो पछे वाँरी पलेवणा आप कींकर कर रहिया हो?” “बाई! म्हाराँ सुँ अबे ज्ञान होवे नहीं।” उनका कहना था कि ज्ञान की आराधना मैं नहीं कर सकता, तो कम-से-कम सहयोग तो कर सकता हूँ।

वह बहन चैलाजी के पास गई और बोली- ‘थें थाँणी पलेवणा नहीं कर रहिया हो, थाँरी पलेवणा महाराज ने करणी पड़े। थें काँई याद करो?’

महाराज बोले- ‘मैं एक घंटा माँय सौ गाथा याद करूँ।’

बाई चुप रह गई। सन्तों में यह भी एक-दूसरे का सहयोग है। मैं कहूँ-हर्ष से कभी-कभी बड़ों को काम करना पड़ता है और कभी साथ वाला काम नहीं करता है तो भी करना पड़ता है। कभी काम पसन्द नहीं आवे तो भी करना पड़ता है। कभी किसी को चार बार काम बतावें तो भी वह सुनता तक नहीं। अतः लकड़ी टेककर स्वयं को जाना पड़ता है।

जो प्रमादी है, सीधी भाषा में कहें-कहे अनुसार करने वाला नहीं है। काम कह दो तो जवाब देगा-मैं अभी पलेवणा कर रहा हूँ, मैं अभी व्याख्यान की तैयारी कर रहा हूँ, अमुक काम करके आपका काम कर दूँगा, ऐसा कहना भी प्रमाद है। कोई निद्रा का प्रमादी है, कोई इन्द्रियों के विषयों का प्रमादी है। गोचरी लेकर आया है, दस मिनट देर हो जाये तो.....। म्हारे नहीं खानो। नीठ तो गर्म-गर्म लेयने आयो, थे ठण्डो कर दियो। इस तरह विषय का लोलुपी, इन्द्रियों पर आसक्ति वाला भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता।

जो प्रायः रोगी होते हैं वे भी ज्ञान नहीं सीख पाते। यह ज्ञान सीखने में चौथा बाधक कारण है। साधारण बीमारी की नहीं कहता, किन्तु असाध्य रोग हो, बैठे रहने में भी तकलीफ हो तो वह ज्ञान नहीं सीख सकता। इसलिए रोग भी बाधक कारण है। पाँचवा कारण आलस्य है। आलसी व्यक्ति, जिनकी बुद्धि मन्द है, ज्ञान कम चढ़ता है वे बीमार नहीं होते हुए भी बीमार बन जाते हैं। पेट एवं माथे की बीमारी बता कर आलस्य कर जाते हैं। कई ऐसे भी हैं, जो दर्द होते हुए भी वेदना भूलकर ज्ञान प्राप्त करने में और सेवा करने में तत्पर रहते हैं। मैं कह रहा हूँ प्रमादी, रोगी, इन्द्रियों का लोलुपी भी ज्ञान का अधिकारी नहीं होता।

राहगीर ने पूछा-भाई! थारे मँडा माथे माखी बैठी है, उड़ा दे।' 'मैं घणो ही केऊँ, कोई उड़ावे ही कोनी।' किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों की प्रकृति में आलस्य होता है। ऐसे व्यक्ति ज्ञान के अधिकारी नहीं माने गए हैं।

शास्त्र इन पाँच बाधक कारणों के पश्चात् साधक कारणों को भी कहता है, उन्हें समय आने पर कहा जायेगा, किन्तु जो लोग कषाय की तीव्रता वाले हैं, वे यहाँ नहीं दोनों जगह दुःखी होते हैं। भगवती सूत्र में एक अच्छा दृष्टान्त मिलता है। गणधर गौतम ने भगवान महावीर से पूछा-किसी को भूत लग जाये तो उसका उपाय क्या? भूत जिसे लग जाय वह गेलाँया करे, किसी के वश में नहीं आवे, सबको परेशान करे। वह एक नहीं, कई-कई आदमियों को थका दे। इसका उपाय क्या, ऐसे व्यक्ति से किस तरह व्यवहार करना? दो आदमी पागल होते हैं। एक तो गुस्से वाला पागल होता है, एक भूतावास वाला पागल होता है। भगवान महावीर ने कहा-भूत निकालना तो फिर भी सरल है। भूत मन्त्र से निकल जाता है। ऐसे-ऐसे भी मंत्र-ज्ञानी हैं जो भूत निकाल सकते हैं। कुछ तान्त्रिक भी होते हैं जो डोरे-ताबीज से उन्हें वश में कर सकते हैं। कुछ सज्जन-सदुणी चारित्र वाले होते हैं जिनके सामने जाने

मात्र से भूत उतर जाता है। जपी, तपी एवं साधक आत्माएँ भी हैं जो ऐसे स्थानों पर ठहर जाती हैं जहाँ अन्य लोग ठहरने से डरते हैं।

आचार्य पूज्य श्री गुमानचन्द्र जी महाराज के शिष्य थे स्वामी प्रेमचन्द्र जी महाराज। वे मेड़ता पथारे। उनके पधारने से ब्राह्मण-पण्डित की आवक बन्द हो गई। ब्राह्मण ने विचार किया कि ये कौन से महाराज आए हैं, जिससे मेरी दुकान बन्द हो गई। ब्राह्मण पण्डित महाराज के स्थान पर गया- “कहाँ है प्रेमचन्द्र?” पर वे ऐसे साधक थे, सामने देखा और ब्राह्मण पण्डित पानी-पानी होकर भाग छूटा। अरे, मने मारे रे.....अरे, मने मारे रे। लोगों ने पूछा-कुण ? परन्तु कहे क्या ? सोजत में यतियों की हवेली में ठहरा दिया तो वहाँ बाधा समाप्त हो गई। मैं कह रहा हूँ-भूत निकालना सरल है, परन्तु क्रोध का भूत निकालना सरल नहीं है।

भगवान महावीर कह रहे हैं-क्रोध के भूत निकालने के लिए हजारों-लाखों गुण शक्ति का प्रयोग करोगे तब वह निकलेगा। इसलिए जब तक क्रोध है तब तक ज्ञान नहीं। कषाय है तब तक श्रद्धा जमेगी नहीं। क्रोध कषाय की तीव्रता है तब तक सन्मार्ग में चरण आगे बढ़ेंगे नहीं।

ज्ञान मिलाने की साधना करने वाले चाहे घर में रहें, चाहे घर छोड़कर रहें, कषयों पर विजय प्राप्त करके चलेंगे तो ज्ञान की आराधना कर पायेंगे। अतः ये पाँच दूषण टाल कर ज्ञान का पात्र बना जा सकता है। ये दूषण अनन्त काल से लगे हैं। जब तक ये दुर्गुण रहेंगे, परेशान करेंगे। इसमें किसी परम्परा, पंथ और मत की बात नहीं है। आप चाहे जितने धर्म के भेद कर दीजिये इन नियमों के सम्बन्ध में कोई मना नहीं कर सकता। नास्तिक भी होगा, उसके लिए भी यही बाधक तत्त्व हैं। इन दूषणों से बचना सभी के लिए आवश्यक है। आप ज्ञान की आराधना करना चाहें तो इन दूषणों से बचें। सुख-शांति-आनन्द.....।

## **ज्ञान-प्राप्ति के लिए हास्य का त्याग क्यों ?**

(ज्ञान-प्राप्ति में 8 साधक कारण हैं, उनमें से प्रथम कारण है-  
अहास्यशीलता। जोधपुर चातुमासि में 30 अक्टूबर 1994 को प्रदत्त प्रवचन में इसी  
पर बल दिया गया है।)

तीर्थঙ्कर भगवान महावीर की अन्तिम अनमोल वाणी उत्तराध्ययनसूत्र  
के ग्यारहवें अध्ययन में प्राणी मात्र के जीवन-निर्माण में बाधक कारणों से  
हटकर साधक कारणों का वर्णन किया जा रहा है। बहुश्रुत-पूज्य बनने में पाँच  
महादोष हैं-अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य। (इनका विवेचन गत  
प्रवचन में हुआ है)

एक-एक दुर्गुण, किनारे पहुँचे हुए जीवन को फिर से नीचे गिरा देता  
है। एक-एक दोष जीवन-भर की गई साधना की सम्पत्ति को जला कर राख  
कर देता है। नीतिकारों ने कहा-धरती जब भाष निकालती है तो सारे क्षेत्र को  
हरा-भरा कर देती है, इंजन भाष निकालता है तो सैंकड़ों मन-टन भार खींच  
कर ट्रेन को पार पहुँचा देता है। रसोईघर में कभी भाष निकलती है तो कच्चे  
पदार्थ भी खाद्य रूप में खाने योग्य बन जाते हैं। सागर कभी भाष निकालता है  
तो खारा पानी उड़-उड़ कर मीठा बनकर बरसता है। पर, क्रोध कभी भाष  
निकालता है तो घर-परिवार-गाँव-देश में आग लगा देता है, सर्वस्व स्वाहा  
कर देता है। घर में क्रोध है तो वह प्रेम को खत्म करता है, साधक-जीवन में

क्रोध है तो वह करी कराई साधना को पानी कर देता है। इसलिये एक भी दुर्गुण साधना के मार्ग में बाधक है। कहते हैं सुकुमालिका के शरीर से आग निकलती थी पर वह खुद को नहीं जलाती थी। उसे जो विकार की निगाह से देखता था उसे जला देती थी। आपने कभी द्रौपदी का जीवनचरित्र श्रवण किया है। कुछ लोगों की आँखों में विकार होता है। आप उसे अपनी भाषा में नजर लगाना कहते हैं। कई-कई लोगों की आँख में इतना तेज होता है कि शिला पर नजर पड़ जाय तो उसमें दरार आ जाय, स्वस्थ आदमी को देख ले तो वह चक्कर खाकर गिर जाय। जिस पर निगाह पड़ जाय उसके शरीर का रक्त चाप बढ़ जाय, ज्वरांश बढ़ जाय और यहाँ तक कि वह मौत के नजदीक भी पहुँच जाये।

यह तो आप रोज देखते हैं कि सूरज से किरणें निकल रही हैं, परन्तु सूरज नहीं जलता। जबकि क्रोध की आग ऐसी है जो दूसरों को जलावे, अथवा न जलावे, किन्तु अपने आपको जरूर जलाती है। इसलिए क्रोधी को ज्ञान का अनधिकारी माना गया। चाहे कभी वह क्रोध के आवेग को रोककर नकली क्षमा धारण कर किसी से कोई ज्ञान सीख भी ले, लेकिन जब कभी क्रोध की भाप निकाल दे तो.....? जो भी उसके सामने आ गया चाहे वह ज्ञान देने वाला ही क्यों न हो उसका भी अहित या अनादर कर देगा।

हजारों वर्षों तक तप करके भस्मासुर ने शिव से वरदान प्राप्त कर लिया कि जिस पर हाथ रखूँ वह ढेर हो जाय। उसने पार्वती को देखा, देखते ही अपनी विद्या का प्रयोग चालू कर दिया। हजार वर्षों तक क्रोध नहीं है, पर एक बार क्रोध की आग निकल गई तो उसी से अनिष्ट होगा। इसीलिए भगवान महावीर कह रहे हैं-ज्ञान किसको दो, किसको मत दो इसको जानिए। सैंकड़ों तरह की विद्याएँ आज नष्ट हो गई। क्यों हो गई? क्योंकि उन्हें लेने की पात्रता-योग्यता वाले व्यक्ति नहीं रहे। इसलिये समर्थ ज्ञानी पुरुषों के साथ ही विद्या एवं मन्त्रों का लोप हो गया।

इसी तरह ज्ञान भी उनके लिए उपादेय होता है जिनके जीवन में ये अहंकार, क्रोध आदि पाँच दुर्गुण नहीं हैं। ज्ञान किन गुणों वालों को दिया जाना चाहिये, इसके लिए उत्तराध्ययन सूत्र में ज्ञान-प्राप्ति की योग्यता के आठ कारण बताये गये हैं-

अह अद्वहिं ठाणेहिं, सिक्खासीलेत्ति वुच्चइ।

अहस्सिरे सया दंते, न य मम्ममुदाहरे ॥

नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।

अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ॥

-उत्तराध्ययनसूत्र 11.4-5

भगवन्त (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) की भाषा में कहूँ तो-  
आठ गुणों से युक्त मनुज, शिक्षा का होता अधिकारी,  
ना हास्यशील और दान्त सदा, ना मर्म प्रकाशे दुःखकारी।  
चारित्रहीन ना विकृतशील, अतिशय रस-लोलुप हो न कभी,  
क्रोध करे ना सत्यब्रती, शिक्षाभागी नर होत तभी ॥

(शिक्षाशील के आठ गुण हैं-अहास्यशील हो, दान्त हो, मर्म को कहने वाला न हो, अशील न हो, विशील न हो, अतिलोलुप न हो, क्रोध न करे, सत्य में रत हो)

कहते हैं-इन आठ गुणों वाले व्यक्ति ज्ञान-प्राप्ति के योग्य होते हैं। ये शिक्षा के योग्य शील अर्थात् आचरण वाले होते हैं। इसलिए इन्हें ज्ञान दिया जा सकता है। उसमें पहला गुण कह रहे हैं-जिसका जीवन हास्यप्रधान नहीं है। बहुत सीधी भाषा में कहें-कई आदमी मसखेरे होते हैं, हँसी-मजाक वाले होते हैं उन्हें ज्ञान से गूढ़ रहस्य की बात कही जाय तो वे हँसी में उड़ा देते हैं। सीख की बात, आचरण की बात, जीवन-निर्माण की बात कहिये हर बात को हँसी में उड़ा देना उनका प्रमुख दोष होता है। इसलिये आकृति से भी स्वभाव

से भी, दृश्य से भी हास्य की प्रकृति ज्ञान में बाधक है। हास्य की प्रवृत्ति छोड़ने वाला ज्ञान-प्राप्ति में सफल होता है।

उत्तम पुरुष जो होते हैं वे आँखों से हँसते हैं। मध्यम पुरुष की हँसी में मात्र होठ खुलते हैं, दाँत दिखते हैं। होठ खुलने और दाँत दिखने का तात्पर्य है अभी ये प्रसन्नता के मूड में हैं। अधम पुरुषों का हँसना ठहाका लगाकर होता है। हँसते समय उनका सारा शरीर हिल जाता है। शास्त्र कहता है कि ज्ञानी-साधक और मुनिजन हर समय प्रसन्न रहते हैं, हर समय समता में रहते हैं। चाहे अनुकूल परिस्थितियाँ हों, चाहे प्रतिकूल; ज्ञानीजन-मुनिजनों के चेहरे कमल की तरह खिले रहते हैं। यह उनका स्वभाव है।

### हँसिया दोष अपार-

हास्य की प्रकृति जीवन-उत्थान में बाधक है। कैसे बाधक है? बात छोटी सी है, पर छोटी होते हुए भी बहुत बड़ी है। हँसी कब आती है? इसका कारण ढूँढ़ें तो ज्ञात होगा कि मनुष्य जब अपने में अच्छाई मानता है, दूसरों में बुराई मानता है तब हँसता है।

हँसी छोटा दोष है पर छोटा भी खोटा है। काँटा बहुता छोटा है लेकिन पैर में लग जाय तो.....? छोटा काँटा भी पैर में लग जाय तो चलने में ब्रेक लगा देगा। उसके कदम रुक जायेंगे। रोहिणेय चोर, भगवान के वचन कान में नहीं पड़ जाय, इसलिए जल्दी-जल्दी जा रहा था, पर काँटा लग गया, कदम रुक गये। छोटा सा काँटा रोक देता है।

छोटे-छोटे मच्छर की उत्पत्ति ज्यादा हुई, एक मच्छर आकर आँख में गिरा। इधर आँख में गिरना हुआ, निकालने के लिए आँख बन्द की एवं गाड़ी रोकी तब तक एक्सीडेंट हो गया। छोटे से मच्छर के कारण एक्सीडेंट जानलेवा हो गया। चिनगारी कितनी होती है लेकिन छोटी सी चिनगारी आग लगा देती है। संखिया इतनी सी मात्रा में है पर वह सौ मण दूध को जहर बना

देता है। वह दूध जो शक्ति संचार करने वाला है, भूख मिटाने वाला है, शरीर का पोषण करने वाला है पर संखिया पड़ा दूध पोषण के बजाय शोषण करने वाला बन जाता है। नाव में छोटा सा छेद हो जाय तो नाव ढूब जाती है। छोटी सी दरार का अगर ध्यान नहीं रखा जाय तो मकान गिर सकता है। इसी तरह छोटा सा हास्य, छोटी सी मजाक की आदत कितनी दुःखदायी होती है, अनुमान लगाया जा सकता है।

आपने समरादित्य का चरित्र श्रवण किया होगा। केवली समरादित्य का प्रथम भव कहा जाता है। वे प्रतिष्ठानपुर के राजकुमार थे। वहाँ एक अग्निशर्मा ब्राह्मण पुत्र था जो शरीर से बेड़ोल एवं आकृति से बेड़ोल था। आँखे बहुत छोटी, भाल छोटा, सिर मतीरे की तरह, नाक फूला हुआ, हाथ नेवले की तरह, उसका हर चिह्न, हर अवयव बेड़ोल था फिर संयोग से तवे जैसा वर्ण था, काला रंग था। उसने मानव जन्म पाया, आर्य क्षेत्र पाया, अच्छा खानदान भी मिला पर सब पाकर भी पुण्य के साथ पाप का उदय था जिसके कारण वह कुरूप एवं बेड़ोल था। ठीक इसके विपरीत था राजकुमार गुणसेन। सुन्दर था, सुडोल था, दयालु था, बुद्धि सम्पन्न था। सब गुण थे, पर एक दुर्गुण था-हास्य। किसी को देखकर हँसी उड़ाने का दुर्गुण था।

नीति तो यह कहती है कि हर पदार्थ में गुण भी हैं, दुर्गुण भी हैं, देखने वाला गुण की ओर देखे तो उसे दुर्गुण ख्याल में नहीं आते। धर्मसिंह जी ने कहा-किसी की हँसी मत कीजिये। किसी के दुर्गुण मत देखिये।

दुनियाँ में एक-से बढ़कर एक गुण वाले हैं फिर भी उनमें दुर्गुण मिल जायेंगे। चन्द्रमा शीतल है, सौम्य है पर उसमें भी कलङ्क है। सूर्य से दिन उगता है, राह दिखती है, सूर्य में अनेक गुण हैं, पर उसमें भी ताप है। चन्दन है उसके चारों ओर भुजङ्ग लिपटे रहते हैं। कोई विद्वान् है, पढ़ा लिखा है, किन्तु अहंकारी है, किसी के पास पूँजी खूब है, परन्तु कंजूस है। इस तरह

एक व्यक्ति में कोई-न-कोई गुण है तो दुर्गुण भी हैं। गुलाब का फूल कितना सुन्दर दिखता है, पर उसके पास काँटे रहते हैं। नीतिकार कहते हैं-दुनिया में जो अच्छे हैं उनमें भी कोई न कोई बुराई मिल जायेगी। तुम्हारी नजर बुराई पर नहीं हो। किसी में चाहे सौ बुराइयाँ हों फिर भी कोई-न-कोई गुण तो होगा ही।

संसार में एक भी पदार्थ ऐसा नहीं जिसमें गुण-अवगुण दोनों नहीं हों। पदार्थ मात्र में गुण भी मिलेंगे, अवगुण भी मिलेंगे इसलिये किसी को नीचा मत दिखाओ, हँसी मत उड़ाओ। हास्य-मजाक छोटा नजर आता है। मारवाड़ी कहावत है-‘राड़ रो मूल हाँसी, रोग रो मूल खाँसी।’ आप सब जानते हो, मेरे पास बताने की कोई नई बात नहीं।

गुणसेन को जब भी वह ब्राह्मण मिल जाता तो हास्य दुर्गुण से उसकी हँसी उड़ाता। एक हाथ में एक रूपया, एक हाथ में एक चवन्नी उसके सामने करता। वह रूपया छोड़कर चवन्नी लेता। ऐसा करने पर उसकी हँसी उड़ाई जाती। खेलते-कूदते उसे छेड़ा जाता। इसी तरह एक बार उसकी सवारी निकालने की मजाक सूझी। सवारी हाथी पर नहीं गधे पर। एक तरफ राजकुमार एक तरफ बेडोल आकृति का ब्राह्मण।

आज इतना जरूर याद रखना-आप जिसकी हँसी कर रहे हैं उसमें अनुभव करने की शक्ति है, समझता वह भी है, उसके मन में दुःख होता है, पीड़ा पहुँचती है, कष्ट का अनुभव होता है। अग्निशर्मा ब्राह्मण उस अपमान को बर्दश्त नहीं कर पाया और रातोंरात प्रतिष्ठानपुर नगर छोड़कर बसन्तपुर चला गया।

किन्तु सब जगह चमड़े को देखने वाले लोग हैं। भीतर की तरफ देखने वाले विरले मिलते हैं। समता वाले साधकों को भीतर से देखा जाना चाहिये।

एक तपोवन था। आर्य कौडिन्य उस तपोवन के आचार्य थे।

अग्निशर्मा, उनके पास पहुँचा। आर्य कौडिन्य ने शरीरधारी के देखने के बजाय उसे जीवधारी के रूप में देखकर उसका सम्मान किया। यह भी मानव है, इसके भीतर भी अनन्त ज्ञान रहा हुआ है, यह भी आत्म-विकास कर सकता है। अग्निशर्मा उन आचार्य से प्रभावित हुआ तथा आचार्य के पास संन्यासी बन गया। उसने आचार्य के चरण पकड़ लिए मुझे सहारा देने वाले हैं तो आप हैं।

आचार्य ने कहा-यह कर्मों का खेल है। कर्म काटने का सहारा है तप। अग्निशर्मा ने मासक्षण की तपस्या चालू कर दी। कड़ाके की सर्दी है तब भी मासक्षण चालू है और तेज गर्मी है तब भी मासक्षण चालू है। निरन्तर मासक्षण कहने में सरल है, किन्तु आचरण में नहीं। फिर अग्निशर्मा की प्रतिज्ञा यह कि पारणक में किसी एक घर में जाऊँगा, मिल जाय तो ले लूँगा नहीं तो दूसरा मासक्षण चालू।

संयोग ऐसा बनता है कि जिस नगर में तपस्वी बनकर अग्निशर्मा जीवन-विकास में आगे बढ़ रहा था उसी नगर के राजा की पुत्री का सम्बन्ध गुणसेन से होता है। सम्बन्ध हुआ और पुत्री के पिता का स्वर्गवास होने के पश्चात् राजकुमार राजाधिराज बन गये। गुणसेन दो राज्य के अधिकारी बन गये। एक बार घूमते-घूमते आश्रम के नजदीक पहुँचे जहाँ आचार्य श्री अपने शिष्यों के साथ विराजमान थे। महाराज घूमने हेतु कई स्थानों पर गये पर जो शान्ति यहाँ मिली वह और कहीं नहीं मिली। आश्रम में प्रवेश के साथ मन में शान्ति आई। आचार्य कौडिन्य ने कहा-महाराज! यह मेरा नहीं सब श्रमण तपस्वियों की क्षमाशूरता का, समता का प्रभाव है। आदमी तो क्या जानवर भी आ जाय तो उसके मन में भी शान्ति आती है।

तीर्थঙ्कर भगवन्तों के अतिशय पुण्य से जन्मजात वैरी अपना वैर भूल जाते हैं। आचार्य ने राजा को एक-एक श्रमण से परिचय कराया अन्त में

अग्निशर्मा का परिचय देते हुए कहा- ‘ये हमारे यहाँ सर्वश्रेष्ठ साधक हैं।’ मुनि अग्निशर्मा के चेहरे पर महाराज गुणसेन की नजर गई तो पहचान लिया- ‘हो न हो यह मेरे हास्य के द्वारा परेशान किए जाने से साधु बना है। मेरे कारण इसे गाँव-नगर छोड़कर संन्यास स्वीकार करना पड़ा। महाराजा ने सश्रद्धा नमस्कार किया।’

संत ने जवाब दिया-राजन्! यह तो तुम्हारा ही पुण्य प्रताप है कि मुझे आज यह जीवन मिला है। शायद आपकी सन्निधि प्राप्त नहीं होती तो मुझे यह अवसर नहीं मिलता।

महापुरुषों के जीवन की यह खूबी है, वे अवगुण को गुण में बदल कर बताते हैं। कहाँ मैं इन्हें गधे पर बैठाकर घुमाने वाला और कहाँ ये.....।

निमित्त अच्छा होता है, निमित्त बुरा भी होता है, पर बुरे निमित्त को अच्छे निमित्त में बदलने वाले भी हैं।

महाराज ने प्रार्थना की-आपका इस बार का पारणक मेरे यहाँ हो। मुनि ने कहा- “अभी पाँच दिन बाकी है। कल क्या होगा पता नहीं, पाँच दिन बाद की कैसे कही जाय।” राजा ने कहा- “मेरी प्रार्थना ध्यान में रखी जाय।”

संन्यासी के मन में आया, शायद महाराज बदल गए हैं, इसलिए इनकी प्रकृति-प्रवृत्ति में अन्तर है। अतः श्रद्धा के साथ प्रार्थना रख रहे हैं तो एक बार जाना चाहिये।

मुनि पाँच दिन बाद पारणक के दिन राजमहल की ओर बढ़े। पर संयोग था महाराज को सिर-शूल की बीमारी हुई, रात भर नींद नहीं आई। प्रातःकाल औषध-उपचार के बाद निद्रा आई। वैद्य ने मना कर दिया कि इन्हें नहीं जगावें।

बाहर संन्यासी अग्निशर्मा पहुँचा। द्वारपाल से कहा- ‘जाकर कहो, संन्यासी बाहर खड़ा है।’ द्वारपाल ने कहा- ‘महाराज, अभी कोई आयेगा तब

सूचना भेज दूँगा।’ इतने में एक दासी आई। द्वारपाल ने सूचना देने को कहा कि एक संन्यासी बाहर खड़े हैं, भीतर आना चाहते हैं। दासी भीतर गई। उससे राजमहल की परिचारिका ने कहा- ‘इस समय महाराज किसी से नहीं मिल सकते।’ बाहर खड़े संन्यासी को किसी से नहीं मिल सकने की बात कहने पर संन्यासी लौट तो गया, पर उसका मस्तिष्क भी चल रहा है और पैर भी चल रहे हैं। बहम पहले से बैठा हुआ था। प्रार्थना करने से स्वीकार तो कर लिया, पर चिन्तन चला-कहीं ऐसा तो नहीं कि यह राजा की चाल हो।

संन्यासी लौटता जा रहा था, चिन्तन करता जा रहा था। स्थान पर पहुँचा, गुरु से निवेदन किया कि मुझे अगला मासक्षण्ण तप करा दें। आचार्य ने तप करा दिया।

उधर महाराज जगे। पूछा-संन्यासी आया क्या ? हाँ, आप उस समय निद्रा में थे आपको जगाना नहीं था।

महाराज सब काम छोड़कर सीधे आश्रम पहुँचे। कहा- ‘गजब हो गया। एक महीने के तपस्वी को मैंने आहार दिए बिना जाने दिया। यह मेरी भूल रही मैंने द्वारपाल को सूचित नहीं किया। मुझे द्वारपाल से कहना चाहिये था कि संन्यासी को ससम्मान भिक्षा देकर लौटाया जाय।’ महाराज ने नमस्कार किया और अपने से हुई आशातना के लिए क्षमायाचना की। आप तपस्वी हैं, क्षमाशील हैं, मुझे क्षमा कीजिये।

तपस्वी को सारी स्थिति की जानकारी मिली। तब मन में आया कि शायद इसके मन में वैसी कोई बात नहीं है, इसलिए यह सरलता से क्षमायाचना कर रहा है और अगली बार के लिए प्रार्थना भी कर रहा है। अतः संन्यासी ने यथावसर ध्यान रखने की बात कह कर राजा को आश्वस्त किया।

महीने भर बाद जिस मुनि के मासक्षण्ण की पूर्ति होनी थी उसी दिन ससैन्य राजा चढ़ाई की तैयारी कर रहा था। इधर उस तपस्वी का उस वातावरण

में पारणक के लिए निकलना हुआ, लेकिन युद्ध के बातावरण में उसकी कोई सुनने वाला नहीं। कभी चोर चोरी करता है, किन्तु जब तक पकड़ा नहीं जाता साहूकारी में बदलने का प्रयास करता है। तपस्वी दूसरी बार खाली हाथ लौट आया। राजा फिर मुनि के पास पहुँचता है, युद्ध के प्रसंग को बताकर अपनी लाचारी व्यक्त करता है, क्षमायाचना करता है।

तीसरी बार पारणक का अवसर आया तब राजा के पुत्र का जन्मोत्सव था। संन्यासी दो बार की तरह इस बार भी खाली हाथ लौटता है। लौटते-लौटते उसके मन में एक धारणा बैठ गई कि यह वस्तुतः वही गुणसेन है जो मुझे मारना चाहता है। यह राजा मुझे मारेगा, मैं इसकी ऐसी हालत करूँगा कि जन्म-जन्म तक याद करेगा। कहावत सुनी है आपने-

अतिशय रगड़ करे जो कोई  
अनल प्रकट चन्दन से होई।

अगर किसी व्यक्ति को परेशान-हैरान किया जाता है, आपके मन में क्या, किसी भी छद्मस्थ के मन में इस तरह के भाव बन सकते हैं, भले ही आपने अब हँसी-मजाक छोड़ दिया है या फिर प्रकृति वैसा संयोग उपस्थित करती है तो लगता है-बाहर में साहूकार है, भीतर में गड़बड़ है। बाहर से भक्त है, भीतर में लोभी है।

तपस्वी के मन में बात बैठ गई या यूँ कहें प्रकृति ने बैठा दी। इधर भूख-प्यास की वेदना और अन्दर से बहम की वेदना। इसका निमित्त क्या? छोटी सी हँसी। आपकी भाषा में कहूँ तो- ‘म्हारे तो मन में किं कोनी, मैं तो मजाक करी।’

राजा आचार्य कौडिन्य को साथ लेकर तपस्वी के समक्ष उपस्थित होता है और तपस्वी के चरणों में अपना मुकुट रखता है, क्षमायाचना करता है।

मुनि अग्निशर्मा बोले- ‘भूल मेरी है, मेरे कर्मों की है। मैं इनकी भूल

मानता नहीं। मेरी तपस्या का फल होगा तो जब तक जीवन रहेगा मैं इन्हें दुःख दूँगा।’ इस प्रकार नौ जन्मों तक अग्निशर्मा कभी बेटा बनकर, कभी भाई बनकर, कभी माँ बनकर दुःख देता है।

आज लोग दुःख पाते हैं तब खयाल नहीं आता कि इस दुःख का निमित्त कौन है? अपने मन में धारणा बना लेना सहज है, किन्तु दुःख का वास्तविक कारण जानना कठिन है। आप जानते हैं यह दुःख किसी दूसरे का दिया हुआ नहीं, अपने आपसे हुआ है। नौ-नौ जन्म तक दुःख का निमित्त बना।

शास्त्र कह रहा है ज्ञान करो, किन्तु मानव! तुझे यह लगता है कि दिनभर ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहने से माथा हल्का हो जायेगा, लेकिन हल्का होगा या भारी होगा आप जरा चिन्तन करें। सच यह है कि ज्ञान से तनाव मिटता है।

अगर ज्ञानी बनना चाहते हो, अगर कषायों का शमन करना चाहते हो, चारित्र में चरण बढ़ाना चाहते हो तो जितेन्द्रिय बनो, गुण बढ़ाओ, दूसरों के अवगुण मत कहो, मत देखो। लोग कहते हैं- “महाराज! हम तो मनोरंजन कर रहे हैं, टाइम पास कर रहे हैं। परन्तु ये जो अनमोल घड़ियाँ हैं, क्षण-क्षण, पल-पल में बीती जा रही हैं। वापस आने वाली नहीं हैं अतः आप इन क्षणों का उपयोग करेंगे तो सुख.....शान्ति और आनन्द को प्राप्त करेंगे।

□☆□

## अपने को सुधारिए, राष्ट्र सुधर जाएगा

(अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक सम्मेलन, जयपुर में 23 अक्टूबर, 1993 को प्रदत्त यह प्रवचन आत्म-सुधार की प्रेरणा कर रहा है।)

कुछ लोग साधन सही लेकर चलते हैं, परन्तु गन्तव्य का निर्णय नहीं कर पाते। एक भाई पत्र लिखने बैठा, कागज रंगीन है, स्याही चमकीली है, अक्षर मोती की तरह सुन्दर हैं, भावना सुन्दर है, भाषा भी सुन्दर लिखी गई है किन्तु लिखना किसे है यह पता नहीं है। एक मुसाफिर पसीने से लथपथ होकर चल रहा है, एक गाड़ी से दूसरी गाड़ी बदल रहा है, पैसा खर्च कर रहा है, समय दे रहा है। किसी भाई ने पूछा जाना कहाँ है ? यह तो मुझे मालूम नहीं। ठीक उसी तरह कुछ लोग साधना करते चल रहे हैं, पर साधना किसलिये है, लक्ष्य निर्धारित नहीं है। माला भी चल रही है, स्वाध्याय भी चल रहा है, सामायिक भी चल रही है, तप की करणी भी कर रहा है, पर किसलिये ? नहीं कहा जा सकता।

### श्रावक सम्मेलन विवेक सम्मेलन है

साध्य भी चाहिये, साधना भी चाहिये। मैं इसी बात को सम्मेलन के विषय को जोड़ कर कहूँ तो आज श्रावक सम्मेलन है। श्रावक सम्मेलन एक प्रकार से श्रद्धा का सम्मेलन है, विवेक का सम्मेलन है। जीवन में सबसे पहली बात श्रद्धा है। जहाँ श्रद्धा है, वहाँ प्रेरणा की अपेक्षा नहीं है। व्यक्ति जो करना

चाहिए वह स्वयं करता है। जहाँ विश्वास है, वहाँ उसे कहने की जरूरत नहीं है। धन पर विश्वास है, बिना कहे दुकान पर जाता है, भोजन पर विश्वास है, बिना मनुहार के खाता है, शुद्धि पर विश्वास है, बिना कहे मैल उतारता है। इसी तरह जिसे आत्मा पर विश्वास है, अपने आप पर विश्वास है, उसके जीवन में न क्रिया की प्रेरणा की आवश्यकता है और न साधना के पथ पर आगे बढ़ने के लिये कहने की जरूरत है। वह स्वयं बिना कहे साधना के मार्ग पर चलेगा।

श्रद्धा दो तरह की है-विपरीत भी है और अनुकूल भी है। संसार-भ्रमण को बढ़ाने वाली सुखभोग की श्रद्धा विपरीत श्रद्धा है तथा मुक्ति की ओर ले जाने वाले धर्म एवं संघ पर श्रद्धा अनुकूल श्रद्धा है। इनमें से विपरीत श्रद्धा त्याज्य है। अनुकूल श्रद्धा ग्राह्य है। श्रद्धा के साथ विवेक होना आवश्यक है। विवेक सारे दोषों का हरण करने वाला है। अविवेकी के सम्बन्ध में नीतिकार कहते हैं-

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।  
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

### विवेकपूर्ण जीवन जीयें

जवानी दीवानी है, पैसा पाप की ओर जोड़ने वाला है, सत्ता जीवन का सत्त्व खत्म करने वाली है। एक जवानी ने कुपथ का रास्ता स्वीकार करा दिया, दीवाने बन गये और तब हजारों लाखों की हत्याएँ की गईं। अविवेक ने पाप का मार्ग खोल दिया है। पर नीति कहती है-जन्म पाया है तो जवानी आयेगी ही, पुण्य किया है तो पैसा मिलेगा ही और योग्यता है तो सत्ता और अधिकार भी पायेगा ही, परन्तु इन सबके साथ विवेक जुड़ा होना चाहिये। वह विवेक ही हमें तारने वाला है। जवानी रावण को ही नहीं, राम को भी आयी थी, पैसा मुम्मण को ही नहीं मिला, शालिभद्र को भी मिला था, सत्ता ब्रह्मदत्त

को ही नहीं मिली, भरत भी छह खंड के स्वामी थे, परन्तु इन्होंने विवेक रखा तो इनका जीवन ढूँबने के बजाय तिर गया।

श्रावक विवेक से चले, सद्क्रिया में चले, तो उसका आचरण बन्धन तोड़ने वाला होता है। विवेक का आधार ज्ञान का प्रकाश है। नीतिकार कहते हैं कि द्रव्यों का आधार आकाश है, जीवों का आधार धरती है, अधर्मों का आधार पाप है, तो धर्म का आधार दया है। इसी प्रकार नीति का एवं मानवता का आधार निर्व्यसनता है।

### व्यसनों से बचें

जहाँ निर्व्यसनता है वहाँ जीवन का आधार सही है। एक खराब व्यसन सम्पूर्ण जीवन को बरबाद कर देता है, इसलिये श्रावक जीवन में आप दुर्व्यसन हटाइये, फैशन घटाइये। एक व्यसन पाँचों पाण्डवों को जंगल में ले जाने वाला बन गया।

एक व्यसन सातों व्यसनों का जनक बन गया। अखाद्य का स्वाद आचरण को खराब करता है। अपेय का पान विचार में अपवित्रता लाता है। इन दो के बिंगड़ने पर पूरा जीवन बिंगड़ जाता है।

इसलिये यहाँ मिलने वाले सब श्रावक सर्वप्रथम अपने जीवन में एक-एक व्यसन की तिलांजलि करें। आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमल जी म.सा. निर्व्यसनी को श्रावक मानते थे। जैन-परम्परा में विशेषकर स्थानकवासी जैन परम्परा में सामायिक पर अधिक जोर दिया जाता है। घर-घर में सामायिक करने वाले मिलते हैं। भगवन्त ने कहा-सामायिक का धारक वह है, जिसके जीवन में व्यसन नहीं है।

“निर्व्यसनी हो प्रामाणिक हो, धोखा न किसी जन के संग हो।

शाश्वत सुख पाना चाहो तो, सामायिक साधना कर लो ॥”

जीव के विकास के जितने पथ हैं उनमें सबसे पहली बात है-

निर्व्यसनता हो। दूसरी बात अपने समान दूसरों को समझो। अगर आपने इस सामायिक से अपने समान दूसरों को समझ लिया तो सारे पाप घट जायेंगे, स्वतः छूट जायेंगे। आदमी हिंसा भी करता है तो परायों के साथ करता है। झूठ अपनों के साथ नहीं बोलता, परायों के साथ बोलता है। घर में चोरी नहीं करता है, अगर चोरी करके लाता भी है, तो घर में सच-सच बोलता है कि अमुक सामान वहाँ से चुरा कर लाया। जहाँ सामायिक अपने मन में आ गयी, वहाँ जीवन पवित्र और क्षमाशील बन जायेगा, फिर अपने पराए का भेद मिट जायेगा।

स्वाध्याय आचार सुधारने वाला है, सामायिक आचार सुधारने वाली है। जहाँ ये दोनों आ गये वहाँ क्रूरता का नाम नहीं रहेगा। दया की आवाज लगाना बन्द हो जाएगा। आज पाप प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं और उसका कारण है अपने समान दूसरों को नहीं समझना। मनुष्य को अपने लिए काँटा भी खारा लगता है, किन्तु दूसरों पर छुर्रियाँ चलाने में भी हिचक नहीं होती।

आप धर्म पर अपनी श्रद्धा बढ़ाइये, विवेक जागृत कीजिए। आत्म-विकास में आगे बढ़ाने में, श्रद्धा, विवेक और क्रिया सहायक होते हैं। जिसने यह सीख लिया उसने परमार्थ में और व्यवहार में, सबमें आगे बढ़ना सीख लिया।

### आत्मा का विकास करें

आत्मा का विकास जगत् का विकास है, अपने आपका विकास है। सबसे पहले अपने पर दया करो, आप हिंसा करेंगे तो दूसरा मिटेगा या नहीं, किन्तु आपके आत्म-गुण समाप्त हो जायेंगे। आप झूठ बोलेंगे तो दूसरे विश्वास करेंगे या नहीं, परन्तु अपने आप पर से विश्वास हट जायेगा। सबसे पहले अपने पर दया करो उसके बाद संसार पर दया करो। अपने पर दया करने वाला दुनिया पर भी दया करता ही है। चोरी झूठ आदि के आचरण से दूसरों

को नहीं हम स्वयं को धोखा देते हैं। इसके लिये आज के सम्मेलन में हम स्वयं निर्मल होने का संकल्प लें तो निर्मल हो जायेंगे। स्वयं पाप से हटें तो हम दुनिया में रहकर भी शान्ति और समाधि के साथ जीवन बिताने लगेंगे। फलतः दुनिया में भी शान्ति आएगी। आत्म-साधना एवं विश्वशान्ति की दृष्टि से आप श्रावक सम्मेलन कर रहे हैं तो इसे विवेक एवं क्रिया से जोड़ कर करें। इससे आप तो सुखी होंगे ही, किन्तु दूसरों को भी सुखी बनाने में निमित्त बनेंगे। यही धर्म का सार है। यही आत्म-उत्थान का आधार है कि आप स्वयं अपने आप की भी हिंसा नहीं करें और दूसरों की भी हिंसा न करें। जो करते हैं उन्हें अपने सदाचरण से एवं सदबुद्धि से बचाकर सन्मार्ग में लगाइये। भूखे को भोजन देना, शरीर रक्षण का कारण है। किन्तु नीचे गिरने वाले को नरक निगोद से निकालना उत्कृष्ट दया है।

संसार में रहकर मानव-जीवन को सार्थक बनाने हेतु ब्रती बनिये, धर्मी बनिये। धर्म सब्जी में नमक है, धर्म शरीर का प्राण है। अगर धर्म नहीं है, तो यह तन मुर्दा बन जायेगा, धर्म के बिना मानव जीवन में कोई स्वाद नहीं है, सार नहीं है। इस सम्मेलन में आत्म-विकास की ओर बढ़ने की प्रेरणा लेकर जितने आगे बढ़ोगे, संसार का विकास अपने आप होता जाएगा।

व्यक्ति-व्यक्ति से मिल कर समाज बनता है, समाज मिलकर राष्ट्र बनता है। व्यक्ति सुधर जायेगा, समाज सुधर जायेगा तो राष्ट्र सुधर जाएगा। फिर हिंसा का ताण्डव दूर होने में देर नहीं लगेगी। सर्वत्र शान्ति एवं प्रेम का वातावरण होगा।

□☆□

## क्यों करें रात्रि-भोजन का त्याग ?

(24 जुलाई, 1994 को नेहरू पार्क, जोधपुर में प्रदत्त यह प्रवचन रात्रि-भोजन त्याग की प्रेरणा करता है।)

### शरीर साधन है, साध्य नहीं

साध्य की सिद्धि के लिए साधन की आवश्यकता होती है। बिना साधन के साध्य सिद्ध नहीं होता। दर्जी चाहे कितना ही कुशल क्यों न हो, बिना सूई, कैंची एवं धागे के वस्त्र नहीं सिल सकता, चिकित्सक चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो, औजारों और साधनों की सहायता के बिना शल्यक्रिया नहीं कर सकता, कुम्भकार कितना ही कलावान् क्यों न हो, चाक, डण्डे और मिट्टी के बिना घट का निर्माण करने में समर्थ नहीं होता। साधना की सिद्धि में भी इसी प्रकार साधन का महत्व है।

हमारा प्रमुख साध्य तो मोक्ष है और उसकी प्राप्ति में साधन हैं- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। इन तीनों की आराधना में साधन बनता है मनुष्य का औदारिक शरीर। यह शरीर हमें मिला है, किन्तु इसके महत्व से हम अनभिज्ञ हैं। देवता भी इस शरीर को प्राप्त करने के लिए तरसते हैं, क्योंकि मनुष्य-शरीर को प्राप्त किए बिना रत्नत्रय की साधना संभव नहीं है। क्षायिक सम्यग्दर्शनी देव यह जानते हुए भी कि निर्जरा किस प्रकार होती

है, कर्म किस प्रकार करते हैं तथा मोक्ष कैसे प्राप्त होता है, वे मनुष्य-देह के अभाव में अप्रमत्ता और वीतराग की साधना में चारित्र के चरण नहीं बढ़ा सकते।

रत्नत्रय की आराधना में विशेषतः सम्यक्चारित्र में आरूढ़ होने के लिए मनुष्य का औदारिक शरीर भी एक साधन है। साधना की भावनाएँ मन की उमर्गें और निर्मल विचार होने पर भी बिना इस शरीर से साधना नहीं हो पाती। इसीलिए नीतिकार कहते हैं- “शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।” अर्थात् धर्म की साधना में सबसे पहला साधन शरीर है। यह ध्यान रहे कि शरीर साधन है, साध्य नहीं। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं जो साधनभूत इस शरीर को ही साध्य मान लेते हैं। नतीजा होता है कि वे पेट को पेटी की तरह इस्तेमाल करते हैं। कब खाना, क्या खाना, क्यों खाना और कैसे खाना आदि का विचार किए बिना ही वे शरीर में कचरा एकत्रित करते रहते हैं, जिससे शरीर में साधना की क्षमता ही नष्टप्रायः हो जाती है और शरीर विभिन्न व्याधियों का पिटारा बन जाता है।

### त्रिविध मनुष्य

भोजन ग्रहण करने की दृष्टि से विचार करें तो हमें तीन प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं-एक खाने के लिए जीते हैं, दूसरे जीने के लिए खाते हैं तथा तीसरा वर्ग साधकों का है, जो संयम यात्रा का निर्वाह करने के लिए आहार लेते हैं।

#### (1) खाने के लिए जीने वाले

जो खाने के लिए जीते हैं वे खाद्य-अखाद्य, पेय-अपेय, समय-असमय आदि का विचार नहीं करके अपनी तो हानि करते ही हैं, किन्तु अनन्त जीवों की हिंसा के दोष से भी वे नहीं बच पाते। जिनका लक्ष्य खाना

है, वे सोचते हैं-मानव जीवन में आए हैं तो सब तरह के पदार्थों का सेवन कर लेना चाहिए, फिर न जाने यह नरतन कब प्राप्त हो। किन्तु उनका यह चिन्तन उन्हें किस पतन की ओर धकेल रहा है, इससे वे अनभिज्ञ बने रहते हैं। यह अज्ञान एवं मिथ्यात्व की दशा है। ऐसी दृष्टि वाले लोगों के लिए एक पुरानी कहावत है-‘मूर्ख का मरण दो तरह से होता है, या तो खाय मरे या उठाय मरे।’ ये लोग स्वाद के वशीभूत होकर भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक न रखते हुए मद्य-मांस जैसे अभक्ष्य एवं असेवनीय पदार्थों का सेवन करते हुए भी नहीं हिचकते हैं और अपनी क्षणभर की स्वादलोलुपता के लिए हजारों-लाखों प्राणियों की अकाल मृत्यु में निमित्त बन जाते हैं।

खाने के लिए जीने वाले रसना के अधीन होते हैं। उन्हें कब खाना और क्या खाना इसका भी बोध नहीं होता। नीतिशास्त्र कहते हैं कि जब कभी खाने का अवसर आता है तो जानवर भी सूँघ कर खाता है। गधा जैसा मूढ़ जानवर भी मुँह डालने से पहले भोजन को सूँधता है। अगर कभी उसके आहार में तम्बाखू का अंश आ जाय तो वह मुँह फेर लेता है। ऊँट एवं बकरी के लिए भी कहावत है-“ऊँट छोड़े आँकड़ो, बकरी छोड़े काँकरो।” ऊँट कंटीली झाड़ियाँ खा लेता है, बाँवलिया खा लेता है, कड़वी पत्तियाँ खा लेता है, किन्तु आँकड़े (आकवृक्ष) के पत्ते आते ही मुँह फेर लेता है। बकरी जमीन पर पड़ी पत्तियाँ खा जाती है, किन्तु कंकर नहीं खाती है। जानवर भी भक्ष्य-अभक्ष्य में भेद करना जानते हैं, किन्तु यह बुद्धिशील मनुष्य इसका विचार नहीं करता। वह ऐसे होटलों और रेस्टोरेण्टों में जाता है जहाँ उसे खाने को मांस और अण्डे मिलें, पीने को मदिरा मिले और भोगने को भोग मिलें। धिक्कार है उसकी बुद्धिशीलता को। उससे तो एक कबूतर अच्छा है। कबूतर कंकर भले ही खा लेता है, किन्तु किसी जीव को हानि नहीं पहुँचाता। वह शुद्ध शाकाहारी

है। उसके लिए कहा गया है-काल हो, दुष्काल हो, अन्न की दुर्लभता हो, कबूतर दाना नहीं मिलने पर कंकर खा जाता है, किन्तु सुले हुए (त्रस जीव युक्त) अनाज के दाने को नहीं चुगता है। कहने का आशय है कि पशु-पक्षी भी खाद्य-अखाद्य का भेद करके चलते हैं, किन्तु खाने के लिए जीने वाला मनुष्य इसका विचार करके नहीं चलता।

जो खाद्य-अखाद्य का भेद करना जानते हैं उनमें बहुत से ऐसे हैं, जिन्हें यह ज्ञान नहीं है कि उन्हें कितनी मात्रा में खाना चाहिए। वैद्यों एवं डॉक्टरों के द्वारा चेताये जाने पर भी वे अपनी आदतों को नहीं बदलते हैं। एक समय में चार-चार सेर चूँथिये (बेसन) की चक्की खाने वालों के उदाहरण ध्यान में हैं।

## (2) जीने के लिए खाने वाले

दूसरे प्रकार के मनुष्य जीने के लिए खाते हैं। ये आहार-विज्ञान का थोड़ा खयाल रखकर चलते हैं। अपनी प्रकृति के अनुकूल आहार करते हैं। अगर वह पित्त प्रकृति का है तो उसके अनुसार, अगर वह वात प्रकृति का है तो उसके अनुसार तथा अगर वह कफ प्रकृति का है तो उसके अनुसार आहार ग्रहण करता है। पेट में अल्सर हो गया है तो पेय पदार्थ ज्यादा लेता है तथा ठोस पदार्थ कम। कब्ज होने पर कब्जनाशक आहार लेता है, दस्त लगने पर उसे रोकने का उपाय सोचता है। तेल, मिर्च, मसाले के अधिक उपयोग से भी बचता है। उसे यह भी विवेक रहता है कि खाद्य क्या है, अखाद्य क्या है, कब खाना चाहिए और कब नहीं खाना चाहिए, कितना खाना चाहिए और कितना नहीं खाना चाहिए? इन सबका विवेक रखकर चलने वाले ये लोग खाने के लिए जीने वालों की अपेक्षा स्वास्थ्य के उपयुक्त लक्ष्य वाले हैं। इनका जीवन उतना असंतुलित नहीं होता जितना खाने के लिए जीने वालों का होता है। व्याधियों से भी ये अपेक्षाकृत कम घिरे रहते हैं।

### (3) संयम-निर्वाह के लिए खाने वाले

साधकों के लिए भी भोजन जरूरी है। क्योंकि साधना में शरीर सहायक है तो शरीर को साधना योग्य रखने के लिए आहार भी आवश्यक है। सच्चे साधक संयम-निर्वाह के लिए आहार ग्रहण करते हैं, जीने के लिए अथवा स्वादलोलुप्ता के लिए नहीं। प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा गया है- ‘तहा भोत्तव्वं जहा से जाया य भवइ।’ अर्थात् उतना एवं वैसा आहार ग्रहण करो, जिससे तुम्हारी संयम यात्रा का निर्वहन हो सके। तुम्हारी साधना में आहार के कारण कोई विघ्न उत्पन्न न हो, प्रमाद नहीं आवे और विकार भी उत्पन्न न हों। स्वाद के लिए भोज्य पदार्थों का सेवन करने की साधक को अनुज्ञा नहीं दी गई, ‘रसद्वयाए न भुंजिज्जा।’ रस के लिए मत खाओ। ‘जवणद्वयाए भुंजिज्जा’- संयम-यात्रा का निर्वाह करने के लिए खाओ।

साधना करने वाले गृहस्थ साधक के लिए भी आहार करते समय तीन बातें ध्यान में रखने की हैं। वह 1. स्वास्थ्य की दृष्टि से, 2. साधना की दृष्टि से और 3. विकृति उत्पन्न करने वाला न हो, इसको खयाल में रखकर आहार ग्रहण करे। जो साधक इन तीन बातों को ध्यान में रखकर आहार लेते हैं वे विवेक दृष्टि वाले कहे जाते हैं।

साधक-जीवन में सात्त्विक आहार हो, क्योंकि आहार के साथ मन का गहरा सम्बन्ध है। ‘जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन’ यह प्रसिद्ध उक्ति इस बात का संकेत करती है कि साधक को अपना चित्त निर्मल बनाना है तो आहार का चयन सही करना जरूरी है।

#### आहार के तीन प्रकार

गीता में श्रीकृष्ण ने आहार के तीन प्रकार बताए हैं-तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। तमस अर्थात् रात्रि में निष्पन्न या रात्रि में भक्ष्यमाण अथवा आलस्य, प्रमाद एवं जड़ता को पैदा करने वाला भोजन तामसिक भोजन है।

राजसिक भोजन सरस होता है। इससे क्रियाशीलता तो बढ़ती है, किन्तु चित्त विकृत रहता है। इस भोजन का स्वभाव है विकार पैदा करना। जड़ता और विकार से दूर रहने वाले साधक को सात्त्विक भोजन लेना चाहिए। जिस भोजन को ग्रहण करने से मन में विकार उत्पन्न न हों, चित्त में समाधि रहे तथा संयमयात्रा का निर्वाह भली प्रकार से हो वह सात्त्विक भोजन है। साधक की साधना सात्त्विक भोजन से बाधित नहीं होती। उसे तामसी एवं राजसी भोजन छोड़कर सात्त्विक भोजन लेना चाहिए।

### भोजन लें, पर रात में नहीं

भोजन जरूरी है। शरीरधारी व्यक्ति बिना भोजन के दीर्घकाल तक जीवन नहीं चला सकता। दीया तभी तक जलता है जब तक भीतर में तेल है। खेत में वही अंकुर पल्लवित एवं पुष्पित होता है जिसे जल का सिंचन मिलता है। इसी प्रकार शरीर तभी तक चलता है जब तक उसको आहार मिल रहा है। आहार आवश्यक है, फिर भी हमें यह खयाल रखना पड़ता है कि हम किस प्रकार का आहार ग्रहण करें। अखाद्य एवं अपेय वस्तुओं के सेवन से बचें। तामसी और राजसी आहारों को छोड़कर सात्त्विक आहार लें।

यह सब जान लेने के पश्चात् भी यह जानना जरूरी है कि हम आहार कब करें ? प्रायः यह कहा जाता है कि जब भूख लगे तब खाओ, बिना भूख के मत खाओ। किन्तु आहार का समय क्या हो ? यह चिन्तन का विषय है। कोई रात को दो बजे भी उठकर भोजन कर रहा है तो क्या आहार-विज्ञान इसे स्वीकार करेगा ? नहीं। आहार करने का काल रात में नहीं दिन में होता है। स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से भी दिन में ग्रहण किए गए भोजन का ही महत्व है। खाने एवं सोने के बीच चार घण्टे का अन्तराल स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। जो ऐसा नहीं करते वे कब्ज, अपच एवं गैस की बीमारी से धिरे रहते हैं। इसके साथ ही बड़े-बड़े रोग भी उन्हें धेर लेते हैं। रात में भोजन करने में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह व्रतों का पालन ठीक से नहीं हो सकता।

साधना-शील व्यक्ति को तो इसलिए रात में भोजन छोड़ना जरूरी है ही, किन्तु जो जीने के लिए खाता है उसे भी स्वास्थ्य की दृष्टि से रात का भोजन हानिकारक है। जो जीना चाहता है उसे बीमारी से बचने के लिए रात्रि-भोजन छोड़ना अत्यन्त जरूरी है। मैं यह कहूँ कि जो खाने के लिए जीता है, वह भी खाने का कार्य तब जारी रख सकता है, जब वह दीर्घकाल तक जीए। इसलिए खाने के लिए जीने वाले को भी आखिर जीना तो है ही। इसलिए मानव चाहे साधनाशील हो, चाहे जीने के लिए खाने वाला हो, चाहे खाने के लिए जीने वाला हो, किसी के लिए भी रात को भोजन करना लाभकारी नहीं है।

रात को भोजन न करने वाले का मनोबल एवं आत्मबल बढ़ता है, पैसा बचता है और साथ ही अनेक रोगों से वह छुटकारा पा लेता है।

### रात्रि भोजन से नरक

हमारे यहाँ नरक में जाने के चार कारण कहे गए हैं-महारथ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय की घात करना और मद्यमांस का सेवन। महाभारत के शांतिपर्व में नरक में जाने के चार कारण बतलाए गए हैं, जिनमें एक रात्रि-भोजन भी है। वे चार कारण हैं-

चत्वारि नरकद्वारं, प्रथमं रात्रिभोजनं।

परस्त्रीगमनं चैव, सन्धानानन्तकायिकं॥

-महाभारत, शांतिपर्व

नरक में जाने के चार द्वार हैं। उनमें पहला रात्रि भोजन है। दूसरा परस्त्रीगमन है, तीसरा सन्धान अर्थात् अचार आदि का सेवन है और चौथा अनन्तकायिक जीवों का सेवन करना है। नरक में जाने के इन चार द्वारों में रात्रि-भोजन पहले क्रम पर है। रामायण में भी इसकी पुष्टि में एक उक्ति मिलती है। जब महारानी मनोरमा को लक्ष्मण जंगल में छोड़कर जाते हैं तो कहा जाता है-अयोध्या में साथ लेकर नहीं जाओ तो आपको रात्रि-भोजन

का पाप लगेगा। इससे ज्ञात होता है कि रात्रि-भोजन को एक बड़ा पाप माना गया है।

### ओसवालों के तीन नियम

पूज्य रत्नप्रभसूरि ने जब ओसियाँ में क्षत्रियों को ओसवाल बनाया तो उन्हें तीन प्रमुख प्रतिज्ञाएँ करवायीं। उनमें एक प्रतिज्ञा थी कि ओसवाल मद्य-मांस का आहार नहीं करेंगे, दूसरी थी कि वे नवकार मंत्र पर श्रद्धा रखेंगे और तीसरी तथा महत्वपूर्ण प्रतिज्ञा थी कि वे रात्रि में भोजन नहीं करेंगे। आज आप उन प्रतिज्ञाओं अथवा नियमों को भूल गए हैं। मद्य-मांस का सेवन करने वाले आज भी कम होंगे, किन्तु रात्रि में खाने वालों की बहुलता है। आप अधिकाँश भोज रात्रि में करते हैं।

आप अपने आपको पहचानिए। आप कौन हैं? क्या आपके कोई प्रतिज्ञा हैं? क्या आपकी कोई पहचान है? जिसे देखकर समझा जा सके, कि आप जैन हैं। रात में न खाना जैनों की मोटी पहचान है। रेलयात्रा में भी यदि आप सायंकाल जल्दी भोजन करना आरम्भ करते हैं, तो लोग स्वतः पूछेंगे, क्या आप जैन हैं? जैनों की इस पहचान को आप खो रहे हैं, यह चिन्ता की बात है। आज भी कई जातियाँ हैं, जो रात्रि-भोजन नहीं करती। जो किसानी का धंधा करने वाले हैं वे सुबह भाता (भोजन) लेकर खेतों पर जाते हैं, रात को नहीं खाते। किसान लोग कहते हैं-महाराज! जब से कंठी धारण की है, रात में नहीं खाया।

### क्या रात में खाने वाले को जैन कहना ?

आचार्य भगवन्त (स्व. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) सं. 2027 और संवत् 2029 में पल्लीवाल क्षेत्र में पधारे। भगवन्त दूसरे गाँव में विराज रहे थे और पं. छोटे लक्ष्मीचंद जी म.सा. के साथ मैं किसी दूसरे गाँव में था। पं. लक्ष्मीचंद जी महाराज ने विशेष नियम दिलाते हुए फरमाया-आज रात्रि

को भोजन नहीं करना। एक भाई ने पूछा-महाराज ! क्या जैन भी रात में खाते हैं ? अगर कोई रात्रि में खाता है तो उसे जैन कहना क्या ? आज भी पोरवाल और पल्लीवाल समाज के अधिकाँश लोग दिन में ही भोजन करते हैं। उनके यहाँ किसी भोज का आयोजन भी दिन में होता है, रात्रि में नहीं।

जैन घरानों में सामान्य रूप से रात्रि में भोजन नहीं होता था, पर देखा-देखी आपने इसे शुरू कर दिया। कर्नाटक में एक पुलिस अधीक्षक गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुए। बातचीत में उन्होंने बताया- ‘महाराज ! हमारे घर में बड़े ही नहीं बच्चे भी रात को नहीं खाते हैं। छोटे बच्चों को रात्रि में दुर्धपान भी नहीं कराया जाता है। हमारे ये संस्कार हमें बचपन से अपने जैन घर में मिले हैं।

### **रात्रि-भोजन पर प्रहार**

पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने रात्रि-भोजन पर बहुत तीखे प्रहार किए हैं-

**आँधो जीमण रात रो, करे अधर्मी जीव ।**

**ओछा जीतण काणे, देवे नरक में नींव ॥**

रात्रि में भोजन करने वाले को, जूँ है या जीरा, राई है या लाल चींटी नजर का चश्मा चढ़ाकर देखने पर भी दिखाई नहीं पड़ता। वर्षा के मौसम में दिन के उजाले में जहाँ देखना कठिन होता है, वहाँ रात में दिखाई पड़ना और भी कठिन है। इस प्रकार रात्रि के अन्धकार में भोजन करने का काम अधर्मी जीव करते हैं, यह धर्मियों का काम नहीं है।

पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्र जी म.सा. ने रात्रि-भोजन के त्याग का उदाहरण देते हुए कहा-

**चिड़ी कमेड़ी कागला, रात चुगण नहीं जाय ।**

**नरदेहधारी मानवा, तू रात पड़याँ किम खाय ॥**

भाई ! जिनके पास संग्रह नहीं है, चार दाने भी कल के लिए जो नहीं

रख पाते, ऐसे पशु और पक्षी भी रात पड़ने पर नहीं खाते हैं। चिड़ी, कबूतर आदि पक्षियों के पास कुछ न होने पर भी वे रात में नहीं खाते हैं। दिन में भी वे ढेर सारे अनाज में से भी जितना चोंच में आता है उतना लेकर उड़ जाते हैं। बच्चों को खिलाने की जरूरत होने पर भी इसी प्रकार चोंच भरने के बाद घोंसले में पहुँच जाते हैं। आपके यहाँ कई-कई दिनों का नहीं, महीनों और वर्षों के लिए संग्रह है फिर भी आप रात में खाते हैं। क्या यह आश्चर्य नहीं ? क्या यह लज्जा की बात नहीं ?

माधवमुनि ने रात में खाने वाले को निशाचर बतलाया है। रामायण के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए उन्होंने कहा-

रात को फिरे और खावे, मनुज वह निशिचर कहलावे ।

निशाचर रावण के भाई, नहीं रघुवर के अनुयायी ॥

चर धातु के दो अर्थ हैं-चलना और खाना। जो रात को चले और रात में खाए वे निशिचर मतलब राक्षस कहलाते हैं। जो राक्षस हैं, वे रावण के भाई हैं, वे राम के अनुयायी नहीं होते।

आप दिन में खा सकने की स्थिति वाले हैं, फिर क्यों रात में खाते हैं ? आजकल दिन बढ़े और रातें छोटी होती हैं। वर्तमान में करीब साढ़े तेरह घण्टे का दिन होता है और रात लगभग साढ़े दस घण्टे की। फिर भी दिन में खाने की फुर्सत नहीं ?

### रात्रि-भोजन का त्याग क्यों ?

रात्रि में भोजन करना न स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से अच्छा है और न ही धार्मिक दृष्टि से। इससे शरीर भी बिगड़ता है, पैसा भी बिगड़ता है और अनेक जीवों की विराधना का दोष भी लगता है।

**(1) स्वास्थ्य की दृष्टि से-**रात्रि में भोजन करना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। आरोग्य शास्त्री कहते हैं कि भोजन और शयन के बीच में

कम से कम तीन घण्टों का अन्तर होना चाहिए। तभी भोजन पचता है और पेट सम्बन्धी विकारों की गति मन्द पड़ती है। भोजन करते ही सो जाने पर अथवा पर्याप्त अन्तराल न मिलने पर विकृतियाँ बढ़ने के साथ शरीर का स्वास्थ्य भी बिंगड़ जाता है। फिर हम वैद्यों, डॉक्टरों, अस्पतालों एवं दवाइयों की दुकानों पर चक्कर काटते रहते हैं। यही नहीं रात के भोजन में कीड़े-मकोड़े या जूँ जैसा प्राणी भी खाने में आ सकता है। जिससे जलोदर जैसा भयानक रोग हो सकता है। कभी-कभी तो रात में भोजन खाने वालों का सवेरे तक जीवन नहीं बच पाता है, क्योंकि रात के भोजन में किसी जीव का जहर मिल जाता है। दूध में छिपकली गिर जाने और बिना जाँच किए उसे पी लेने से भी जीवन संकट में पड़ जाता है।

**(2) धार्मिक दृष्टि से-**जैन शास्त्रों में ही नहीं अन्यान्य ग्रन्थों में भी कहा गया है कि जो रात्रि में नहीं खाता उसके जीवन का आधा भाग एक प्रकार से तप में गुजरता है। ऐसे लोग वर्ष में छह मास तपस्या करते हैं। धर्म की दृष्टि से नवकारसी से लगाकर मास-खमण आदि तक जितने भी प्रत्याख्यान हैं वे रात्रि-भोजन के त्याग से आरम्भ माने गए हैं। नवकारसी तप उसी का है जो रात्रि-भोजन का त्यागी है। शास्त्रों में नवकारसी तप को नरक के बंधन तोड़ने वाला माना गया है। राजा श्रेणिक को नरक का बंध तोड़ने का उपाय महावीर ने नवकारसी तप बताया, किन्तु वह उसे भी न कर सका।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाब्रत तथा अणुब्रतों का पालन तभी हो सकता है जब रात्रि-भोजन का त्याग हो। रात्रि-भोजन करने वाला ब्रह्मचर्य की उतनी रक्षा नहीं कर सकता, जितनी रात्रि-भोजन का त्यागी कर सकता है। यही बात अन्य व्रतों के बारे में भी है। धर्म-साधना एवं व्रतों का पालन करने में रात्रि-भोजन का त्याग एक अनिवार्य कर्तव्य है।

रात्रि-भोजन में अनन्त जीवों की विराधना होती है। रात्रि में भोजन

करने वाले अकारण ही अनन्त जीवों की अकाल मृत्यु के निमित्त बनते हैं। हिंसा के इस घमासान से बचने की जरूरत है। जीवों पर करुणाशील होकर उनकी विराधना से बचने की जरूरत है।

**(3) वैज्ञानिक दृष्टि से-**वैज्ञानिक दृष्टि से भी रात में खाना नुकसानकारक है। दिन में सूर्य की धूप से निकलने वाली अल्ट्रावायलेट किरणों के कारण जहाँ अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न होकर संचरण नहीं कर पाते, वहाँ रात्रि में उनकी उत्पत्ति एवं संचरण का आधिक्य हो जाता है। इतने अधिक सूक्ष्म जीव भी होते हैं जिन्हें तीक्ष्णदृष्टि वाला व्यक्ति भी नहीं देख सकता। दूसरी बात यह है कि दिन में सूर्य की धूप से पाचन-क्रिया जितनी आसान होती है, उतनी अन्धकार में नहीं। एक वैज्ञानिक तथ्य यह भी है कि दिन में पेड़-पौधे जहाँ ऑक्सीजन छोड़ते हैं, वहाँ वे रात्रि में कार्बनडाइऑक्साइड छोड़ते हैं और हमारे पाचनतन्त्र एवं स्वास्थ्य के लिए ऑक्सीजन का बड़ा महत्व है।

आप किसी भी दृष्टि से रात्रि-भोजन छोड़कर चलेंगे तो शरीर से स्वस्थ रह सकेंगे, विराधना से बच सकेंगे और रत्नत्रय की आराधना में आगे बढ़ सकेंगे।

□☆□

## **संस्कारित नारी से समाज को दिशा**

(24 सितम्बर, 1994 को जोधपुर में अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल के वार्षिक अधिवेशन के पूर्व प्रवचन-सभा में दिए गए इस व्याख्यान में नारी के संस्कारित होने पर बल प्रदान किया गया है।)

भारतीय संस्कृति में नारी को महान् कहा गया है। प्रत्येक क्षेत्र में नारी का गौरवपूर्ण स्थान रहा है तथा उसे आदर एवं सम्मान दिया गया है। मैं आज ऐसे दिन नारी का वर्णन करने जा रहा हूँ जब नारीरत्नों का सम्मेलन होने जा रहा है।

### **नारी के संस्कार : राष्ट्र निर्माण के आधार**

नीति स्पष्ट कहती है कि पुरुष को संस्कार देने से भी अधिक महत्वशाली नारियों को संस्कार देना है। पुरुष संस्कारित होगा तो वह एक घर को चमकाएगा और यदि नारी संस्कारित होगी तो वह दो कुलों को उजागर करेगी। आदमी संस्कारित होगा तो वह अपना निर्माण करेगा और नारी संस्कारित होगी तो घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र का निर्माण होगा।

### **विविधरूपा नारी**

सच्चरित्र से युक्त नीतिमती नारी बन्दनीय रही है। साहित्य में तो यहाँ तक मिलता है कि नारी बर्फ-सी शीतल है और अग्नि-सी उष्ण है। नारी

दाख-सी कोमल है तो वज्र-सी कठोर है। नारी सागर-सी गंभीर है तो पर्वत सी ऊँचाई वाली है। वह वात्सल्य की मूर्ति है, स्नेह का आगार है। जब उसमें प्रेम उमड़ता है तो वातावरण प्रेमिल हो उठता है। वह परिवार एवं समाज में स्नेह-सदृश्वाभ भी भरती है तो कठोर बनते समय काल-सी क्रूर भी बन जाती है। दयालुता की दृष्टि से वह लक्ष्मी की जैसी है तो प्रचण्डरूप धारण करने पर चण्डी भी है। समस्याएँ उत्पन्न होने पर नारी उनका सरस्वती-सा समाधान भी करती है तो जहाँ समर्पण करती है वहाँ सर्वस्व अर्पण कर देती है। नारी के विविध रूप देखने को मिलते हैं। इसलिए उसके बारे में ‘इदम् इत्थम्’ यह ऐसी ही है, कह पाना कठिन है।

### पूज्या नारी

नारी के सम्बन्ध में मनुस्मृति में कहा गया है- ‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः’ जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ सुख-सौभाग्य के देव रमण करते हैं। ‘नारी’ शब्द ही ऐसा बना है कि जिसका कोई शत्रु नहीं हो, वह नारी है-

### नास्ति अरिः यस्याः सा नारी ।

जिस नारी के जीवन में करुणा है, वात्सल्य है, कर्तव्य परायणता है, करुणा और आत्मीयता है उसका कोई शत्रु नहीं है। नारी धरती के समान धैर्यशालिनी है।

### मातृरूपा नारी

नारी माता रूपा है। तीर्थঙ्कर कहिए, गणधर कहिए, सत्यवादी कहिए, शीलवान् कहिए, दयालु कहिए, नीतिमान् कहिए, बुद्धिमान् कहिए, सबको जन्म देने वाली नारी है। उसका यह मातृत्वरूप पूज्य है। इसने ऐसे-ऐसे लालों को जन्म दिया है जिन्होंने संसार में नीति, धर्म और चारित्र का निर्माण किया।

कहा तो जाता है- ‘खन्तिसूरा अरिहंता।’ क्षमा करने में अरिहन्त भगवन्त के समान कोई दूसरा नहीं। सहनशीलता में साधक-सन्तों की गणना होती है, किन्तु नारी के मातृत्व रूप की क्षमाशीलता एवं सहनशीलता भी कम नहीं। आप (पुरुष) किसी नौकर को आज्ञा दो और वह नहीं माने तो आपका चेहरा दूसरी बार कहने के साथ बदल जाएगा। घर पर किसी को काम के लिए कहें और वह न करे तो शायद दूसरी-तीसरी बार कहने का मन नहीं करेगा और आप सोचेंगे कि काम करवाने की बजाय खुद कर लेना अच्छा है। किन्तु जननी को देखिए इसने बच्चे को ठुमक-ठुमक कर चलना सिखाया, स्वयं उसके साथ चली। पचासों बार बच्चे के साथ बोलकर एक-एक शब्द का उच्चारण सिखाया। बिठाने में सैकड़ों बार सहारा दिया। अँगुली पकड़ कर खड़ा किया। कितनी ही बार कष्ट में रही, किन्तु बच्चे को सुख दिया। स्वयं गीले बिस्तरों में सोई और बालक को सूखे में सुलाया। लेकिन माँ के मन में कभी रोष नहीं आया। कहलाने में तो आप पिता कहलाते हैं, आपका दर्जा माता से ऊपर गिना जाता है, किन्तु बच्चे को संस्कार देने का अवसर आए तो आप दूसरी-तीसरी बार में थक जायेंगे, हैरान-परेशान हो उठेंगे। यह है वात्सल्यमयी माता की सहनशीलता का आदर्श।

### देवीरूपा नारी

नारी मातृरूप में पूज्य है तो देवीरूप में आदरणीय। ऐसी कोई विद्या, कला या साधना नहीं, जिसमें देवियों को स्मरण नहीं किया जाता। धन चाहिए तो लक्ष्मी को, ज्ञान चाहिए तो सरस्वती को, शौर्य चाहिए तो काली-दुर्गा को याद करते हैं। आचार्य भगवन्त (श्री हस्तीमल जी म.सा.) फरमाया करते थे-नारी अगर सती साध्वी है तो वन्दनीया है, पूज्या है। वह अगर पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकती, वन्ध्या है, किन्तु पतिव्रता है तो भी वह सती-साध्वी की तरह ही पूज्या है। अपने पतिव्रत धर्म के सहारे, ब्रह्मचर्य के सहारे, शीलवती

नारी ने धरती का धर्म बदला है। शेर जैसा खूंखार जानवर उसके समक्ष कुत्ते की तरह पूँछ हिलाकर निकला है। गले में पड़ा साँप फूलमाला बना है। इसके स्पर्श से अग्नि की ज्वाला शांत हुई है, शील की शक्ति से कच्चे सूत की साँकल बनी है, सौ छेद वाली चलनी से पानी नहीं निकला है। नारी पुत्रवती है तो भी पूज्या है। उसके मातृभाव में पूज्यता है।

### गुरुरूपा नारी

आपने गार्गी, मैत्री, मदालसा आदि नारियों की बातें सुनी होंगी, जिन्होंने ब्रह्मज्ञान वाले संतों को तर्क और विद्या के आधार से प्रभावित किया तथा सैंकड़ों पतनमार्गियों को ऊँचा उठाने का प्रयास किया। आदमी पथ भूल जाता है, पर नारी ने मर्यादा का पथ कायम रखा है। रथनेमि पथ भूल गया, पर राजुल के सुभाषित एवं प्रेरणादायी वाक्यों से सुधर गया। रथिक पथ भटक गया, पर चंदना ने उसे भी सद्बुद्धि देने का अनुपम श्रेय लिया। महासती मदनरेखा के माध्यम से विद्याधर मणिप्रभ सही पथ पर आ गया।

आज महिला रत्नों का सम्मेलन है। आप महिलाएँ धर्म पर कायम रहें तो समाज में सुधार होते देर नहीं लगेगी। आपका प्रभुत्व रहेगा तो अनीति-अन्याय दरवाजे से घुस नहीं सकते।

आचार्य भगवन्त (श्री हस्तीमल जी म.सा.) फरमाया करते थे-गाँव के ठाकुरों की ठकुरानियाँ ऐसी होती थीं जो शासकों को मांस-मदिरा से दूर रखती थीं। उनके चौके में अखाद्य-अपेय प्रवेश नहीं कर सकता था।

गौरव के साथ कहना चाहिए कि प्रत्येक तीर्थकर के शासनकाल में जितने संत बने, उनसे अधिक साध्वियों की संख्या रही। परन्तु आधुनिक युग के प्रवाह में सहधर्मिणी, पतिव्रता, वात्सल्यमयी माता को समान अधिकार का भूत कैसे लग गया, कह नहीं सकता। सहधर्मिणी सहधर्मिणी रहे, वह बराबर बैठने की कोशिश करेगी तो अपना सत्त्व खो देगी, आदर-सम्मान घटा देगी। मेरा यह कथन कार्य की दृष्टि से नहीं है, अधिकार की दृष्टि से है।

## अधिकार की माँग नहीं : कर्तव्य के प्रति समर्पण हो

इतना जरूर याद रखिए कि अधिकार की चाहना से अधिकार नहीं मिलते, किन्तु कर्तव्य के प्रति समर्पण से सारे अधिकार मिल जाते हैं। जिसने समर्पण करना सीख लिया वह पूज्य बन गया। अर्जुन आदि पाण्डव उतने नहीं गये गए जितना एकलव्य गाया गया, क्योंकि उसका गुरु के प्रति एवं अपने कार्य के प्रति समर्पण था।

घर में पिता है, पुत्र है, बहन है, भोजाई है, बड़े पिता हैं, उन सबको जो अधिकार नहीं मिलता वह अधिकार दूसरे घर से आने वाली बहू को मिल जाता है। उसके समर्पण भाव के कारण वह घर की मालकिन बन जाती है।

### शीलवती नारियाँ

स्कन्धपुराण में वर्णन मिलता है कि हिमालय की पुत्री पार्वती ने एँकर को प्राप्त करने के लिए लम्बे काल तक कठोर तपस्या की। तब तक तप करती रही जब तक एँकर का साक्षात्कार नहीं हो गया। एँकर सामने आए और एँकर ने कहा-मैं तुम्हारा तपःपूत दास हूँ। मैंने सब कुछ तुझे अर्पित कर दिया। पार्वती बोली-

**मनसस्त्वं प्रभुः शम्भो ! दत्तं तच्च मया तव ।**

**वपुषः पितरावेतौ, सम्मानयितुमर्हसि ॥ स्कन्धपुराण ॥**

हे शिव ! मैंने अपना मन तो आपको दे ही दिया है, किन्तु शरीर के जन्मदाता माता-पिता हैं अतः उनसे इसे सम्मान प्राप्त करें।

सैंकड़ों दृष्टान्त दिए जा सकते हैं महिमामयी मर्यादाशील महिलाओं के। नारी ने अपने आपको आग में सौंप दिया, जीभ खींच कर प्राण दे दिए शील का हरण नहीं होने दिया। नारी की महिमा उसके शील से है, धर्म से है, ममता से है, मर्यादा से है। जिस दिन शील, धर्म और मर्यादा में कमी आएगी

उस दिन वह नारी नहीं नागिन कहलाएगी, देवी नहीं राक्षसी शब्द से सम्बोधित होगी। आज क्या हो रहा है, मैं नहीं कहूँ, आप चिन्तन करिए।

### निर्मात्री नारी

यदि माता बालक को सही समय पर शिक्षा न दे, संस्कार न दे तो वह माता भी दण्ड की भागी बन जाती है। घटित घटना है, माँ बेटे से मिलने जेल में गई। बेटे ने उसके चरणों में माथा टेकने की बजाय उसकी नाक काट खाई। जेलर ने पूछा-तूने यह क्या किया ? वह बोला-यह मेरी माँ नहीं, मुझे मारने वाली है। जिस दिन पाठशाला से मैंने पेंसिल चुराई, यह मुझे डॉट देती तो मैं चोर नहीं बनता और चोर नहीं बनता तो यह हालत नहीं होती।

एक वह माँ है जिसने परीष्हह से डरे भगे अरणक को कठोर परीष्हह सहने के संयम मार्ग में लगाया। एक वह मदालसा है जिसने लोरियाँ दे देकर बालकों को वैरागी बनाया।

माता जीवन-निर्मात्री है। इसने चाहा तो एक नहीं सात-सात वैरागी बना दिये। इसके द्वारा दिए गए संस्कारों से ही महापुरुष बनने की नींव पड़ी। माता एक प्रकार से बालक के भाग्य का निर्माण करती है। वह परिवार, समाज एवं देश का निर्माण करती है। उसके द्वारा बालक को दिए गए संस्कार ही देश की दिशा निर्धारित करते हैं। नारी ने माता के रूप में बालकों का निर्माण किया है तो पत्नी के रूप में पुरुषों को प्रेरणा दी है। कहा जाता है कि पुरुष की सफलता के पीछे पत्नी का हाथ रहता है। वह पति को कुमार्ग से सन्मार्ग पर ला सकती है। वह उसे बुरे से अच्छा बना सकती है। आवश्यकता है उसका यह रूप उभरे।

## नारी-जागरण से काया पलट

अगर नारियाँ जागृत हो जायें, अगर महिलाएँ मर्यादाएँ कायम कर लें, अगर सतियाँ शील पर दृढ़ हो जायें तो संसार की काया पलट होते देर नहीं लगे। सन्नारी मदनरेखा ने नरक में जाने वाले पति को चन्द क्षणों में स्वर्ग में जाने के योग्य बना दिया। ऐसे कई प्रसंग हैं, जिन्हें आप जानते हैं, पर रथ एक चक्र से नहीं चलेगा। दोनों चक्र का समान एवं सहयोगी होना जरूरी है। पत्नी शीलवती है, पति व्यभिचारी है तो वह ऊँट-बैल की जोड़ी चलने वाली नहीं है, एक दिन गाड़ी उलट जाएगी दोनों की उनकी विचारधारा में एकरूपता जरूरी है और उनकी विचारधारा पतन की ओर नहीं उत्थान की ओर ले जाने वाली हो।

आपके (पुरुषों के, संघ के) सम्मेलन का कार्यक्रम कल है। आपके लिए यथासंभव कहने का प्रयास रहेगा, पर आज नारी जागरण की बात कह रहा हूँ। विश्व का आधा भाग नारी है। अर्द्धनारीश्वर के रूप से, सामाजिक रूप से नारी का क्रम ऊपर है। गोविन्द-राधे, राम-सीता कोई नहीं बोलता। सब नारी को पहले रख कर राधे-गोविन्द, सीताराम आदि बोलते हैं। जिस शील के कारण आपका नाम आगे है, आप उसे आगे रखकर चलेंगी। आप अपनी मर्यादा बनाकर चलेंगी तो आप पीछे रहने वाली नहीं हैं।

आप स्वयं जागृत बनिए। आप मात्र इन लिपिस्टिकों को लगाकर, उजली साड़ियाँ पहन कर अपना शरीर, अपने बर्तन और आँगन धोकर सन्तोष नहीं कर लें, आप मन को संस्कारों से उज्ज्वल करें, शरीर को शीलगुण से सुवासित करें।

## एकता मन की हो

सेवा कार्य करने वाली सभी बहनें वेशभूषा से एक-सी साड़ी पहनकर आ जायेंगी, लेकिन एक रूप के कपड़ों में एकता नहीं आने वाली है। आप सद्गुणों से एकता का परिचय उपस्थित करें। आप दिखने में अलग दीखें, पर मर्यादाओं से मन अलग नहीं रखें। अपने-अपने घरों में, मनों में इस बात को तौलना कि आप दो हैं या एक। अगर दो हैं तो मारवाड़ी कहावत है-जहाँ दो बर्तन हैं वहाँ खड़खड़ाहट होगी ही। बाहर से दो होना खराब नहीं। पाजामा नीचे से दो है, ऊपर से एक ही है। जहाँ मन एक है, वहाँ स्वर्ग है। जहाँ विकारों के विविध रूप हैं, वहाँ नरक है।

## आप जर्गी : घर जगा

इसलिए आप स्वयं जर्गें। आप जग गई तो निश्चित मानिए कि आपका घर जग जायेगा, समाज जग जायेगा। आप ही समाज को दिशा देने वाली हैं। नीति कहती है- “एक सती नगर सारा, एक चन्द्रमा नवलख तारा” सारे नगर वाले मिलकर भी एक सती का मुकाबला नहीं कर सकते। आप संसार में रहते हुए भी स्वर्ग-सा सुख उत्पन्न कीजिए, यही आपका कर्तव्य है, धर्म है और मर्यादा है। ओम् शान्ति।



## स्वतन्त्रता को स्व-तन्त्रता में बदलें

(भारत के स्वतन्त्रता दिवस पर 15 अगस्त , 1994 को नेहरू पार्क, जोधपुर में दिया गया यह प्रवचन स्वच्छन्दता को त्याग कर स्व-तन्त्र अर्थात् स्वानुशासित बनने की प्रेरणा देता है।)

### देश की स्वतन्त्रता : समर्पण एवं बलिदान का फल

भारत देश तो 15 अगस्त, 1947 को अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होकर स्वतन्त्र हो गया, किन्तु आत्मा अनादिकाल से अभी तक परतन्त्र है। हमें असली स्वतन्त्रता तभी प्राप्त होगी जब आत्मा कर्मों की परतन्त्रता से मुक्त हो जाएगा।

आप देश की स्वतन्त्रता का भोग कर रहे हैं। यह स्वतन्त्रता भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुई है। हजारों-लाखों देशवासियों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी इस स्वतन्त्रता को पाने के लिए। कितने ही कष्ट सहे थे, तब गुलाम भारत के देशवासियों ने, उसकी कल्पना भी आज रोमांचित करने वाली है। आज आप आजाद देश की खुली हवा में श्वास ले रहे हैं, किन्तु आजादी के लिए आपके पूर्वजों ने जो कष्ट सहे, जो बलिदान किए उनका खयाल आपको नहीं है। इसलिए उस स्वतन्त्रता का उपयोग भली प्रकार नहीं हो रहा है।

समर्पण एवं बलिदान के फलस्वरूप प्राप्त स्वतन्त्रता का हम दुरुपयोग नहीं करें। हमारी न्याय-व्यवस्था, अनुशासन, कर्तव्य-पालन आदि में सजगता

हो, तो स्वतन्त्रता प्राप्ति का सुफल हमें मिल सकता है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति से क्या, आप जिस गेहूँ के आटे की बनी रोटी खाते हैं उसकी प्राप्ति भी कितनी कष्टकर है। भरी सर्दियों में किसान किस तरह ठिठुरता, काँपता हुआ खेतों में काम करता है। खेत को जोतना, बीज बोना, चार से पाँच पाण तक पिलाई करना, निराई करना, फसल के कीड़ों-मकोड़ों से, पशु-पक्षियों से रक्षा करना, उसे रोग लगे तो दवा छिड़कना आदि अनेक काम करता है, मेहनत करता है तब कहीं गेहूँ आप लोगों तक पहुँचता है। देश को पराधीनता से मुक्ति दिलाने के लिए इस तरह के कष्ट से भी हजार गुना कष्ट सहने, उत्सर्ग करने के अनन्तर यह आजादी हमें मिली है। इसका हमें महत्व समझकर उपयोग करना चाहिए।

### आधुनिक भारत की दशा

अनेक कष्ट सहकर, अनेक बलिदान देकर जिस स्वतन्त्रता को हमने हासिल किया आज उसका देशवासी कैसे उपयोग कर रहे हैं, यह विचारणीय है।

**(क) अव्यवस्था-**सोचा था राष्ट्रवासियों ने कि देश स्वतन्त्र होगा, हमारा राज्य, हमारी सरकार, हमारा शासन होगा तब सम्पूर्ण राष्ट्र सुखी हो जाएगा, कोई भूखा, नंगा नहीं रहेगा, किन्तु हुआ क्या ? गरीब एवं अमीर के बीच खाई बढ़ी। भ्रष्टाचार बढ़ा। कहने को संविधान है, लोकतन्त्र है, किन्तु न्याय-व्यवस्था उतनी सुदृढ़ नहीं है।

एक समय था जब राजाधिराज के राजकुमार से भी कोई अपराध हो जाता तो उसके लिए भी दण्ड का समुचित विधान था। स्वयं राजा भी अपराध करता तो अपने आपको दण्डित करने के लिए स्वेच्छया सिंहासन का त्याग कर न्याय के कटघरे में खड़ा हो जाता था। आज हालात विपरीत हैं। देश की इस चिन्तनीय दशा के बारे में प्रत्येक भारतीय को चिन्तन करना चाहिए।

**(ख) अनुशासनहीनता-**देश परतन्त्र था। प्रयास किया तो स्वतन्त्र हो गया, परन्तु चिन्तन-मनन करके देखा जाय तो लगेगा कि स्वतन्त्रता के उपयोग के प्रयास में देश की स्वच्छन्दता एवं अनुशासनहीनता बढ़ी है।

नीति, विधान, सिद्धान्त आदि जहाँ अपने-अपने ढाँग से, मनमाने तरीके से अपनाने को स्वच्छंद हों वहाँ स्वतन्त्रता हरगिज नहीं होती, वहाँ तो निरंकुशता एवं अनुशासनहीनता ही बढ़ती है। जो अपने कार्य को कर्तव्य समझ कर नहीं करता और कहता है कि वह स्वतन्त्र है तो यह स्वतन्त्रता का स्वच्छन्दता के रूप में दुरुपयोग है।

**(ग) हिंसा को बढ़ावा-**आप सभी जैन हैं, महाजन हैं और श्रावक हैं। आप श्रुतवाणी के श्रोता ही नहीं, पालक भी हैं। अहिंसा के अवतार भगवान् महावीर के अनुयायी हैं। प्रभु महावीर ने आपको अहिंसा की आधार भूमि दी। उनकी अहिंसा का सम्बन्ध कायिक हिंसा तक सीमित नहीं है, वह वैचारिक और मानसिक हिंसा का निषेध करती है। हिंसा का सम्बन्ध केवल किसी प्राणी को जीवन रहित करने से नहीं है, हमारे विचारों में भी अहिंसा की भावना होनी चाहिए। जैन धर्म तो भाव-प्रधान धर्म है। बाह्य जगत् में जो हिंसा होती है, उसका सूत्रपात मानव के अन्तस् में होता है। अहिंसा की ऐसी सूक्ष्म व्याख्या जिस देश को मिली हो, उस देश का हिंसा के पथ पर बढ़ना विस्मयकारी एवं चिन्ताजनक है। इस देश में हिंसा के आज कैसे-कैसे दौर चल रहे हैं। अत्याधुनिक बूचड़खानों एवं कसाईखानों की संख्या 3000 एवं छोटे कल्लखानों की संख्या 36000 तक पहुँच गयी है। केवल माँस भक्षण के निमित्त ही नहीं, अपितु घरेलू उपयोग की फैशनेबल वस्तुओं, शृंगार-प्रसाधनों, दवाओं के निर्माण में विदेशी अर्थ पूर्ति हेतु व्यर्थ की हिंसा का खुला नृत्य हो रहा है। आप

अहिंसा के पुजारी भगवान् महावीर की सन्तानें होकर भी विवशता की भाँति यह सब केवल देखते जा रहे हैं, सुनते जा रहे हैं, किन्तु इसको रोकने के लिए मजबूत कदम नहीं बढ़ा रहे हैं। ऐसी क्या परतन्त्रता है ?

**बन्धुओं !** यह महावीर का देश है। राम और कृष्ण का देश है। बुद्ध का देश है। अहिंसा के पुजारियों के इस देश में आज हिंसा जन-जन में निरन्तर प्रसार पाती जा रही है। क्यों इस देश में हिंसा की, भयंकर हिंसा की योजनाओं का निर्माण हो रहा है ? इसमें आप लोगों की शिथिलता ही प्रमुख कारण है। आप किसी रूप से उस हिंसा की स्वीकृति के भागीदार हैं यदि आप उसका विरोध नहीं करते। जिस दिन महावीर की अहिंसा आपके मानस का आपके जीवन का अंग बन गई, जिस दिन आपका लक्ष्य ‘अहिंसा’ की ओर उन्मुख हो गया, उस दिन ही इस देश की वास्तविक स्वतन्त्रता का उपयोग हो सकेगा। यह देश तभी सही अर्थों में स्वतन्त्र राष्ट्र कहलाने का अधिकारी होगा।

**(घ) मानवता व नैतिकता का पतन-**आज मानवता व नैतिकता को राष्ट्र के हितचिन्तक ढूँढ़ रहे हैं। जिस देश ने अपनी नैतिकता, प्रामाणिकता, सत्य, सदाचार, ईमानदारी के बल पर विश्व में सर्वोच्च प्रतिष्ठा अर्जित की थी, कभी अहिंसा व सत्याग्रह के पथ पर चलकर विश्व की महान् शक्ति अंग्रेजों को पराजित कर दिया था। आज उसी भारत में सत्य, अहिंसा, मानवता, नैतिकता को ढूँढ़ा जा रहा है।

आज के युग की बात मैं क्या करूँ ? आप स्वयं इस विषय के ज्ञाता और अनुभवी हैं। कहाँ है आज सिद्धान्त, आचार, नियम, मर्यादा ? गलत ढंग से धनार्जन करने में हिचक नहीं रही। मिलावट, भेल-संभेल, लेने-देने के अलग नाप, तस्करी, दो नम्बर के धन्धे आदि न जाने कितने अनैतिक तरीकों से धन आता है और फैशन, शृंगार, होटल, भ्रमण, अखाद्य-सेवन, मद्यपान, जुआ आदि अनेकानेक अकरणीय बुरे कार्यों में जाता है।

## जीवन की पराधीनता

आप अपने आपको स्वतन्त्र मानते हैं, यह आश्चर्य है। आज आपके पीने, नहाने व अन्य कार्यों में उपयोग आने वाला पानी नल के अधीन है, दो-चार दिन पानी नहीं आए तो हाय-त्राय मच जाती है। आज आपकी रोशनी, आपका प्रकाश पावर-हाउस या बिजली बोर्ड के अधीन है। बंद हो जाए बिजली तो आपके दैनिक और व्यावसायिक कार्य ठप्प ! आपका आटा चक्की के अधीन, कपड़ों की धुलाई धोबी के अधीन, कचरा-कूड़ा हरिजन या नौकर-चाकर के अधीन है। उधर रसोई में रोटी रसोइए का इंतजार कर रही है तो मोटर ड्राइवर की ओर ताक रही है। मुकद्दमे की समस्या वकील सुलझा रहा है तो रोग डॉक्टर की पराधीनता में फेरेशान कर रहा है, फिर भी आप कह रहे हैं कि हम स्वतन्त्र हैं। आपका जीवन सब तरह से पराधीन होता जा रहा है। जितनी सुख सुविधाएँ बढ़ रही हैं, जीवन उतना पराधीन होता जा रहा है। कहा तो यह है-

पराधीने वृथा जन्म, परस्त्रीषु वृथा सुखं।

परगेहे वृथा लक्ष्मी विद्या या पुस्तके वृथा ॥

पराधीन ही रहना है तो जन्म वृथा है, परस्त्री सेवन में सुख मानना वृथा है, दूसरे के घर की लक्ष्मी अपने लिए बेकार है तथा जो विद्या मात्र पुस्तकों में है वह भी निरर्थक है।

बन्धुओं ! आज पूरा देश भाषा, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन आदि क्षेत्रों में पश्चिम की नकल कर रहा है तो फिर स्वाधीनता कैसी ? देशवासी अभी भी परमुखापेक्षी हैं, परतन्त्र हैं। स्वतन्त्रता अभी आई नहीं है।

**स्वच्छन्दता की ओर नहीं, स्वतन्त्रता की ओर बढ़ें**

बाह्य जीवन में परतन्त्र बने हम महावीर के सेनानी जरा अन्तर का

अवलोकन करें। आन्तरिक स्वतन्त्रता की बात भी करें। भगवान् महावीर ने इस संसारी जीव की पग-पग पर परतन्त्रता या पराधीनता देखी। बाहर में इन्द्रियों की और भीतर में कषायों एवं कर्मों की पराधीनता। इसी को गीत की कड़ियों में प्रकट करते हुए कोई गीतकार कहता है-

दीपक देख पतंग जल्यो, अस शब्द सुनि हरिणी तड़फायी,  
लेके सुगंध मरा भँवरा, रस काज फँसी मछली बिरलायी।  
काम के काज फँसा गजराज, ये पाँच प्रपञ्च महा दुखदाई,  
जो सुख चाहो भजो रघुनंदन, इन पंचन को वश कीजे रे भाई॥

सांसारिक प्राणी अनंत-अनंत काल से कर्माधीन या पराधीन है। उसकी ‘स्व’ सत्ता पर ‘पर’ का प्रभुत्व है। उसकी ‘स्व’ आत्मा, पर-द्रव्यों के अधीन है। संसार के अधिकाँश प्राणी ज्ञान दृष्टि, और सही समझ नहीं होने के कारण स्वच्छंदवृत्ति से चलते हैं तथा स्वच्छंदता को स्वतन्त्रता समझते हैं, किन्तु स्वच्छंदता अज्ञान का परिणाम है और स्व-तन्त्रता अर्थात् आत्मानुशासन विवेक एवं ज्ञान का फल है।

आगम कहते हैं- “‘छंदं निरोहेण उवेहि मोक्षं’” अर्थात् हे मानव ! तू छन्द यानी इच्छा या स्वच्छन्दता को रोकेगा तब मोक्ष प्राप्त करेगा। यदि तू अपनी ज्ञान चेतना का विकास नहीं कर पाया है तो अपने मन से, अपनी इच्छा से स्वच्छन्द गमन करना छोड़ दे। यह स्वच्छंदता ही तुझे पराधीनता की ओर ले जाने वाली है, अतः इसका त्याग कर। अगर तू अपनी इन्द्रियों के चक्कर में लगकर विपरीत आचरण में गमन करेगा तो अनंत-अनंत काल तक संसार में भटकता रहेगा, दुःखों को भोगता रहेगा, तुझे कहीं शांति नहीं मिलेगी।

प्राणी यदि पराधीन और परतंत्र है तो उसमें ‘स्व’ एवं ‘पर’ हित की समझ नहीं आ सकती। भले ही कोई वृद्ध अवस्था सम्पन्न हो, अनुभवी हो,

पर स्वतन्त्र यदि नहीं है तो आत्मानुभूति से दूर ही रहेगा। सैकड़ों वर्षों की आयु प्राप्त करने वाला जंगली पशु स्वच्छंद ही कहलाता है, स्वतन्त्र नहीं।

किसी घर में सबसे छोटे पुत्र की शादी होती है, आने वाली नववधू घर में उम्र और पद की दृष्टि से सबसे छोटी है, पर यदि वह घर को अपना घर, घर के सदस्यों को अपना ही मानकर चलती है। उस घर से उसका अपनत्व है, तो वहाँ उसका स्वामित्व भी है। कारण अपनत्व एवं स्वानुशासन से वह परिवार के सभी सदस्यों के सुख और हित का ध्यान रखकर चलती है। छोटा बच्चा स्कूल जा रहा है, उसे नाश्ते में क्या चाहिए, कब चाहिए ? घर का मालिक दुकान जाने वाला है, उसकी क्या जरूरतें हैं ? घर का अमुक सदस्य बीमार है, उसे दवा कब देनी है, क्या सेवा करनी है, कब-कब सँभालना है ? पथ्य आदि कब और क्या देना है ? आदि बातों को ध्यान में रखते हुए स्वयं अपने तंत्र से चलती है। उस पर किसी का शासन नहीं, वह किसी की गुलाम नहीं। स्वयं अपने तंत्र से परन्तु दूसरों के हितों का ध्यान रखते हुए चल रही है। अतः वह लौकिक दृष्टि से स्वाधीन है, स्वतंत्र है। बहू के कार्य में स्वानुशासन है, अतः अन्य-अन्य की दखल अन्दाजी का वहाँ कोई काम नहीं।

### पर-तन्त्रता छोड़ें

तीर्थकर प्रभु महावीर फरमाते हैं-हे मानव ! तू इन्द्रियों की, मन की, पर वस्तुओं की और कर्मों की पराधीनता को मिटाकर आत्म-तन्त्र हो जा। पराधीनता में कोई सुख नहीं है। सांसारिक वस्तुओं के आश्रित सुख, सुखाभास मात्र है। स्वर्ण-पिञ्जर में बंद, पराधीन तोते को दाढ़ि-दाख खिलाइये, कनक-कटोरे में पानी पिलाइए और फिर पूछिए उससे कि क्या वह वहाँ सुखी है ? पूछते ही क्यों हैं, थोड़ा दरवाजा खोल दीजिए पिंजरे का, तोता स्वतः

निर्णय दे देगा। स्वच्छं आकाश में उड़ता हुआ चीख-चीख कर जैसे कहेगा-  
मुझे स्वतन्त्रता प्रिय है, मुझे मेरा आकाश, मेरे जंगल प्रिय हैं।

आपका आत्मा अनादि काल से परतंत्र है। कर्मों के संयोग से, राग-  
द्रेष से, इन्द्रियों की और मन की दासता से आत्मा परतंत्र बना हुआ है। एक बार  
इसे स्वतंत्र कर लीजिए कभी परतंत्रता आयेगी ही नहीं। सम्यग्ज्ञान और समभाव  
की जागृति से ही ऐसी स्वतन्त्रता संभव है। सूत्रकृताङ्ग सूत्र में कहा है-

**कषाया यस्य नो छिन्ना, यस्य आत्मा मनोवशः।**

**इन्द्रियाणि न गुप्तानि, प्रब्रज्या तस्य निष्फला ॥**

अर्थात् जिसने क्रोधादि कषायों का, राग-द्रेष का छेदन नहीं किया,  
जिसकी आत्मा, मन के वश में है अर्थात् जिसका मन आत्म-नियन्त्रित नहीं  
है, जिसने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता ऐसे साधक की, श्रमण की प्रब्रज्या  
(दीक्षा) निष्फल है।

शास्त्रकारों ने यद्यपि कषायों के छेदन की बात कही है, पर व्यवहार  
में इसका तात्पर्य कषायों को कम करने से है। एक व्यक्ति को बम्बई जाना है।  
वह अपने घर से स्टेशन के लिए रवाना हो गया। पीछे से किसी ने पूछा-  
'अमुक व्यक्ति कहाँ है ?' उत्तर मिलेगा- 'वह तो बम्बई गया है।' अभी तो  
शहर की सीमा भी नहीं छूटी, फिर भी कहा गया कि वह बम्बई गया है। यह  
व्यवहार है। इसी तरह साधक चाहे वे श्रमण हों या श्रावक हों, अपने जीवन में  
नियम, व्रत आदि ग्रहण कर कषायों को छोड़ने के रास्ते पर चल पड़े हैं तो  
उनके लिए यही कहा जाता है कि ये कषायों के त्यागी हैं।

यदि ज्ञान प्राप्त करने से अहंकार बढ़ता है, क्रिया से कोई अपने  
आपको ऊँचा समझने की बात कहता है, यदि उसकी नजर में अपने  
अलावा दूसरों को हीन समझने की भावना है तो ऐसा साधक कषायों को

छोड़ नहीं रहा है, बल्कि कषायों को जोड़कर आत्मा को और अधिक परतंत्र बना रहा है।

### स्वतन्त्रता में श्रमणत्व की सफलता

श्रमण धर्म स्वीकार करने के पश्चात् क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष हटें, सरलता और सन्तोष के भाव जगें तो समझना चाहिए कि उस श्रमण का श्रमणत्व सफल है। जिस श्रमण ने मन को वश में करने का प्रयत्न नहीं किया, जिसे रहने के लिए अच्छा हवादार स्थान चाहिए, खाने को स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ चाहिए, नयनों की तृप्ति के लिए देखने को रूप और श्रवणेन्द्रिय की तृप्ति के लिए गीत-संगीत चाहिए, प्रतिकूल-कथन जिसे बर्दाशत नहीं होता, तो इन्द्रियों तथा मन की परतन्त्रता के कारण उसका श्रमणधर्म निष्फल है।

### स्वतन्त्रता में आत्मजय

बन्धुओं ! इन्द्रियों के गोपन का अर्थ है अशुभ से रुका जाए, पापों की प्रवृत्ति से अपने आप को हटाया जाए, प्रतिकूलता में भी समझावों की स्थिरता रखी जाए। यदि ऐसा है तो समझिए कि वह साधक, वह व्यक्ति, वह प्राणी स्वतन्त्र है। उसे अपनी आत्मा की आज्ञा के अतिरिक्त किसी अन्य के अनुशासन की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं अपना गुरु है जिसने अपनी इन्द्रियों को, मन को, कषायों को जीतना प्रारम्भ कर दिया। बस वह स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर हो गया। यही है महावीर की स्वतन्त्रता का पथ।

पूज्य गुरुदेव आचार्य भगवंत् (स्व. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) ने स्वाधीन बनने की, स्वतन्त्रता प्राप्त करने की बात को कितने सुन्दर ढंग से बताया है -

तन मन इन्द्रिय की दासवृत्ति,

स्वाधीन नहीं रहने देती ।

भौतिक इच्छा और स्वार्थ छोड़,

स्वाधीन बनो ! स्वाधीन बनो !

स्वातन्त्र्य दिवस शिक्षा देता,

तुम मनोदासता दूर करो ।

निज भाव के 'गज' आधीन बनो,

स्वाधीन बनो ! स्वाधीन बनो !!

सब जन का अंतर बोल रहा,

स्वाधीन बनो ! स्वाधीन बनो !!

### आत्मतन्त्र ही स्वतन्त्रता

आज मन-मातंग के वशवर्ती बन कर अनेक व्यक्ति मद्यपान, जुआ, लाटरी, धूम्रपान, गुटखा आदि के व्यसनों में निरन्तर फँसते जा रहे हैं, फैशन से घिरते जा रहे हैं, कषाय रूपी लुटेरों से लुटते जा रहे हैं। आपको इन दुर्व्यसनों से बचना है, इन्हें त्यागना है और अपनी संतति को भी इनसे बचाना है। जिस दिन आपका ऐसा स्व-पर हित के चिंतन का भाव जगेगा, आत्मस्वभाव की जागृति होगी, आत्मा अपने ही तंत्र से चलेगा, तभी सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी। आप सभी आत्म-तंत्र से चलें, इसी मंगल कामना के साथ। ओम् शांति !

□☆□

## शान्ति के विविध रूप

(28 अगस्त, 1994 को जोधपुर में फरमाये गए इस प्रवचन में शान्ति के चार रूपों का विवेचन करते हुए आध्यात्मिक एवं स्वाभाविक शान्ति को लक्ष्य बनाने पर बल दिया गया है।)

यह संसार अनन्त-अनन्त जीवों का भव-भ्रमण स्थल है। अनन्त जीव समय-समय पर संसार में जन्म लेते हैं, जीवन जीते हैं और आयुष्य समाप्त कर मरण-धर्म को प्राप्त करते हैं। एकेन्द्रिय को छोड़कर द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव चलते-फिरते दिखाई देते हैं। इनमें अनेक जलचर हैं, अनेक नभचर और अनेक स्थलचर। विभिन्न प्रकार की इस जीव-राशि के अनन्त जीवों की एक मात्र चाहना है, इच्छा है-शान्ति और समाधि। नरकगति में असह्य वेदना भोग रहे नारकी जीवों से लेकर सर्वार्थसिद्ध विमान में छोटी मोक्ष जैसे सुखों का अनुभव करने वाले देवों तक सभी की चाह है-शांति और समाधि।

अशान्ति कोई नहीं चाहता। संसार के सभी प्राणी अपने सारे प्रयत्न शान्ति के लिए करते हुए भी अशान्त क्यों हैं ? छोटे से छोटा, बड़े से बड़ा समझदार व नासमझ जीव भी शान्ति के लिए ही निरन्तर प्रयत्नशील हैं। फिर भी शान्ति, समाधि एवं पूर्ण सुख दुर्लभ है। विरले जीव ही मिलेंगे जिनके पास शांति और समाधि हो। शास्त्र कहता है-

न वि सुही देवया देवलोए, नवि सुही पुढविपई राया ।  
 नवि सुही सेढ़ी सेणावई य एगन्तसुही साहू वीयराई ॥  
 अर्थात् न देवलोक में देवता सुखी है, न पृथ्वीपति राजा सुखी है, न  
 सेठ एवं सेनापति सुखी है, एकान्त रूप से वीतरागी साधु ही सुखी है।

मानव के पास कितनी ही धन-सम्पति हो जाए, पर सन्तुष्टि नहीं है। वह तो देवलोक की जैसी ऋद्धि की चाह में मन भटकाकर अशान्त बना रहता है। देव भी सुखी कहाँ ? उनको भी शान्ति कहाँ ? देवलोक में भी कुछ देव कर्मकर हैं, कुछ अंगरक्षक, पहरेदार और कुछ अभियोगिक बन कर इन्द्रों की सवारी के काम में आने वाले हैं। कुछ ईर्ष्या से जलने वाले और कुछ छल-प्रपञ्च में ही समय बिताने वाले हैं। पृथ्वीपति राजा-महाराजा भी अपनी तृष्णाओं, कामनाओं, आकांक्षाओं के आगे दुःखी हैं। वे राज्य की सीमाएँ बढ़ाने के लिए युद्ध करते हैं, राजकोष भरने की इच्छा से लूट-पाट करते हैं। देव और नराधिप सुखी नहीं तो निन्यानवें के फेर में पड़े रहने वाले सेठ भला कैसे सुख-शान्ति से रह सकेंगे ? धनार्जन, धन-संचय और धन की सुरक्षा के लिए वे दिन-रात बेचैन, दुःखी एवं संतप्त बने रहते हैं। फिर कहाँ ढूँढ़े शान्ति को ?

आज का दिन शान्तिनाथ भगवान् का च्यवनकल्याणक दिवस है। वे देवलोक से च्यवन कर आज के दिन माता अचिरा की कृक्षि में आकर उत्पन्न हुए। आज चार बातों के माध्यम से शान्ति के स्वरूप को समझाने की चेष्टा कर रहा हूँ।

### व्यसनों से शान्ति

मनुष्य को शान्ति का एक अनुभव भोग-प्राप्ति से होता है। भोग दो प्रकार के हैं-एक शरीर की आवश्यकता की पूरी करते हैं और दूसरे जीवन को

बिगाड़ने वाले होते हैं। गुटखा खाने वाले को गुटखा खाने पर शान्ति मिलती है, अमल वाले को अमल मिलने पर शान्ति मिलती है। उसे अमल नहीं दिया जाये तो वह उठकर बैठा नहीं हो सकता। किसी की शराब पीने की आदत है उसे शराब चाहिए। कुछ लोग चाय के आदी हैं। चाय का भी नशा होता है। जब तक व्यसन की वस्तु नहीं मिलती तब तक शरीर में प्राणशक्ति का संचार नहीं होता। किन्तु दुःखी एवं परेशानी से तनावग्रस्त बना मानव व्यसनों में शान्ति ढूँढ़ रहा है तो क्या कहेंगे आप उसे ? वह उनमें शान्ति, सुख ढूँढ़ ही नहीं रहा है अपितु मानता भी है कि मुझे तो इन्हीं में शान्ति मिल रही है। शान्ति की खोज में गलत रास्ते पर बढ़कर इस तरह के मानव अपना ही नहीं, अपने परिवार तक का सर्वनाश कर बैठते हैं। पहले गम करने के लिए व्यसन का सहारा लिया जाता है फिर व्यसन को सहारा बनाकर अपनी मनचाही कर लेता है। धन जाता है, तन जाता है, मान-सम्मान जाता है।

चाहे घरेलू कारण हों, चाहे व्यावसायिक, पर बुरे दिन आने पर व्यसन को गले मत लगाइए। 'व्यसनं विपत्तिः' अर्थात् व्यवसन ही व्यक्ति के लिए विपत्ति रूप है। शराब, अमल, हेरोइन, चरस, गाँजा ही ऐसे व्यसन नहीं हैं, अपितु गुटखा और चाय भी आजकल व्यसन का रूप ले चुके हैं। अमल, शराब आदि के आदी होने के पश्चात् व्यक्ति को कभी खाने-पीने को ये वस्तुएँ न मिलें तो क्या हालत होती है उसकी ? जब तक व्यसन की वस्तु गले से नीचे नहीं उतरती तब तक जैसे उसके शरीर में प्राणों का संचार ही नहीं होता।

ऐसे व्यसनी व्यक्ति न व्यवहार निभा सकते हैं और न परमार्थ ही कर पाते हैं। वे कहीं भी किसी भी लायक नहीं रहते। एक समय था जब मारवाड़ में बीड़ी, चिलम पीने वाले किसानों को 'गँवार' माना जाता था। आज नजर

उठाकर देखा जाए तो किस समाज में, किस जाति में, किस कुल में इन व्यसनों ने डेरा नहीं डाला है ?

आचार्य भगवंत (आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.) जीवन की दो आवश्यकताओं की बात बताया करते थे-एक पेट की आवश्यकता और दूसरी ठेठ की आवश्यकता । पहली आवश्यकता का सम्बन्ध है आजीविका से, शरीर से और दूसरी आवश्यकता का सम्बन्ध धर्मचिरण, प्रभु-स्मरण एवं आत्मोद्धार से है । कर्म-बन्धनों को तोड़कर मुक्ति के लक्ष्य की प्राप्ति करना ठेठ की आवश्यकता है । जो पढ़ लिखकर व्यसनों का सेवन करते हैं वे व्यक्ति न पेट का पेटा भरते हैं, न ठेठ का । वे मात्र व्यसन में पड़े रहते हैं, जीवन को नष्ट करते हैं, शरीर को बिगाड़ते हैं, स्वास्थ्य को खराब करते हैं, रोगों को निमन्त्रण देते हैं, धन बरबाद करते हैं और पारिवारिक जनों को संकट के बीच डालते हैं । व्यसन ही विश्वभर में फैले अनैतिक धन्धों को जन्म देने वाले हैं । व्यसन मानव-मन के भीतर उठने वाले विकारों के जनक भी हैं ।

व्यसन की वस्तुएँ सत्त्व एवं तत्त्व से रहित भी होती हैं, पर व्यक्ति आदत डाल लेता है अतः विवश होकर इनका सेवन करता है और परिणाम भोगता है । आश्चर्य इस बात का है कि प्रत्यक्ष परिणाम भोग कर भी वह सँभलता नहीं, बल्कि अधिक फँसता, अधिक धँसता चला जाता है । आश्चर्य यह है कि जो जातियाँ कुल-परम्परा से व्यसन की आदी थीं वे तो व्यसन छोड़ रही हैं और जिनमें व्यसन व्याप्त नहीं था, व्यसन कोसों दूर था आज वे समाज धड़ल्ले से व्यसन के शिकार बनते जा रहे हैं ।

यदि पूछे कि भाई ! व्यसन बहुत बुरा है, क्यों सेवन करते हैं आप ? छोड़ क्यों नहीं देते इसे ? तो प्रत्युत्तर मिलेगा, तनाव बहुत हैं, चिन्ताएँ इतनी हैं कि शरीर सँभलता ही नहीं । अन्तर-मन के गम को समाप्त करने का सरल

तरीका हमें यही नजर आता है। अब तो आदत-सी पड़ गई है। छूटना बहुत मुश्किल है।

**वस्तुतः** कोई भी व्यसन चिन्ताएँ नहीं मिटाता, गम नहीं भगाता, तनाव दूर नहीं कर पाता। व्यसन तो चिन्ता बढ़ाते हैं, मस्तिष्क की सहनशीलता को समाप्त करते हैं, व्यथा और बैचेनी को बढ़ाते हैं। व्यसनों से दुःख घटने के बजाय बढ़ते हैं। इस पर भी मानव तो मानव ही है, वह इन व्यसनों, इन विकृतियों में ही शान्ति मानते हैं। शास्त्रों के अनुसार वस्तुतः यह मार्ग शान्ति का नहीं अशान्ति का है। आप यह समझ लीजिए कि व्यसन कभी शान्ति नहीं देते बल्कि व्यसनी को इनसे क्षणिक शान्ति का आभास मिलता है। जैसे एक बच्चा रो रहा है, माँ समझ जाती है कि उसे दूध पिलाना है परं चूँकि वह काम में लगी हुई है अतः अपना दूध पिलाने की जगह रबड़ की बिटनी बच्चे के मुँह में डाल देती है। बच्चा चुप हो जाता है और उस बिटनी को चूसने लगता है। क्या उस बच्चे की भूख मिट जायेगी ? नहीं।

व्यसन की वस्तुएँ न भूख मिटा सकती हैं, न प्यास। ये तो कुत्ते के मुँह में रखी सूखी हड्डी की भाँति होती हैं। भूखा कुत्ता रोटी के न मिलने पर सूखी हड्डी के टुकड़े को मुँह में पकड़ कर जोर लगा कर बार-बार चबाता है। जोर लगाने से उसके खुद के मुँह से मसूड़ों का खून आने लगता है। वह उस खून को चाट कर समझता है कि हड्डी उसकी भूख शान्त कर रही है। अब आप ही बताइये उसे हड्डी के टुकड़े से क्या मिल रहा है ? व्यसनी व्यक्तियों के साथ यही होता है। अपने व्यसन की पूर्ति में ही ये व्यक्ति शान्ति मानते हैं। यदि वे इनमें शान्ति नहीं मानते हैं तो ग्रहण ही क्यों करते हैं ? व्यसन खानदान की परम्परा नहीं है। आज के नौजवानों को गुटखे का जो रोग लगा है, वह रोग आप लोगों के पास कब से और कहाँ से आया ? क्या है ऐसा इसके भीतर कि

सभी इसकी ओर दौड़े जा रहे हैं ? आप पढ़ते हैं, देखते हैं, सुनते हैं कि गुटखा शरीर की बर्बादी का रास्ता है, कैंसर को निमन्त्रण देता है यह, फिर भी कोई सामने और कोई छुपकर इस बर्बादी के रास्ते पर चल रहे हैं। यह शान्ति नहीं, शान्ति का आभास मात्र है जो मिथ्या छलावा है।

### शारीरिक आवश्यकता पूर्ति से शान्ति

भोग से प्राप्त होने वाली शान्ति का दूसरा रूप है शरीर की आवश्यकता की पूर्ति । प्यासे को पानी मिलने पर और भूखे को भोजन मिलने पर शान्ति का जो अनुभव होता है वह इसी का रूप है। कोई ज्वर से तड़फ़ रहा है, उसे औषधि के रूप में गोली या इन्जेक्शन दिया जाये तो वह भी इस प्रकार की शान्ति अनुभव करता है। सर्दी है तो कपड़े पहनने से और गर्मी है तो ठण्डी हवा से शान्ति मिलती है। इस विश्वास को शान्ति कहा गया है। यह शान्ति कुछ समय के लिये अनुभव होती है। अभी खाया, चार छह घण्टों के बाद फिर भूख। अभी पानी पीया, घण्टा भर नहीं बीता कि फिर होठ सूख जाते हैं, और पानी पीना पड़ता है।

### कर्तव्य-पालन में शान्ति

शान्ति का एक अन्य रूप है-कर्तव्य पालन। कर्तव्य-पालन से भी मन में कुछ शान्ति का अनुभव होता है, कुछ समाधि एवं कुछ धीरज मिलता है। घर में चार लड़के हैं। उनका पालन-पोषण, पढ़ाना-लिखाना, आजीविका के साधन मिलाना ये माता-पिता के कर्तव्यों में आता है। माता-पिता स्वयं कष्ट सहन करके भी बच्चों के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। वे पढ़-लिखकर कमाने नहीं लगते तब तक उनके दिलों में तड़फ़न रहती है। पति-पत्नी अपने कर्तव्यों के पालनार्थ बहुत कुछ सहन करते, कष्ट उठाते

देखे जाते हैं। पुत्री का संबंध कर दिया, शादी हो रही है, बारात आ गई है। लड़की के पारिवारिक जन, अपने समस्त दैनिक कार्यों को भूलकर पहले उनके स्वागत-सत्कार में लग जाते हैं। उन्हें खिलाने-पिलाने में अपना खाना-पीना बिसरा देते हैं। उनके नहाने, धोने, शयन, मनोरंजन की व्यवस्था में खुद नहीं नहा पाते। बारात जब ससम्मान बिना किसी बाधा-अशान्ति के विदा कर दी जाती है तब पिता को, पारिवारिक-जनों को एक प्रकार की शान्ति का अनुभव होता है। कभी आप लोग सन्तों के पास आकर भी कह देते हैं- “महाराज ! बेटी का विवाह था, शान्ति से निपट गया, अच्छा हुआ।” आप में से अनेक अनुभवी हैं, जानते हैं कि दूल्हा एवं उसके साथियों, बारातियों और घरातियों को कैसे-कैसे सँभालना पड़ता है, राजी-खुशी विवाह सम्पन्न करने के लिए किस तरह जूझना पड़ता है ? इस शान्ति में थोड़ी उच्चता है। क्षणिक यह भी है पर उतनी नहीं। सांसारिक-कर्तव्य का रूप इससे जुड़ा हुआ है।

अनेक बार पुत्र-पुत्रियाँ भी माता-पिता के लिए अपना कर्तव्य निभाते हुए कष्ट सहन करते हैं और उन्हें सुखी देख स्वयं शान्ति की, चैन की श्वाँस लेते हैं। कभी जन्म देने वाली माता अस्वस्थ हो तो सभी कार्य छोड़कर पहले उसकी सेवा करने वाला भीतर में एक अद्भुत शान्ति एवं सन्तोष का अनुभव करता है।

### परोपकार से शान्ति

एक शान्ति परोपकार से भी मिलती है। भोग से प्राप्त होने वाली शान्ति शरीर तक सीमित रहती है, कर्तव्य निर्वाहकर प्राप्त होने वाली शान्ति परिवार और सम्बन्धियों तक रहती है और परोपकार से प्राप्त शान्ति का जन-जन में प्रसार होता है। परोपकार में परार्थ के लिए स्वार्थ को छोड़ना पड़ता है।

शान्ति के इस तीसरे स्वरूप को प्राप्त करने के लिए कभी-कभी व्यक्ति अपनी जान तक जोखिम में डाल देते हैं।

एक बच्चा तालाब के किनारे खेल रहा है। अचानक वह तालाब में गिर जाता है, डूबने लगता है। किनारे पर खड़े अनेक व्यक्ति देखते हैं, इनमें अनेक तैराक भी हैं। एक व्यक्ति जिसे तैरना आता है, वह बच्चे को बचाने के लिए जल में छलाँग लगा देता है। अपने प्राणों की परवाह न कर गहरे जल में डूबते बच्चे को पकड़ कर बाहर खींच लाता है। बच्चा बच जाता है। माता-पिता खुशी से आँसू गिराते हैं। बचाने वाले को एक अद्भुत शान्ति का सुख मिलता है।

एक सूरदास जी (अन्धा व्यक्ति) बाबा बाजार में चले जा रहे हैं। मार्ग में एक ओर खड़ा है। सूरदास के पाँव उसी ओर बढ़ रहे हैं। दुकान पर बैठा एक व्यक्ति देखता है, अनुमान करता है कि बाबा खड़े में गिर सकते हैं। दुकान का कार्य छोड़कर उठता है, नीचे उतरता है, सूरदास के पास आता है और उसका हाथ पकड़ कर कुछ आगे तक साथ जाता है, उन्हें छोड़ने। क्या सम्बन्ध है उसका बाबा से ? न उसकी जाति-बिरादरी का, न उसके मौहल्ले का, पर अन्तर में दया का प्रवाह जो विद्यमान है। भूले-भटकों को सहारा देकर रास्ता दिखाना भी परोपकार का ही रूप है जो मन को शान्ति प्रदान करने वाला है।

इन्सानों के लिए क्यों, अनेक ऐसे भी मिलेंगे जिनके मन में मूक जानवरों के प्रति भी दया का स्रोत बहता है। हम परसों (26.8.94) रेलवे लाइन के निकट से जा रहे थे। एक गाय का बछड़ा रेलवे-इंजन के नीचे आ गया। एक पाँव कट गया, दूसरा बेकार हो गया। अब बछड़ा न तो उठ कर चल सकता था, न बैठकर सरक सकता था। हो सकता है वह भूखा-प्यासा

भी हो। विवश होकर लाइन के पास ही पड़ा था वह। कौन दया करे? आने वाले अनेक व्यक्तियों ने देखा उसे, पर देखकर चल दिए सब। सैंकड़ों-हजारों में कोई तो माई का लाल ऐसा निकलता है, जिसके मन में इनके प्रति भी पूर्ण दया-भावना हो। वैसे भी यह मरुधरा है, अभी तक इस धरा पर दया की जीवन्तता बनी हुई है। एक दयालु भाई उस बछड़े के भाग्य से वहाँ से निकला। देखा उसने बछड़े की दयनीय अवस्था को। उसे जानवरों के अस्पताल पहुँचाने का प्रबन्ध कर स्वयं साथ में जा, उसकी चिकित्सा करवाई। शान्ति तो निश्चय ही उसे भी मिली ही होगी, बछड़े पर उपकार करके।

दुःखियों एवं जरूरतमंद लोगों को देखकर उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ न कुछ अवश्य देना चाहिए। नीति में भी कहा है-

**भाग्य बढ़ा कुछ भजन कर, द्रव्य बढ़ा कुछ देय।**

**अकल बढ़ी उपकार कर, पाये का फल लेय॥**

कुछ प्राप्त किया है तो उसे दूसरों को भी दे। गुरुवरों की छत्रछाया और धर्म के पुण्यप्रताप से तेरे आनन्द है, सब तरह से अच्छा ही अच्छा है तो अब तूँ भगवान् का भजन कर, प्रभु का स्मरण कर, सत्साहित्य का अध्ययन कर, ध्यान लगा, चिन्तन कर, आत्मोन्नति के प्रयास कर। द्रव्य (धनादि) बढ़ा तो समझ अन्तराय टूटी है, दानान्तराय दूर हुई है। अतः जितना दे सके, दे। खाना, सोना आदि व्यवहार तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। जो खाते हैं वह शरीर में रहता नहीं है अतः दुःखियों पर दृष्टि डाल, उनके दुःख को समझ उनके दुःखों को दूर करने के लिए आगे बढ़, तभी तुझे उनकी आहें नहीं, आशीष मिलेंगी।

एक विद्वान् व्यक्ति ने सौ साल की आयुष्य पूर्ण कर ली। शतायु हो जाने पर भी उनके कान, नाक, दाँत, नयन आदि सभी सक्रिय थे, शिथिल

नहीं हुए थे। किसी ने उससे पूछ लिया-महानुभाव! हम सब तो पचास के पार आते-आते ही शिथिलेन्द्रिय हो जाते हैं, पर आपकी सभी इन्द्रियाँ अभी स्वस्थ हैं, पूर्ण कार्य कर रही हैं। आपके उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य क्या है ?

विद्वान् ने कहा-मेरे इस उत्तम स्वास्थ्य के पीछे एक वरदान है। एक बार एक वृद्धा स्त्री का पुत्र बीमार पड़ गया। उसकी चिकित्सा एवं स्वास्थ्य-लाभ हेतु वह वृद्धा गाँव छोड़ कर इस शहर में आई। पुत्र की चिकित्सा के लिए पैसा नहीं था। अतः जो कुछ जेवर बचा रह गया था, बेचकर जो भी पैसे मिले, वृद्धा साथ ले आई। यहाँ आई तो किसी उचकके ने उसकी गठरी पर हाथ मार दिया। जो कुछ धन था उसके पास, वह उस गठरी के साथ चला गया। वृद्धा अब क्या करे ? वह बाजार के बीच जोर-जोर से रोने लगी। रोती जा रही थी और कहती जा रही थी कि अब मैं अपने पुत्र का इलाज कैसे कराऊँगी ? मैंने भी उसका रुदन सुना, उसे देखा। मैं उसके पास गया, उसे अपने साथ ले आया। उसके पुत्र की दवा-चिकित्सा कराई। पर्याप्त धन भी दिया, गुजारे के लिए। वृद्धा ने मुझे कहा- ‘भगवान् तेरा भला करे। तू सौ साल की उम्र पाए।’ तब से मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मेरे स्वास्थ्य का यही रहस्य है।’

परोपकार करने से इसी तरह सुख-शान्ति का अनुभव होता है। जीवन में।

### आत्मिक-शान्ति

शान्ति का अन्तिम प्रकार है-कषायों के क्षय या उपशम से प्राप्त आत्मिक शान्ति। शान्ति का यह प्रकार सबसे महत्वपूर्ण है। साधक का मुख्य लक्ष्य आत्मिक शान्ति की प्राप्ति होता है। यह शान्ति विभाव से स्वभाव में आने पर होती है। इसके लिए आवश्यक है काम-क्रोधादि विकारों पर विजय। मनुष्य जीवन को सार्थक करना हो तो यह शान्ति ही हमारा लक्ष्य बननी

चाहिए। शान्तिनाथ भगवान् ने यही अलौकिक शान्ति प्राप्त की थी। उनका नाम लेने से भी हमें शान्ति का अनुभव होता है, ऐसे पूज्य शान्तिनाथ का स्मरण करने का लक्ष्य तब पूरा होगा जब हम भी उनकी भाँति उपद्रवी विकारों को शान्त कर दें। इस शान्ति के लिए संयम, तप, त्याग, करुणा, अहिंसा का पथ ग्रहण करना होता है। जो दया के लिए ही जीते हैं और दया के लिए ही मरते हैं, जो संयम के लिए ही जीते हैं और संयम के लिए ही मरते हैं वे स्वयं तो अलौकिक शान्ति को प्राप्त करते ही हैं और जहाँ भी वे विराजते हैं वहाँ भी सर्वत्र शान्ति छा जाती है।

अलौकिक शान्ति प्राप्त करना ही जीव का परम लक्ष्य है, परम साध्य है। वही उसका परम पुरुषार्थ है। जिस उपाय में ऐसी शान्ति जीवन में प्रकट हो, आप भी वही उपाय कीजिए।



## उत्तराध्ययन सूत्र : महावीर की अन्तिम सीख

(25 जुलाई 1994 को जोधपुर में दिए गए इस प्रवचन में उत्तराध्ययन सूत्र का महत्व प्रकट हुआ है।)

तीर्थकर भगवान् महावीर की अन्तिम अनमोल वाणी ‘उत्तराध्ययन सूत्र’ का चातुर्मासिक चतुर्दशी के दिन प्रारम्भ किया था, दो दिन की असज्जाय हो जाने से शास्त्र-वाचना नहीं करके चातुर्मास में करणीय विशेष कर्तव्यों का बोध हो, इस दृष्टि से कल रात्रि-भोजन त्याग की बात सामने रखी गई, आज तीर्थकर भगवान् महावीर प्रभु की उस अन्तिम वाणी पर विचार किया जा रहा है।

### ‘उत्तर’ शब्द के तीन अर्थ

सूत्र का नाम है-उत्तराध्ययन। इसके उत्तर और अध्ययन दो विभाग होते हैं। आचार्य भगवन्तों ने उत्तर शब्द के तीन अर्थ प्रमुखता से किए हैं। एक उत्तर ‘पश्चात्’ अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष। पूर्व कथन, उत्तर कथन। अर्थात् किसी सूत्र के बाद कहा जाने वाला सूत्र है, उत्तराध्ययन। दूसरा अर्थ है-उत्तर यानी समाधान। प्रश्न और उसका उत्तर जिसे आप एँका और समाधान के नाम से भी कह सकते हैं। भव-भ्रमण की समस्याओं का समाधान करने के साथ, आत्म-स्वभाव, आत्म-चिन्तन, आत्म-जागरण

और आत्मा-परमात्मा के विषय में किन-किन समस्याओं का किन-किन साधनाओं से किस क्रम में समाधान करना, उत्तराध्ययन सूत्र इसका कथन करता है। ‘उत्तर’ शब्द का तीसरा अर्थ है-प्रधान, श्रेष्ठ, उत्तम। भगवान् महावीर प्रभु की अन्तिम समय में सारभूत, उत्तम, श्रेष्ठ वाणी होने से इस सूत्र को उत्तराध्ययन सूत्र कहा जा रहा है। पश्चात् कहने के अर्थ में यह सूत्र दशवैकालिक के बाद पढ़ा जाता है। आचार्य शश्यम्भव द्वारा मनक मुनि हेतु पूर्वों से सार निकालकर दशवैकालिक सूत्र की रचना की गई। उसके बाद इस सूत्र का वाचन, पठन या व्याख्यान किया जाता है। इसलिये नाम की तरह अर्थ का साम्य भी बैठता है।

टीकाकार स्वयं जिज्ञासा करते हैं-उत्तराध्ययन सूत्र उत्तम सूत्र है, श्रेष्ठ और प्रधान सूत्र है। उत्तराध्ययन सूत्र को श्रेष्ठ-उत्तम-प्रधान व सारभूत सूत्र कहने के पीछे क्या यह तात्पर्य है कि जीवन भर तीर्थकर भगवान् महावीर प्रभु ने जिन अंग सूत्रों का कथन किया वे कम श्रेष्ठ थे ? क्या दूसरे अंग सूत्रों में कोई कमी थी ? अथवा वे सूत्र आत्म-परमात्म तत्त्व से जोड़ने में कुछ न्यूनता वाले थे ? यदि नहीं, तो उत्तराध्ययन सूत्र को उत्तम, श्रेष्ठ और प्रधान किस हेतु से कहा जा रहा है ? समाधान है-जीवन के अन्तिम समय में निचोड़ रूप कही गयी वाणी सारभूत कहलाती है।

### अन्तिम समय की सीख : सारभूत सीख

इस विषय को स्पष्ट करने के लिये आचार्य भगवन्त (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) जिस सरल-सुवोध भाषा में फरमाया करते थे, मैं भगवन्त के उस रूपक को रख रहा हूँ। एक पिता अपने जीवनकाल में अपने बच्चों को जीवन निर्माण की हित-शिक्षाएँ, संस्कार और सद्गुण की सीख देता रहता है, किन्तु वह पिता जीवन के सन्ध्याकाल में-अन्तिम समय में

अपने पुत्रों से कहता है-पुत्रों ! नीति की, धर्म-शास्त्रों की, व्यवहार जगत् की अनेकानेक बातें यदि तुम्हें याद नहीं रहे तो मेरी कम-से-कम तीन बातें याद रखना- (1) हाथ के सच्चे रहना (2) बात के सच्चे रहना और (3) काछ के सच्चे रहना । अगर तुम अपने जीवन में इन तीन बातों को लेकर चलोगे तो तुम्हें संसार में कहीं भी सिर नीचा करने का मौका नहीं आएगा ।

‘हाथ का सच्चा’ अर्थात् अपनी सो अपनी, पराई सो पराई । रुखी-सूखी खा लेना, पर अनीति, बेर्इमानी और भ्रष्ट तरीकों से दूसरों के हक की रोटी मत छीनना । सोने-चाँदी के ढेर को कंकर-पत्थर समझकर पराई वस्तु को ग्रहण करने की भावना मत करना ।

‘बात का सच्चा’ अर्थात् वाणी का सच्चा । संसार में विश्वास, प्रतीति और सामने वाले के हृदय में निष्ठा जगानी है तो भीतर-बाहर एक बात रखना अर्थात् कहने और करने में भेद मत रखना । जैसा कहना वैसा करना । ‘कहे कुछ और, करे कुछ और’ यह नीति प्रतिष्ठा बढ़ाने के बजाय घटाने वाली होती है । घर में राबड़ी खाने वाला बाहर मूँछों पर रबड़ी लगाकर आए, उसे आप क्या कहोगे ? ऐसा रूप प्रदर्शित करने वाला बात का सच्चा नहीं है ।

‘काछ का सच्चा’ वह होगा जिसमें दुराचरण का दुर्गुण नहीं है । दुराचरण से अनेकानेक वैभवशाली ढूब गए, राजा-महाराजा मिट गये । काछ का सच्चा यानी लॅंगोट का सच्चा । तो, हाथ का सच्चा, बात का सच्चा और काछ का सच्चा, ये तीन बातें जिस किसी में रहेंगी, उसको कोई अप्रतिष्ठित नहीं कर सकता । शिक्षा की ये तीन बातें व्यक्ति को सात्त्विक, नैतिक और समाधिवान् रखती हैं । इन बातों के अलावा भी शिक्षा की कई बातें हैं । ‘छाया में आना, छाया में जाना’, ‘मीठा खाना और किसी का कर्जा नहीं लेना’ जैसे और भी कई सूत्र हैं । इन सूत्रों में मर्म समाहित है । छाया में आना और छाया में

जाना, इसका मतलब है-सूर्योदय के पूर्व काम के लिए निकल जाना और सूर्यास्त के पश्चात् घर लौटना। मीठा खाने का मतलब प्रतिदिन कलाकंद-गुलाबजामुन खाने से नहीं, अपितु इस कथन का रहस्य है ‘भूख लगने पर खाना।’

महर्षि अत्रि ने एक राजा के सामने ग्रन्थ प्रस्तुत किया और कहा-महाराज ! इस ग्रन्थ का आरोग्य के लिए निर्माण किया है। मैं चाहता हूँ कि आप इस शास्त्र को सुनें। राजा ने कहा-मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं ग्रन्थ के लाखों श्लोकों को सुन सकूँ। राजा की भावनानुसार लाख से दस हजार, दस हजार से हजार, हजार से सौ, इस तरह करते करते साररूप बात निकालना सामान्य काम नहीं होते हुए भी महर्षि ने दो श्लोक में सार रखा। राजा ने दो श्लोक को कम करने को कहा तो महर्षि ने श्लोक का एक चरण में वर्णन किया ‘जीर्णं भोजनमात्रेयः।’ अर्थात् कड़ाके की भूख लगने पर खाना। भूख लगने पर सूखे खाखरे भी मीठे लगेंगे। भोजन में मिठास नहीं, मिठास भूख में है। भूख लगने पर खायेगा वह बीमार नहीं होगा, यह स्वास्थ्य का नियम है। हाँ, असाता वेदनीय के उदय की बात अलग है, अन्यथा भूख लगने पर खाने वाला अस्पताल कम पहुँचता है।

पिता की सीख थी-मीठा खाना और कर्जा नहीं लेना। फटा पहन लेना, झोंपड़ी में रह जाना और खाने को नहीं मिले तो एक दिन खाकर एक दिन उपवास करके भी चला लेना, पर कर्ज नहीं लेना। यह बात कितनी जरूरी है, यह बात आपके लिए ही नहीं, मैं भी इससे जुड़ा हूँ। मैंने न शक्कर की कटोरी कर्ज में ली, न मिर्ची की, पर कर्मों का कर्जा भी कर्जा है। अज्ञान अवस्था में, राग-द्वेष के परिणामों के वशीभूत होकर हँसते-हँसते कर्मों का कर्ज लेना तो आसान है, किन्तु चुकाने का मौका आता है तब भारी लगता

है। कर्म का कर्जा जहाँ कहीं भी जाओगे साथ रहेगा। जैसे दूध में पानी मिला हुआ है। उसे चाहे गाँव में ले जाओ चाहे शहर में ले जाओ दूध से पानी अलग नहीं होता। इसी तरह कर्मों का कर्जा भी साथ लगा रहता है। पिता की पुत्र को शिक्षा है-बेटा ! कर्ज मत लेना ।

आज क्या स्थिति है ? कोई व्यापार कर रहा है या उद्योग चला रहा है तो उसके घर की पूँजी दो आना है, चौदह आना कर्जे की पूँजी है। धन्धे में आप किन-किन से किस-किस तरह कर्ज लेते हैं ? इसे आप जानते हैं मुझे कहने की जरूरत नहीं। श्रावक पहले भी थे। वे अपनी पूँजी के एक हिस्से से व्यापार करते थे। आनन्द-कामदेव श्रावकों का आपने वर्णन सुन रखा है। उनके धन्धे में जितनी पूँजी चलती, उतनी घर बिखरी में रहती और उतनी ही जमीन (स्टॉक) में। आज वह स्थिति नहीं है। इसलिए ‘आप डूबे बाणियों ले डूबे जजमान’ कहावत सुनने तक ही नहीं, देखने में भी आती है। पिता पुत्र से कहता है-‘सुखी जिन्दगी जीना चाहो तो कर्ज मत लेना।’ कभी कर्ज भी हो जाय, आवश्यकता से लेना पड़े तो उसका ब्याज किस तरह से डुबाता है, आप जानते हैं।

आचार्य भगवन्त फरमाया करते थे-पुराने लोग पहले तो कर्ज लेते नहीं थे और कभी लेना भी पड़े तो रुखा-सूखा खाकर, सीमित कपड़ों से काम चलाकर नौकरी के अतिरिक्त पार्ट टाइम काम करके जब तक कर्ज नहीं उतर जाता, चैन से नहीं बैठते थे। कभी-कभी कर्ज लेने वाला संकल्प करता कि जब तक मेरा कर्ज नहीं चुकता, मैं दाढ़ी नहीं बनाऊँगा, मैं मिठाई नहीं खाऊँगा। वह कोई-न-कोई प्रतिज्ञा करके कर्ज चुकाने का ध्यान रखता था। कर्ज के रहते उनको नींद नहीं आती थी। आज क्या स्थिति है ? आज बिना कर्ज के धंधा भी नहीं चलता, यह कह दूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पिता ने पुत्र को जीवनभर शिक्षाएँ दी। मेरी सारी शिक्षाएँ याद रहे, न भी रहे तब भी मेरी अन्तिम शिक्षाएँ याद रखोगे तो तुम्हें कभी तकलीफ नहीं होगी हाथ का सच्चा, बात का सच्चा और काछ का सच्चा रहने की तरह तीन बातें और हैं- 1. कम खाना, 2. गम खाना और 3. नम जाना। ये शिक्षाएँ अन्त में पिता ने साररूप में दी। इसलिए बेटे ने सोचा, चलो पिता की अन्तिम शिक्षाएँ तो मानें।

### महावीर की वाणी

यही बात उत्तराध्ययन सूत्र के सम्बन्ध को लेकर आपके सामने रखी जा रही है। प्रभु महावीर ने साधना के क्षेत्र में कदम बढ़ाकर घनघाती कर्मों को क्षय करने के बाद चार तीर्थ की स्थापना की और वाणी का वागरण किया। तीर्थकर भगवान् महावीर की वाणी की 'त्रिपदी' से गणधर भगवन्तों ने अपने क्षयोपक्षम के अनुसार चौदह पूर्वों की रचना की और भगवन्त की वाणी के अर्थों को सूत्र रूप में गुंफित किया। आचारांग सूत्र पाँच आचारों का, महाब्रतों का, समितिगुप्ति का, कषायों से हटने का और वीतराग भाव की ओर बढ़ने का कथन करता है। सूयगडांग सूत्र स्व-सिद्धान्तों के मंडन और पर दर्शनों की मान्यताओं का अनेकान्त दृष्टि से प्रतिपादन करने की स्थिति से खण्डन-मण्डन करता है। ठाणांग सूत्र में, यह वस्तु है तो किस अपेक्षा से कौन से नये से है, इसका एक-दो-तीन इस तरह भेद-प्रभेद करते-करते दस ठाणों में वर्णन है। समवायाँग सूत्र में द्रव्यानुयोग, जीव, कर्म, आश्रव, संवर, मोक्ष आदि विषयों का भेद-प्रभेद सहित विभिन्न समवायों में वर्णन है। समवायों के माध्यम से इसमें विशिष्ट ज्ञान-सामग्री संकलित है।

भगवती सूत्र में अनेकानेक जिज्ञासाओं का समाधान है। छत्तीस हजार जिज्ञासाएँ और उनका समाधान भगवती सूत्र में है। ज्ञाताधर्मकथा 'ज्ञात'

अर्थात् उदाहरण या दृष्टान्तों के माध्यम से और उपमाओं के माध्यम से अवगुण छोड़ने की बात रखता है। उपासकदशांग में दस श्रावकों का वर्णन है। अन्यान्य गणधरों ने इसी तरह दस-दस श्रावकों का अलग-अलग वर्णन किया है। अन्तगड़दसा सूत्र में जीवन के अन्तिम समय में कर्मों का अन्त कर समाधि प्राप्त करने वाले, परिनिर्वाण और मोक्ष प्राप्त करने वाले नब्बे जीवों का वर्णन है। अणुत्तरोववाइअ में अल्पकाल में अधिक निर्जरा कर अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले जीवों का वर्णन है। प्रश्नव्याकरण अनेक प्रकार की लब्धियों-सिद्धियों का वर्णन करने वाला सूत्र था। वर्तमान में उसमें 5 आश्रव एवं 5 संवर का वर्णन मिलता है। विपाकसूत्र सुख-दुःख का वर्णन करता है। साथ ही किस तरह दुःख देने से, असाता पहुँचाने से जीवन में कष्टानुभूति होती है और उसमें समभाव रखने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसका वर्णन है। सुखविपाक में जन्म से सुख-समाधिपूर्वक पुण्य-फल भोगते हुए मोक्ष जाने वालों का कथन है।

### उत्तराध्ययन की ‘मूल’ संज्ञा

अंगशास्त्र की सारगर्भित वाणी का कथन करने के बाद प्रभु महावीर ने मोक्ष जाने के पूर्व उत्तराध्ययन सूत्र के अन्तर्गत पचपन पाप-विपाक, पचपन पुण्यविपाकों का वर्णन करते हुए छत्तीसवें अध्ययन में मरुदेवी माता का उल्लेख करते हुए परिनिर्वाण प्राप्त किया है। उत्तराध्ययन सूत्र प्रभु महावीर की अन्तिम वाणी है, इसलिए इस सूत्र में सारभूत चार अनुयोगों का कथन है, मात्र धर्म कथानुयोग का ही नहीं। उत्तराध्ययन सूत्र की बारह सौ वर्षों तक मूल सूत्र में गणना नहीं की जाती थी। इसके पश्चात् इसे मूल सूत्र में गिना जाने लगा। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार ये चार सूत्र ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप रूप मूलगुण साधना का वर्णन करने वाले हैं। इस दृष्टि से आचार्यों ने इन्हें मूल रूप में मूल सूत्र की संज्ञा दी हो, ऐसा लगता है।

आचार्य भगवन्त (श्री हस्तीमल जी म.सा.) की भाषा में कहूँ तो उत्तराध्ययन सूत्र जैन धर्म की गीता है। वैदिक-परम्परा में जो स्थान गीता का है, इस्लाम परम्परा में जो स्थान कुरान का है, ईसाई मत में जो स्थान बाइबल का है, बौद्ध परम्परा में जो स्थान धम्मपद का है वही स्थान जैन धर्म में उत्तराध्ययन सूत्र का है। इस सूत्र में जीवन के आदिकाल से अन्तकाल तक, विनय से लेकर जीव-अजीव का भेदकर मोक्ष जाने तक का सरल सुबोध शैली में वर्णन है। अतः इसे जैन धर्म की गीता के नाम से कहा जा रहा है। इसका एक-एक सूत्र जीवन में उतारने लायक है। उत्तराध्ययन सूत्र संजीवनी बूँटी है। संजीवनी जैसे सम्पूर्ण रोगों का निकन्दन कर सकती है, ऐसे ही विकारों के शमन के लिए उत्तराध्ययन संजीवनी है। समय के साथ इस पर और विवेचन करने की भावना है। ओम् शान्ति....।

□☆□

## विण्यं पाउकरिस्सामि

(उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम 'विनय' अध्ययन की प्रथम गाथा पर यह  
प्रवचन 26 जुलाई, 1994 को जोधपुर में दिया गया था।)

चातुर्मास की पावनता का विचार करते समय जल का महत्व प्रकट किया गया। जिस प्रकार जल जीवन है उसी तरह वीतरागवाणी भी भाव-जीवन है। जल के बिना द्रव्य प्राण पुष्ट एवं सशक्त नहीं रहते, उसी प्रकार वीतरागवाणी के बिना, ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र गुणों में शक्ति-सम्पन्नता एवं पुष्टता नहीं आती। इसी दृष्टि से तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी की अनमोल अन्तिम वाणी उत्तराध्ययन सूत्र के विचार रखे जा रहे हैं।

कल 'उत्तर' शब्द के तीन अर्थ किए गए थे। उत्तर यानी प्रधान, उत्तर यानी भव की समस्या का समाधान और उत्तर अर्थात् पश्चात् कहा जाने वाला। 'अध्ययन' का अर्थ करते हुए शास्त्रकारों ने आत्म-स्वाध्याय को अध्ययन कहा है। इससे ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र में रमणता होती है। स्वाध्याय करने के लिए विषय-वस्तु का जो विभाजन या वर्गीकरण है उसे भी अध्ययन कहा गया है।

भगवान् की इस अनमोल वाणी उत्तराध्ययन सूत्र का आदि अध्ययन 'विनय' है। शास्त्र के मूल शब्द सामने रख रहा हूँ-

संजोगा विष्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।

विण्यं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥

**अर्थ-**जो संयोग से मुक्त एवं अनगार है, उस भिक्षाजीवी साधु के ‘विनय’ को प्रकट करूँगा ।

तीर्थङ्कर भगवान् महावीर द्वारा आगम की अर्थरूप में वागरणा की गई । उस वाणी को गणधरों ने सूत्र रूप में गुम्फित किया । सूत्र कहलाता ही वह है जिसमें सार भाग अधिक होता है । शब्द थोड़े, अर्थ अधिक ।

### विनय का महत्त्व

भगवान् महावीर मोक्ष के साधन रूप ज्ञान-दर्शन-चारित्र का प्रथम कथन करने की बजाय पहले विनय का कथन करने की बात कह रहे हैं । ऐसा क्यों ? शास्त्र कहता है-विनय गुणों का आधार है । विनय ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्राप्ति का आधारभूत गुण कहा गया है । एक शब्द में कहें तो गुणों को दूषित करने वाला दुर्गुण है अहंकार । अवगुणों में गुणों की सुगन्ध डालने वाला कलारूप साधन है विनय । सम्पूर्ण श्रेष्ठताओं को विकारी भाव देने का दोष अहंकार में है । जैसे दूध में डाली गई काचरी, हलवे में पड़ा हुआ जहर वस्तु को विषाक्त बनाकर उन्हें अखाद्य-अपेय बना देता है उसी तरह मोक्षमार्ग में चरण बढ़ाने वाले ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुणों को भी अहंकार विषाक्त बना देता है । इसीलिए नीतिकार कहते हैं-नगर में प्रवेश करने के जैसे दरवाजे होते हैं, नदी-तालाब में उतरने के लिए जैसे घाट बनाये जाते हैं, जंगल में प्रवेश हेतु जैसे पगडण्डी होती है उसी तरह ज्ञान-दर्शन-चारित्र की योग्यता-पात्रता लाने के लिए विनय दरवाजा है, घाट है, पगडण्डी है । इसलिए अर्थ किया जाता है-‘विशेषेण नयति प्रापयति ज्ञानादिगुणमसौ विनयः ।’

अर्थात् जो जीवन में ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुणों को विशेष रूप से खींचकर लाये, उसे विनय कहते हैं ।

विनय का सामान्य, सरल, बोधात्मक अर्थ भी समाधान के रूप में

कहा जा रहा है- ‘विशिष्टो विविधो वा नयो नीतिर्वा विनयः।’ विविध प्रकार के या विशिष्ट नय अर्थात् नीति-मार्ग को भी विनय कहते हैं। यह विनय किनको करना चाहिये ? इस विनय के कौन अधिकारी हैं ? इसके ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय और तप विनय के रूप में चार भेद किये जाते हैं। पाँच भेद रूप भी कथन किया जाता है। अनुर्वत्न, प्रवर्तन, अनुशासन, सुश्रूषा और शिष्टाचार, ये विनय के पाँच भेद किये गए हैं।

एक विनयवाद है। तीर्थঙ्कर प्रभु महावीर के समय में 363 वाद कहे जाते थे। उनमें एक वाद का नाम विनयवाद था। क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद और विनयवाद ये चार भेद अन्य मतों में किये गए हैं, जिनमें एक मत है विनयवाद। ज्ञानी है, गुणी है, अवगुणी है, श्रेष्ठ है, हीन है, दीन है, निर्धन है, प्रत्येक प्राणी का विनय करना चाहिए। राजाधिराज को, महामन्त्री को, शीलवान् सज्जन पुरुषों को और श्रेष्ठिवर्यों को नमस्कार करने के साथ वहाँ कुत्से बिल्ली को भी नमस्कार किया गया है। उनके अनुसार जो भी आत्मा है, वह परमात्मा है। इस मत के अनुसार देवता, राजा, साधु, ज्ञाति, वृद्ध, अधम, माता तथा पिता को मन, वचन व काया से देशकालानुसार विनय किया जाता है। किन्तु यह विनय ज्ञानपूर्वक नहीं होता है।

### विनय के सात भेद

विनय को लेकर प्रभु महावीर ने सात भेद किए हैं-ज्ञान-विनय, दर्शन-विनय, चारित्र-विनय, मन-विनय, वचन-विनय, काया-विनय और लोकोपचार-विनय।

विनय किनका करना चाहिए ? इस सम्बन्ध को लेकर उन्होंने तीन सूत्र रखे हैं। ज्ञानियों का, श्रद्धावानों का और चारित्र आत्माओं का विनय करो। इन तीनों का आदर, सम्मान और विनय करना आवश्यक बताया।

विनय के तीन साधन हैं-मन, वचन और काया। उनके आधार पर मन-विनय, वचन-विनय एवं काया-विनय नाम दिए गए। लोक-व्यवहार की दृष्टि से जो विनय किया जाता है वह लोकोपचार विनय है। यह शिष्टाचार अथवा दूसरों की इच्छा की पूर्ति के लिए भी किया जाता है।

संसार में प्रत्येक प्राणी विनय करते देखा जाता है, इसलिए विनय के भेद करते समय कहा गया-अर्थ विनय भी है, काम विनय भी है, भय विनय भी है। अर्थ की प्राप्ति हेतु एक पुत्र अपने पिता का, एक बहू अपनी सास का, एक नौकर अपने स्वामी का, एक सामान्य क्लर्क अपने अधिकारी का विनय करते देखा जाता है। यह विनय स्वार्थ से है। कामना के वशीभूत होकर भी व्यक्ति विनय करते हुए देखा जाता है। गुण मिलाने हैं, कलाएँ सीखनी हैं, सामने वाले की सम्पदा को लेना है, ऐसी स्थिति में नम्रता एवं विनय करने वाला झुकता है, आदर सम्मान देता है। कभी भय से भी विनय किया जाता है। गलती हो गई, कुछ खो गया, नुकसान हो गया, ऐसी स्थिति में भय के मारे विनय करने वाले भी होते हैं। ये अर्थ-काम-भयादि विनय स्वार्थ के वशीभूत किए जाते हैं। यहाँ इस प्रकार के विनय का वर्णन नहीं किया जा रहा है। यहाँ जिस ‘विनय’ का वर्णन किया जा रहा है वह अहंकार को गला देता है।

### विनय : समस्त गुणों का मूल

अहंकार, माया आदि से रहित विनय, धर्म का मूल है। वह विनय आभ्यन्तर तप है। प्रभु महावीर कह रहे हैं-मैं संयोगमुक्त भिक्षाजीवी अणगार का विनय गुण प्रकट करूँगा। इसलिए करूँगा कि यह विनय जिसके जीवन में है, उसके गुण विकसित होते हैं, शोभित होते हैं। इसलिए अन्यत्र भी कहा गया है-

नभोभूषा पूषा कमलवनभूषा मधुकरो,  
 वचोभूषा सत्यं वरविभवभूषा वितरणं ।  
 मनोभूषा मैत्री मधुसमयभूषा मनसिजः,,  
 सदो भूषा सूक्तिः सकलगुणभूषा च विनयः ॥

विनय सभी गुणों का भूषण है। जैसे आकाश का भूषण सूर्य है, कमलवन का भूषण भ्रमर है, वाणी का भूषण सत्य है, वैभव का भूषण दान है, मन का भूषण मित्रता है, सज्जन का भूषण उसका सुभाषित वचन है, इसी तरह सब गुणों का भूषण विनय है।

शास्त्र का कथन है-विनयी मधुरभाषी । विनयशील व्यक्ति कुछ नहीं देकर भी प्रेम और विश्वास अर्जित कर लेता है और विशिष्ट पदार्थों को देकर भी विनयहीन व्यक्ति प्रेम तोड़ देता है। राबड़ी खिलाकर भी ‘फूल और फूल की पाँखुड़ी’ के अलावा मुझ गरीब के पास क्या मिल सकता है? इस बात को कहकर विनयी प्रेम अर्जित कर लेता है और पाँच पकवान खिलाकर मन में अहंकार रखने वाला एक बात कह देता है कि-जीवन में कभी ऐसे पदार्थ कहीं सेवन किये हैं क्या ? तो वह विद्वेष बाँध लेता है। शास्त्रकार कह रहे हैं- व्यवहार जगत् में जो लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर विनय करते हैं मोक्ष-मार्ग में उसका कथन नहीं किया जा रहा है। जिसके जीवन का यह अंतरंग गुण बना हुआ है, सहज बाहर और अन्तर का एक रूप रखकर जो प्रमोदभाव से सम्मान-सत्कार किया जा रहा है उस विनय का यहाँ वर्णन है और उसी विनय को धर्म का मूल कहा जा रहा है। दशवैकालिक सूत्र के नौवें अध्ययन में विनय को धर्म के मूल के रूप में कहा गया-

मूलाओ खंधप्पभवो दुम्मस्स, खंधाओ पच्छा समुर्वेति साहा ।  
 साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ से पुप्फं च फलं रसो य ॥

एवं धम्मस्स मूलं विणओ परमो से मोक्खो ।  
जेण किति सुअं सिग्धं, णिस्सेसं चाभिगच्छइ ॥दशवै. 9.1.2 ॥

अर्थात् जैसे वृक्ष के मूल में शाखा-प्रशाखा पुष्प-फल उत्पन्न होते हैं उसी तरह धर्म का मूल विनय है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण शाखा-प्रशाखा-पुष्प के रूप में हैं और मोक्ष उसका फल कहा गया है। विनयायत्ताः गुणाः सर्वे....। जिनके जीवन में विनय है, वे सभी गुण प्राप्त कर सकते हैं। विनय अर्थात् काया से झुकना, वचन से मधुर बोलना और मन से सम्मान की भावना होना।

#### चार भंग

भगवंत् (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) इसे चार भागों में बाँटते थे। कहीं काया का विनय है, मन का नहीं। कहीं मन में विनय है, काया में नहीं। कहीं मन और काया दोनों में विनय है, तो कहीं मन और काया दोनों में विनय नहीं है। प्राचीन परम्परा में कभी घर का कोई बड़ा बुजुर्ग घर में प्रवेश कर जाता तो आज की तरह जैसे नई वधू खुले मुँह, बिखरे बाल सामने आकर बोल जाती है, पहले ऐसा नहीं था। बुजुर्गों के प्रवेश करने के साथ बहू दुबक कर बैठ जाती, अंग-प्रत्यंग का संकोच कर लेती। क्रिया से वह बहू चरण नहीं छूती थी, पर मन में सम्मान की भावना थी।

एक बच्चा जो पाठशाला में अध्ययन कर रहा है, शिक्षक के आने पर क्रिया से खड़ा होता है, नमस्कार करता है, शब्दों से सम्मान करता है पर उसके मन में विनय नहीं है। ‘यह मास्टर पीटा बहुत है’ मन की भावना है कि इसकी बदली शीघ्र हो और यह चला जाय, बदली न हो तो पीरियड़ तो खत्म हो। बच्चा काया से तो झुक रहा है, पर मन से नहीं।

विनय का सर्वोत्कृष्ट रूप है तन, वचन एवं मन तीनों से विनय का

होना। विनय के इस रूप से सम्पन्न व्यक्ति सदगुणी को देखकर हाथ जोड़ेगा, नमस्कार करेगा, पधारो करके उच्चारण भी करेगा एवं मन से भी आदर देगा। कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जिनके न तन में विनय है, न मन में। पुत्र है, शिष्य है, पर विपरीत आचरण करने वाला है।

शास्त्र कह रहा है-गृहस्थ को विनय करना पड़ता है, व्यवहार की गाड़ी चलाने के लिए। एक गृहस्थ के यहाँ दूसरा गृहस्थ जन्म, शादी और मृत्यु जैसे प्रसंगों में इसलिए जाता है कि ‘मैं जाऊँगा तो वह भी आएगा। मैं नहीं गया तो वह भी नहीं आएगा।’ परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से जो स्वावलम्बी है, कार्य करने न करने की जिसे स्वतन्त्रता है, किसी के अनुशासन की जिसे आवश्यकता नहीं, ऐसा व्यक्ति विनय क्यों करे ?

### संजोगा विष्पमुक्कस्स

शास्त्र कह रहा है-यदि श्रुतज्ञान पाना चाहते हो, जीवन में सुख एवं शान्ति पाना चाहते हो तो विनय का आचरण करो। उत्तराध्ययन के विनय अध्ययन की प्रथम गाथा का पहला चरण है ‘संजोगा विष्पमुक्कस्स’ (संयोग से मुक्त हुए का)। संयोग एक सम्बन्ध है। सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं। एक समवाय सम्बन्ध, एक संयोग सम्बन्ध। समवाय सम्बन्ध गुणी का गुणों से सम्बन्ध है। गुणी से गुण त्रिकाल में अलग नहीं किए जा सकते। ऐसे सम्बन्ध को समवाय सम्बन्ध कहते हैं। जैसे मिश्री में मिठास, घृत में चिकनापन, मिर्ची में चरकापन, नमक में खारापन, गुण-गुणी का सम्बन्ध है। मैं यहाँ संयोग संबंध की बात कह रहा हूँ। संयोग दो प्रकार के हैं-बाह्य और अंतरंग। बाह्य संयोग में शरीर का संयोग भी है, कुटुम्ब का संयोग भी है। माता-पिता का संयोग भी है, पश्चात् में ससुराल पक्ष का संयोग भी है। आन्तरिक संयोग में काम, क्रोध, ईर्ष्या, मद, लोभ आदि दोषों का संयोग है। इन दोनों संयोगों से

मुक्त अणगार के लिए 'मुक्कस्स' शब्द प्रयोग किया गया है। विष्पमुक्कस्स अर्थात् इस संयोग को प्रकर्ष रूप से यानी मन से छोड़ने वाले। कई बार कई लोग घर छोड़ देते हैं, माँ-बाप को छोड़ देते हैं, द्वेष से, राग से या स्वार्थ से ऐसे संयोग छोड़ने वाले मिलते हैं, पर मन उनका मानता नहीं, अन्तरंग संयोग भी छूटता नहीं।

इस प्रकार छोड़ना बाहर से छोड़ना है, भीतर से नहीं। कोई घर में रहकर भी कलह एवं द्वेष के कारण घर वालों से नहीं बोलता है। 'थूँ थारे मैं म्हारे' क्या यह वास्तव में बोलना बंद है। मन से बंद नहीं है, बन्द है तो वचन से। आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो रही है, आप कुछ और चाहते हैं, वह कुछ और। घर में चाह की पूर्ति नहीं हो रही है, इसलिए घर छोड़ दिया। कह रहा है आज से मैं तुम्हारी देहली पर नहीं चढ़ूँगा। ऐसे छोड़ने वालों की यहाँ बात नहीं कही जा रही है। भय, लालच, स्वार्थ एवं इच्छाओं की अपूर्ति छोड़कर भी ये लोग भीतर से जुड़े रहते हैं।

अपना एक घर छोड़ दिया, सौ बसा लिए, ऐसा व्यक्ति भी संयोग से मुक्त नहीं है। एक ने गहना छोड़ दिया, पर जो लेकर आते हैं उनसे पूछता है- क्या लाया ? कहाँ से लाया ? किस भाव लाया ? मतलब, छोड़ने के बाद भी पूछताछ की जा रही है। घर छोड़ दिया पर दूसरों से पूछ रहा है-कितने लड़के हैं ? क्या धन्धा करते हैं ? यहाँ ऐसे छोड़ने वालों की बात नहीं कही जा रही है। जिन्होंने संयोग को मन से छोड़ दिया, ऐसे अणगार की बात कही जा रही है बाहर से घर छोड़ने वाले तो कई हैं। कई ऐसे हैं जिनके घर हैं ही नहीं, सड़कों पर जीवन बिताते हैं। एक के घर छूट जाता है, एक के घर होता ही नहीं। किन्तु घर छोड़ने का अर्थ है घर की ममता छोड़ना। जिनके पास है नहीं, उसका त्याग, त्याग नहीं। बहुत बार सुना होगा- 'म्हारै सोना री थाली में

खावणा सोगन है।' जो है नहीं, उसका त्याग कैसा? वस्तुतः जो प्राप्त है उसको छोड़ना त्याग है। जिनके घर है, परिजन है, और घर-परिजन भी स्नेह वाले हैं उनके लिए 'विष्पमुक्क' विशेषण कहा गया है।

### भिक्खुणो

ऐसे संयोगविप्रमुक्त होते हैं भिक्षु। इसलिए कहा गया-भिक्खुणो। वे भिक्षाजीवी हैं। आचार्यों ने भिक्षा के भी तीन भेद किये-दीनवृत्ति, पौरुषधनीवृत्ति और सर्व सम्पत्करी भिक्षा।

जो अपंग है, लूले लँगड़े हैं, अन्धे हैं, जिनकी इन्द्रियाँ काम नहीं करती, जिनका मस्तिष्क काम नहीं करता और जो पुरुषार्थ करने लायक नहीं हैं, अनाथ हैं। ऐसे लोगों द्वारा भिक्षाजीवी होना दीनवृत्ति की भिक्षा है, दूसरी भिक्षा है पौरुषधनी अर्थात् जो सशक्त हैं, पूर्ण इन्द्रियों वाले हैं पर माँगने की आदत पड़ गई, इसलिए माँग कर खाते हैं, उनकी वृत्ति पौरुषधनी है। इससे पुरुषार्थ का नाश होता है। इस भिक्षा को लेने वाले और देने वाले दोनों दोषी हैं।

एक कथा मिलती है। प्राचीन समय में ऐसे भी राजा-महाराजा थे, कर्ण की तरह, जहाँ आने वाला कोई खाली नहीं जाता था। एक दिन, एक महात्मा भिक्षा के लिए आए। पूछा गया- 'महाराज ! क्या चाहिए ?'

कहने लगे- 'मुझे जो चाहिए वह मिलेगा या नहीं, इसमें संशय है।'

'महाराज ! आपने पहिचाना नहीं। आप गाँव के हर व्यक्ति से जाकर मेरे सम्बन्ध में पूछ सकते हैं। आप कह कर तो देखें वह मिलता है या नहीं।'

'आप देंगे ? क्या आपसे बढ़कर और कोई दानी नहीं ? मैं तो मानता हूँ आपका देना, देना नहीं आलस्य बढ़ाने वाला है। आप उनके पास जाओ जिनका दान देखकर मैं आपसे भिक्षा की याचना करूँगा।' राजाजी एक भाई

के पास पहुँचे, जो भील व्यक्तियों के बीच में रहकर उनके बच्चों को पढ़ा रहा था। अच्छा ज्ञानी था, सुन्दर रूपवाला था एवं अच्छे घराने का था, बिना पैसे लिये पढ़ा रहा था। राजा ने पूछा - 'आपका गुजारा कैसे होता है?' बोला - 'थोड़ी सी जमीन है उससे।'

राजा ने देखा कि वह व्यक्ति ज्ञान बाँट रहा है। भीलों को योग्य बना रहा है। वह उन्हें देकर आलसी नहीं, अपितु उद्यमी बना रहा है। राजा समझ गया कि दान पौरुष का हनन करने वाला नहीं होना चाहिए। आशय यह है कि पुरुषार्थ को हनन करने वाली भी भिक्षा होती है।

तीसरे नम्बर की सर्व सम्पतकारी भिक्षा उत्कृष्ट है। जो आरम्भ-परिग्रह के त्यागी हैं, स्वयं संग्रह नहीं करते, बनाते नहीं, मात्र साधना के लिए ग्रहण करते हैं ऐसे भिक्षाजीवी साधकों के लिए उत्तराध्ययन सूत्र में विनय की बात कही गई है।

यह विनय जीवन में जिस तरह गुणों को लाता है, मोक्ष की ओर बढ़ाता है समय के साथ आगे कहने की कोशिश रहेगी। जो विनय गुण को मिलाने का प्रयास करेंगे वे शांति, समाधि एवं आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

## जीवन निर्माण का सूत्र : विनय

(28 जुलाई, 1994 को जोधपुर में दिया गया प्रस्तुत प्रवचन जीवन-निर्माण में विनय के महत्व का स्थापन करने के साथ अविनीत के तीन दुर्गणों दुःशीलता, कृतघ्नता और मुखरीवचन का भी विवेचन कर रहा है।)

तीर्थঙ्कर भगवान् महावीर की अनुपम-अनमोल वाणी जीवन के हर क्षेत्र में विनय का महत्व प्रतिपादित कर रही है। प्रभु की अन्तिम वाणी ‘उत्तराध्ययन’ में जीवन निर्माण हेतु विनय-धर्म को प्रधानता देकर प्राणी मात्र को विनय अपनाने का दिव्य सन्देश दिया गया है।

### दो तरह के प्राणी

संसार में प्राणियों की दो श्रेणियाँ हैं। एक श्रेणी के प्राणी वे हैं जो जीवन चलाते हैं और दूसरी श्रेणी के प्राणी वे हैं जो जीवन का निर्माण करते हैं।

### जीवन निर्वाह : समस्त प्राणियों में

जीवन चलाने वाले प्राणियों की श्रेणि में संसार के छोटे-बड़े, त्रस-स्थावर, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी प्राणियों को लिया जा सकता है। वृक्ष एकेन्द्रिय है। वह भी- “मेरे जीवन के लिए आर्द्रता, कोमलता, मुलायममिट्ठी आदि कहाँ से प्राप्त हो सकते हैं।” इसका खयाल कर उसी ओर अपनी जड़ें फैलाने का प्रयास करता है। बीच में पत्थर आ गया, चट्टान ने व्यवधान पैदा

किया तो वह वहाँ से जड़ें हटाकर, जिधर उसे जीवन चलाने के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है, उस ओर बढ़कर जड़ें फैलाता है।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय आदि प्राणी भी जीवन चलाने का ही कार्य करते हैं। एक चींटी अपने योग्य खाद्य-पदार्थ की ओर बढ़ती है। खाने योग्य पदार्थ कहाँ मिल सकता है? इस बात की गवेषणा में दिनरात दौड़ लगाती रहती है वह। विक्षेप वाला कोई भी कारण उपस्थित होने पर वह अपनी राह बदल देती है। आप उसके मार्ग में राख डाल दीजिए, पाउडर या मिट्टी का तेल छिड़क दीजिए, चींटी मार्ग बदल कर नया मार्ग बना लेती है। चाहे नया मार्ग कितना ही लम्बा हो, पूरा मैदान ही क्यों न पार करना पड़े पर वह साहस के साथ बढ़कर जीवन चलाने की सामग्री प्राप्त कर ही लेती है।

तिर्यञ्च प्राणी जीवन चलाने की शिक्षा लेने किसी पाठाशाला में नहीं जाते। पेट भरने के लिए किस समय कौनसी कला, किस रीति से मिलानी चाहिए, यह बात कुत्ता भी जानता है। अगर लाठी लिए कोई उसे रोटी डालना चाहता है तो वह दूर खड़ा पूँछ हिला-हिला कर रोटी को ललचाइ नजरों से देखता रहता है, जीभ बाहर निकालता है, जरूरत पड़ी तो लेट कर पेट भी बताता है, किन्तु नजदीक नहीं आता। रोटी यदि किसी बच्चे के हाथ में है तो वह झपट कर छीन लेने की कोशिश करता है। इन्सपेक्टर आने पर नोट डालना और भोला आदमी आए तो उसकी जेब साफ करने का प्रयत्न जिस तरह आप लोग करना जानते हैं, वह कला इन प्राणियों में भी प्रकृति प्रदत्त होती है। एक बैल अपने से ताकतवर को देखता है तो पूँछ नीची कर दूर से निकल जाता है। कम शक्तिशाली को देखता है तो पैरों से धूल उछालता है, ललकारता है, पूँछ ऊँची करता है और उसे भयभीत कर भगाने का प्रयत्न करता है।

बन्धुओं ! कुछ बातें हैं, जो प्राणी-मात्र में कमोबेश रूप से विद्यमान होती ही हैं। संस्कृत के एक श्लोक में बताया गया है-

**आहारनिद्राभयमैथुनश्च, सामान्यमेतदूपशुभिर्नराणाम् ।  
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥**

कहा है-आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चार बातों में मनुज और पशु सामान्यतया एक समान हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं। दोनों ही खाते-पीते हैं, शयन करते व निद्रा लेते हैं, भयभीत रहते हैं और मैथुन सेवन करते हैं। ये चारों बातें जीवन को चलाने वाली हैं।

### **जीवन निर्माण : विरले प्राणियों में**

विशेषता जीवन चलाने में नहीं, जीवन का निर्माण करने में है। अज्ञान रूप अन्धकार को हटाकर नीति और धर्म के माध्यम से जीवन का निर्माण कर आत्मोन्मुखी बनना हर व्यक्ति के वश की बात नहीं है। सूत्रों का पठन-पाठन और आगमिक-ज्ञान जीवन चलाने के लिए नहीं, अपितु जीवन निर्माण के लिए उपयोगी है।

### **विनय से जीवन निर्माण**

वाणी वह जो जीवन का निर्माण करे, जिसमें कोमलता, मधुरता, विनम्रता हो, जो ईर्ष्या-द्वेष की दीवारों को तोड़े और स्नेह-प्रेम की धारा प्रवाहित करे। वाणी एक-दूसरे के ज्ञान में सहायक बन सकती है, मुक्ति से जोड़ सकती है। वाणी में, व्यवहार में विनय-धर्म आवश्यक है, अन्यथा सड़े कान वाली कुतिया की भाँति जहाँ भी जाएँगे, दुत्कारे जाएँगे-निकाल दिए जाएँगे।

उत्तराध्ययन-सूत्र में प्रभु ने विनय-धर्म को जीवन-निर्माण का, आत्म-

विकास का सूत्र बताया है। विनय-धर्म का सन्देश उस दिव्यात्मा के समय में जितना उपयोगी था, आज के अति भौतिकवादी युग में उसकी उपयोगिता और भी अधिक है। आज विश्व-भर में अनुशासनहीनता, अशांति, उच्छृंखलता, अनैतिकता और चारित्रिक कमियाँ बढ़ गई हैं। इन्हें दूर करना है तो महावीर की वाणी को, उनके सूत्रों को जीवन में उतारना होगा। अन्यथा वही होगा जो प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र के पहले अध्याय की चौथी गाथा में फरमाया है-

जहा सुणी पूङ्कण्णी, णिक्कसिज्जइ सव्वसो ।

एवं दुस्मीलपडिणीए, मुहरी णिक्कसिज्जइ ॥

गाथा में सड़े कान वाली कुतिया से दुष्ट स्वभाव वाले, दुर्विनीत, दुराचारी व्यक्ति की तुलना करते हुए कहा गया है कि जैसे सड़े कानवाली कुतिया को, कान में पीप-रस्सी पड़ जाने या कीड़े पड़ जाने के कारण सभी जगह से निकाल दिया जाता है, दुत्कार कर भगा दिया जाता है, ठीक वैसे ही जो व्यक्ति दुराचारी हैं, प्रत्यनीक (कृतघ्न) हैं, मुखरी (वाचाल) हैं-उन्हें भी सभी स्थानों से निकाल दिया जाता है।

### दुर्विनीत का पहला अवगुण : दुःशीलता

दुर्विनीत व्यक्ति के इस गाथा में तीन अवगुण या लक्षण बताए गए हैं। पहला अवगुण है उसका दुश्शील होना, दुराचारी होना, सदाचार-रहित होना। शील जीवन का शृंगार है, समाज में प्रतिष्ठा दिलाने वाला है, जीवन को ऊँचा उठाने वाला है अविनीत व्यक्ति सदाचार और शील के महत्व को जानते-बूझते हुए भी अवगुण-आराधक बन कर दुराचार व दुःशील में प्रवृत्त होता है।

दुराचारी व्यक्ति 'शील' को समझ कर भी विपरीत आचरण में खुश

होता हुआ निरन्तर अधःपतन को प्राप्त होता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि गुणों के महत्व को जान कर भी हिंसा आदि में अपने-आपको झौंक देता है। उसे बताया जाता है कि हिंसा अवगुण है, अहिंसा सदगुण है। झूठ प्रतीति को घटाने वाला है, सत्य विश्वास को बढ़ाने वाला है। चोरी अस्थिरता देती है पर अचौर्य स्थिरता प्रदान करता है। मैथुन जीवन-विनाश का क्षण है तो ब्रह्मचर्य जीवन-विकास का कारण। परिग्रह असन्तोष व अशांति दाता है, जबकि अपरिग्रह से संतोष, शांति व सुख मिलता है। शीलवान् ही संसार में शोभा पाते हैं, दुश्शील व्यक्ति अपयश व निन्दा के भागी होते हैं। दुराचार समस्त पद-प्रतिष्ठा को धूल में मिलाने वाला होता है। हजारों-लाखों व्यक्ति इन हितोपदेशों को, जीवन निर्माणकारी सूत्रों को सुनते हैं, पर अज्ञानी जीव शीलरूप सदाचरण का त्याग कर कुशीलसेवन में निरत हो जाते हैं।

शास्त्रों में अनेक ऐसे उद्धरण मिलते हैं। आपने उन्हें पढ़ा है, सुना है, आप जानते हैं, ऐसे अनेक उदाहरण ऐसी अनेक घटनाएँ। इन सबसे एक ही स्वर, एक ही शिक्षा, एक ही सबक हमें प्राप्त होता है- ‘‘सुख दियाँ सुख होत है, दुःख दियाँ दुःख होत।’’ आप क्या चाहते हैं-सुख या दुःख ? आप दूसरों को क्या देते हैं-सुख या दुःख ? चाहना सुख की है, पर दूसरों को देते दुःख हैं तो कैसे प्राप्ति हो सकेगी सुख की ?

व्यापारी का कार्य है व्यापार करना। धन्धा, व्यापार या व्यवसाय नीति से होना चाहिए। नीति की कमाई में बरकत है। मुझे एक व्यक्ति मिला। व्यापारी था। बोला- ‘‘महाराज ! मैंने हजारों-लाखों का धन्धा किया, पर जीवन में कभी झूठ नहीं बोला। मुझे तो झूठ से चिढ़ है। दूसरा भी यदि कोई झूठ बोले तो मुझे बुरा लगता है।’’ मैंने उस व्यक्ति को देखा। काफी कुछ सुन-

रखा था। उससे कहा-“आज जो कह रहे हो, उसमें सत्य कितना है, जरा चिन्तन करके देखें ?”

बन्धुओं ! आप पर भी तो कहीं यह बात लागू नहीं हो रही ? आप भी चिन्तन करें, अपने अन्तर में झाँक कर देखें ! कितना सत्य और कितना झूठ बोल लेते हैं आप ? हँसी-मजाक में व्यापार-व्यवसाय में, कहने-बोलने में और झूठी प्रतिष्ठा को बनाए रखने में क्या-क्या असत्य-भाषण कर जाते हैं, अति सहजता से ! आप वस्तुतः क्या हैं और अपने आप को दिखाते क्या हैं- जरा विचार तो करिए। मुँह से कहते-“जाओ लाख और रहो साख” पर काम साख गँवाने का करते हैं। यदि साख चली गई तो ?

### दूसरा अवगुण : कृतधनता

दुर्विनीत का दूसरा लक्षण बताया है प्रत्यनीकता अर्थात् विरोधी आचरण रूप कृतधनता। दो तरह के व्यक्ति होते हैं एक कृतज्ञ, दूसरे कृतधन। कृतज्ञ का अर्थ है कृत अर्थात् किए गए को ‘ज्ञ’ अर्थात् जानने-मानने वाला। कृतधन इसके ठीक विपरीत होता है, अर्थात् वह अपने प्रति किए गए उपकारादि को भुला देता है, उसकी स्मृति तक को मिटा देता है, याद दिलाओ तो विपरीत भाषण, आचरण करता है।

दूसरों के किए गए उपकार पर पानी फिरा देने वाले कृतधन व्यक्ति कहीं टिकते नहीं। कोई उनको आदर नहीं देता। सभी उनसे दूर रहना, उनको दूर रखना पसन्द करते हैं। वे घर से निकाल दिए जाते हैं और जन-जन से तिरस्कृत होते हैं। आज के युग में कृतज्ञ कम हैं और कृतधन व्यक्तियों की भरमार है। परिवार से ही चलिए। परिवार में माँ का दर्जा सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, पर उसी माँ से सम्बन्ध तोड़ने में पुत्र को तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती।

बन्धुओं ! इस विश्व में सम्भवतः माता जितनी सहनशीलता, क्षमा या धैर्य किसी में नहीं होता । वह बच्चे को नौ माह अपने पेट में रखती है, उसे जन्म देने का नारकीय-दुःख भोगती है, स्वयं गीले में सोती है, उसे सूखे में सुलाती है, उसके एक-एक आँसू पर अपने हजार-हजार सुख न्यौछावर करती है । अँगुलि पकड़कर चलना सिखाती है, थई देकर खड़े होना सिखाती है, एक-एक उच्चारण को घण्टों तक बार-बार बुलाकर बच्चे को दादा, पापा, मामा कहना सिखाती है । संतान कितनी ही बार अशुद्ध बोले, माँ पुनः पुनः बुलवाती है । संतान कितनी ही बार हिम्मत हारे, नीचे बैठे, गिर जाए पर माँ पुनः पुनः उसे खड़े होना, चलना सिखाती है । वह कभी घबराती नहीं, हैरान-परेशान नहीं होती । धैर्य उसका कभी साथ नहीं छोड़ता । आज नहीं तो कल, दस दिन बाद, दो माह बाद बच्चा खड़ा होगा, चलेगा, यह सोचकर माँ ने कितना धीरज रखा ।

ऐसे माता-पिता जिन्होंने इतने कष्ट उठाए, पाला-पोषा, बोलना-चलना सिखाया, भय से मुक्ति दिलाई, बीमारी में सेवा की, पढ़ाया-लिखाया, सामाजिक बनाया और यदि कहूँ तो संसार में जीने लायक जीवन का निर्माण किया । वे ही बेटे माता-पिता से अलग तो नहीं होते ? उनसे अलग होना क्या है ? यही तो कृतघ्नता है । पत्नी मिली, नौकरी या व्यवसाय मिला और माँ-बाप से किनारा कर लिया । बन्धुओं ! क्या उनके उपकारों के ऋण को कभी चुकाया जा सकता है ? ऐसी सामर्थ्य है किसी में ?

उपकार भी है, ऋण भी है, चुका सकते नहीं, परन्तु छोड़ सकते हैं । कोई शादी की बात लेकर अलग हो रहा है और कह रहा है- “भईसा घणाई चोखा है पण ए म्हारो व्याव जिणरे सागे करनी चावे म्हैं उणरे सागे व्याव नहीं

करणो चाउँ।” इसी तरह कोई पत्नी का पक्ष लेकर और सास-ससुर की शिक्षा में आकर माँ-बाप को छोड़ देते हैं तो कोई बँटवारे की बात को लेकर अलग हो जाते हैं। एक भाई कुछ भोला है, उसको माँ-बाप ने कुछ अधिक दे दिया। आप कमाने में समर्थ हैं, चतुर हैं अतः आपको थोड़ा कम दे दिया, बस अलग हो गए आप उनसे। अनेक हैं ऐसे व्यक्ति। इनकी गिनती आती है कि ऐसे हुए को नहीं मानने वालों में, कृतघ्नों में।

आप श्रावकों में ही नहीं, यहाँ हम श्रमणों की श्रेणी में भी इस तरह के कृतघ्न हो सकते हैं। सं. 2020 में अजमेर में साधु-सम्मेलन का आयोजन हुआ। अनेकानेक श्रमण-संघ पदाधिकारी पधारे, अन्य विद्वान् ज्ञानी श्रमण भी पधारे। आचार्य भगवंत के साथ मैं भी वहाँ था। एक बार एक संत से वार्ता का अवसर आया। उन महानुभाव ने अपने गुरु भगवंत का साथ छोड़ दिया था। मैंने उनसे पूछा- “तुमने अपने गुरुजी का साथ क्यों छोड़ दिया ? जब तुम दीक्षा लेने आए तब श्रमण-धर्म का, आगम-ज्ञान ‘अ’ ‘ब’ भी नहीं जानते थे, तुम्हारे गुरुदेव ने न जाने कितनी मेहनत कर तुमको सिखाया, पढ़ाया और तैयार किया। तुम्हें योग्य बनाने के लिए उन्होंने अपनी साधना, अपना स्वाध्याय, अपना ज्ञान-ध्यान छोड़कर समय निकाला, ऐसे उपकारी गुरु से तुम अलग कैसे हो गए ?”

जानते हैं आप, क्या जवाब दिया उस श्रमण ने ? उसने कहा- “म्हारा गुरुजी यूँ तो सगला काम म्हारे वास्ते करिया पण म्हारा सूँ बखाण नी दिरावता, इण वास्ते आगे वेगो। आवे जिणाँ सूँ एहीज बोले, म्हणें तो बोलणादे कोनी, जरे पछे काँई फायदो ?” ऐसे अन्य बीसियों दृष्टान्त हमें अपने आस-पास के समाज में मिलेंगे।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के प्रवचनों में एक दृष्टान्त पढ़ा था। एक बहन थी, अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति वाली। अनेक वर्षों तक सामायिक-स्वाध्याय, नित्य-नियम, माला आदि की धर्म-आराधना करती रही। मुनिराज या सती-मण्डल आता तो प्रार्थना में जाती, प्रवचन में जाती, चौपई (मध्याह्न व्याख्यान) में भी जाती, गोचरी का निवेदन करती। कुछ वर्षों बाद उस बाई ने स्थानक में आना बंद कर दिया, धर्म-ध्यान छोड़ दिया, आसन-मुँहपति-माला ऊँची सरका दी।

पहले यहाँ आचुके कोई संत दुबारा वहाँ पथारे। धर्मनिष्ठ बाई की अनुपस्थिति देखी तो पूछ बैठे-अमुक बाई कहाँ है ? है या नहीं ?

उत्तर मिला-है महाराज ! घर पर ही है।

महाराज-क्या बीमार है ?

उत्तर मिला-नहीं बाबजी, पर उसे अब धर्म से विरति हो गई है, क्योंकि पोता (पौत्र) नहीं हुआ।

महाराज ने संदेश भेज कर उसे स्थानक में बुलाया। वह आई तो मुनिराज ने पूछा-“धर्म-ध्यान कैसा चल रहा है ?”

बाई ने कहा-“बाबजी ! धर्म घणोई करियो। घिसगी धरम करताँ-करताँ पण अबे धरम सूँ म्हारी आस्थाहीज मिटगी। एक पोता री मन में ही, इण सारु ही धरम रो ढिंग लगायो पण म्हने पोतो नहीं मिल्यो।”

मुनि-बहू-बेटे में तो झगड़ा नहीं है ?

बाई-नहीं बाब जी ! बहू सुशील है, दोनाँ रो प्रेम अणूतो है।

मुनि-कोई बीमारी ?

बाई-बाबजी ! रोग तो नख में ही कोनी।

इसी तरह अनेक प्रश्न, अनेक उत्तर चले। तब मुनिश्री ने कहा-

“देवी ! ऐसा आज्ञाकारी पुत्र, ऐसी सुशील पुत्रवधू, उनका निरोगी स्वस्थ शरीर, दोनों का आदर्श प्रेम, तुम्हारे प्रति उनका सेवा-भाव ये सब धर्म की देन है।”

“बहन ! धर्म रो काम पोता-पोती देवणो नहीं है। अच्छा कर्म करो, धर्म-ध्यान करो, भक्ति-भाव राखो तो फल अच्छो ही ब्हेला। धर्म सूँ नातो मत तोड़ो बाई ! धर्म सूँ गाढ़ जोड़ो, आस्था बढ़ाओ।”

मुनिश्री ने समझाया, बाई पुनः धर्म में सुस्थित हुई। उसने मुनिश्री का आभार माना। बात कृतघ्न की कर रहा था। अनेक लोग ऐसे हैं जो आभार नहीं मानते। उनके सौ काम कर दो और एक काम मत करो तो किए हुए सौ कार्यों पर पानी फिर जाएगा। प्रभु फरमाते हैं-प्रत्यनीक मत बनो, किए हुए का आभार मानो।

### तीसरा अवगुण : मुखरी वचन

दुर्विनीत का तीसरा लक्षण बताया है-मुखरी अर्थात् वाचाल। “मुखरी” शब्द के तीन अर्थ लिए जाते हैं। एक बिना मतलब बोलने वाला, दूसरा-जिनका मुख शत्रु है अर्थात् जिन्हें ढंग से बोलना नहीं आता। मारवाड़ी में कहूँ तो-“बाई केवता राँड आवे।” तीसरा-जिन्हें सीधी बात कहने की आदत नहीं, जो हर बात में आड़ा-टेढ़ा ही बोलते हैं। बिना मतलब बोलने वाले कभी चुप नहीं बैठते। जैसे रेडियो का बटन आँन करने पर रेडियो बोलने लगता है वैसे ही इन लोगों से कुछ पूछ लो, थोड़ा छेड़ लो फिर ये बोलते ही चले जाते हैं। स्थिति ऐसी आती है कि सुनने वाले को इन्हें हाथ जोड़कर वहाँ से उठना पड़ता है। लोग उन्हें देखकर अपना रास्ता तक बदल देते हैं, उनसे बचने के लिए।

मुखरी (मुख + अरी) प्रकृति की एकतपस्वी बाई ने तपाराधन किया। आप उसकी साता पूछने चले गए। अपनी प्रकृति के अनुसार वह कहेगी-

‘अब आया हो म्हारी साता पूछण ने, तपस्या पूरी हूगी अबे तो काले म्हारे पारणो है।’ पूछने आए थे साता, पाँच बात सुननी पड़ी।

किसी ने भण्डारी सा से पूछा- “कीकर भण्डारी सा, बैठा हो !”

फटाक से जवाब मिल जाएगा- “सुहावे कोनी तो गुड़ाय दे भाई।”

और यदि बिना उनको बतलाए आगे निकल गए तो भी सुनना तो पड़ेगा ही काल रा जाया-जनमिया, थोड़ी पढ़ाई कई कर लीवी, ऐड़ी अकड़ाई। देखो तो राम-राम करणाँ सूँ ही गया।” ऐसे व्यक्ति हर बात में लड़ने को तत्पर रहते हैं। ऐसे अनेक अविनीत- दुर्विनीत कदम-कदम पर यहाँ मिल जाएँगे।

बन्धुओं ! दुर्गुणों को छोड़ो। ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि आत्म-गुणों के साधन विनय से प्रीति करो। विनय तप है, विनय धर्म है, विनय ही जीवन निर्माण की कला है। विनयवान् बनो, धर्म की आराधना करो, तप की साधना करो तभी सुख, शांति व आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी।

□☆□

## जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय (2)

(29 जुलाई 1994 को जोधपुर में फरमाया गया यह प्रवचन संस्कार निर्माण हेतु अविनय को त्याग कर विनय अपनाने पर बल दे रहा है।)

### श्रमण के लिए विनय

तीर्थঙ्कर भगवान् महावीर की अनुपम, अनमोल वाणी जीवन के हर क्षेत्र में विनय-व्यवहार पर बल देती हुई, प्राणीमात्र के लिए विनय को आवश्यक बता रही है। हम साधकों के जीवन में अपने से दीक्षा-पर्याय में बड़े, पूज्य गुरुजनों के प्रति विनय की आवश्यकता बताते हुए साधक की दैनन्दिनी के समस्त कार्यों में विनय को प्रभु ने प्रधानता देने की बात कही है। शास्त्रों में साधक के लिए प्रतिदिन आवश्यक रूप से सात बार गुरु-विनय का स्पष्ट उल्लेख है।

सर्वप्रथम प्रातःकाल के पूर्व जागरण के साथ ही अपने गुरुदेव एवं पूज्य-संतों को वन्दन-विनय करना चाहिए, जिससे गुरुवर को जानकारी हो कि शिष्य निद्रा-प्रमाद का त्याग कर चुका है।

प्रभु-स्मरण, स्वाध्याय आदि रात्रि के चतुर्थ प्रहर का शास्त्र-निर्देशित कार्य करने के बाद साधक व्यतीत की हुई रात्रि में लगे दोषों की आलोचना के लिए प्रतिक्रमण रूप आवश्यक करता है। आलोचना करने के समय प्रतिक्रमण के पहले पाठ से ही साधक कहता है ‘इच्छामि ण भंते ! तुम्हेहि अब्भणुण्णाए’

अर्थात् हे भगवन्! रात्रि सम्बन्धी प्रमाद-परिवर्जनार्थ प्रतिक्रमण के लिए आपकी आज्ञा चाहता हूँ। साधक प्रतिक्रमण की आज्ञा के लिए वन्दन-विनय करे।

तीसरे-विनय-व्यवहार के अन्तर्गत साधक सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखना के समय गुरुवन्दना करता है।

प्रतिलेखना से निवृत्त होकर वह गुरु के निकट जाता है और वन्दन कर पूछता है- ‘भगवन्! आज दिन में मुझे क्या करना चाहिए? गुरुदेव! आज मुझे जीवन में चेतना जागृत करने वाला, अज्ञानांधकार को हटाने वाला, आत्मा-परमात्मा में लीन कराने वाला स्वाध्याय करना है या कर्मों की निर्जरा करने वाले स्वर्धर्मी-सहयोगी संतों की सेवा में लगना है-अनुज्ञा फरमाइए।

इसके अतिरिक्त विनय के पाँचवे, छठे एवं सातवें प्रसंग भी हैं। भिक्षाचरी के लिए जाते समय, स्वाध्याय-धर्मकथा-शास्त्रवाचन आदि के लिए गुरु के द्वारा जैसा कहा गया है वैसा करने से पूर्व एवं किसी भी कार्यवशात् स्थानक-भवन अथवा जहाँ भी स्थित है उस स्थान को छोड़ते समय वन्दन-विनय आवश्यक है। ‘मत्थएण वन्दामि’, ‘आवस्सही’ आदि शब्द जो साधक प्रयुक्त करते हैं, वे केवल परिपाटी की लीक पीटने के लिए नहीं, अपितु गुरु के प्रति विनय-व्यवहार प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

### गृहस्थ के लिए विनय

श्रमण-साधक के साथ ही गृहस्थ-साधक के जीवन में भी इसी प्रकार विनय-व्यवहार का कथन मिलता है। नीतिवचनामृत में कहा गया है-

‘ब्रत-विद्या-वयोऽधिकेषु नीचैराचरणं विनयः।’

पूर्ण या देश चारित्र रूप ब्रत-प्रत्याख्यानों में जो बड़े हों, अन्य विद्या कला आदि सामाजिक-पारिवारिक विद्याओं, रिश्तों, पदों आदि में बड़े हों या फिर आयु में बड़े हों तो उनके प्रति विनय का आचरण करना चाहिए। इस विनय-व्यवहार से गृहस्थ-समाज में सामाजिक-जीवन प्रेम और स्नेह से परिपूर्ण

बनता है तथा छोटे और बड़ों में मृदुता-कोमलता-स्निग्धता का वातावरण निर्मित होता है।

### विनय का आशय

क्या है विनय ? विनय का सीधा-सादा अर्थ है बड़ों से व्यवहार करते समय अपने-आपको नम्र दिखाना। अगर कहीं बैठने की व्यवस्था में स्थान निर्धारित करना हो तो पहले बड़ों को बैठने दें, उनके बैठने पर छोटे बैठें। बड़ों के बैठने का स्थान ऊँचा हो। पास भी बैठना हो तो इस ढंग से बैठें कि देखते ही, बिना पूछे ध्यान में आ जाय कि कौन बड़ा है और कौन छोटा। बड़ों के समक्ष हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर बैठें।

श्रमण-समाज के लिए तो स्पष्ट उल्लेख है कि-

**नीयं सेज्जं गडं ठाणं, नीयं च आसणाणि य।**

**नीयं च पाए वंदेज्जा नीयं कुज्जा य अंजलिं ॥**

गुरु से हो शय्या नीची, गति स्थान और हो निम्नासन।

अंजलि को नीची करे तथा सिर झुका करे पद का वन्दन ॥

अर्थात् विनीत शिष्य शय्या, गति, स्थान गुरु से नीचा रखे और आसन नीचा लगावे। नीचा होकर चरणों में वन्दन करे तथा नीचा झुककर अंजलि करे अर्थात् नमस्कार करे।

### विनय में शिष्टता

यही बातें संत-वर्ग के साथ गृहस्थ-समाज के लिए भी हैं। सभ्य, सुसंस्कृत समाज में आज भी अनेक घर-परिवारों में ऐसा व्यवहार मिल जाएगा। यह बात अलग है कि ऐसे घर कम मिलेंगे। अधिकांश घर ऐसे मिलेंगे, जहाँ बहू जी कुर्सी पर विराजमान हैं और सासू जी नीचे। बेटा आरामकुर्सी पर अधलेटा है और पिता खड़ा है। विद्वान्, कुलीन, सभ्य एवं

शिष्ट परिवारों का आचरण ऐसा नहीं होता। आज के युग में विनय और विनय से सम्बन्धित आदर्श बातें अधिक उपयोगी लगती हैं, क्योंकि आज का समाज कहलाता तो सभ्य है, पर शिष्टता का निरन्तर अभाव होता जा रहा है। जहाँ शास्त्र हम संतों के लिए यह कहते हैं कि गुरुजी का वस्त्र कम कीमती है तो उससे अधिक मूल्य के वस्त्र शिष्य उपयोग में नहीं लें, वहाँ आज गृहस्थ-समाज में बापूजी धोती में और बेटा जी अधिक मूल्यवान बूट-शूट में मिलेंगे। सासू जी सलवट वाली धोती पहने हुए हैं और बहू जी के बिना कलफ, बिना इख्ती के साड़ी आदि वस्त्र काम नहीं आ रहे। यह विनय नहीं है।

### विनय में त्याग

बन्धुओं ! शास्त्र की एक-एक बात पर मनन-चिन्तन की आवश्यकता है। जहाँ विनय का व्यवहार रहता है वहाँ सदैव स्नेह-प्रेम और विश्वास की अटूट गंगा बहती है। ऐसे प्रसंग भी देखने को मिले हैं जहाँ बेटे को कीमती वस्तु पुरस्कार में मिली है और वह घर आकर पिताजी के चरणों में अर्पित करता है, यह कहकर कि आपकी ही कृपा से मुझे यह पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

### अविनय से असदाचरण

अविनीत को अच्छी बातें नहीं सुहाती। एक उदाहरण कहा था सड़े कान वाली कुतिया का और आज पाँचवीं गाथा में शूकर के माध्यम से यह बात बताई जा रही है-

कणकुण्डं चइत्ताणं, विंडं भुंजइ सूयरो ।

एं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमइ मिए॥

आचार्य भगवन्त ने सरल सीधी भाषा में शास्त्र के इस रहस्य को हिन्दी भाषा में भाषित कर सामने रखा-

सूअर धान्य-भूस को तजक्कर, विष्ठा में ललचाता है।

शील छोड़ अज्ञानी वैसे उत्पथ में रम जाता है॥

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार शूकर (सूअर) चावल के श्रेष्ठ धान्यकणों को छोड़कर विष्टा खाना पसन्द करता है, उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति भी सदाचार को छोड़कर दुराचार में रमण करता है। प्रतिष्ठा-प्रेम-सम्मान और लोगों में पूज्य बनाने वाले विषयादि गुणों को छोड़कर अविनयी कुशील में ही मग्न रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिए तीर्थङ्कर भगवंत ने मृग (अज्ञानी) शब्द का प्रयोग किया है। मृग नहीं जानता कि संगीत के वशीभूत होने वाली उसकी कर्णेन्द्रियाँ उसे मौत के मुँह में धकेलती हैं। अज्ञानी जीव भी मृग की भाँति इन्द्रियों के सदुपयोग को नहीं जानता। कान से शास्त्र-श्रवण करने, नयनों से प्रभु के, संत व ज्ञानीजन के दर्शन करने, जिहा से प्रभु का, गुरु का गुणगान करने, काया से परोपकार करने के स्थान पर अज्ञानी जीव इन इन्द्रियों को विषयादि विकारों में गृद्ध बना जीवन को बरबाद कर लेता है।

### बहू का सास से अविनय

एक गाँव में एक प्रसंग देखने को मिला। भिक्षाचरी के लिए पात्र लेकर एक गृहस्थ के घर में प्रवेश किया तो देखा, बहू कुर्सी पर बैठकर भीतर की तरफ आवाज लगा रही है- ‘मुझे देर हो रही है, चाय बना कर जल्दी लाना।’

यह किसी नौकर को नहीं, दास या सर्वेन्ट को नहीं बल्कि आज्ञा दी जा रही थी सासू को। मकान में प्रवेश करने पर मैंने देखा-वह अस्सी वर्ष की बुढ़िया थी, आँख-कान कमजोर। सहज संतों के आने पर दो बूँद आँसू छलक आए। बोली- ‘महाराज ! घर का कचरा निकाला, पानी छाना, अनेक आवश्यक घरेलू कार्य निपटाए और अब बहू जी के लिए चाय बना रही हूँ। आप के बहराने के लिए मेरे पास अभी तो कुछ भी नहीं है, यह शक्कर है। आप थोड़े शक्कर के दाने लेकर ही मेरा हाथ फरस लीजिए।’

हमने उसको प्रतिलाभ दिया। जब मुड़े तो हमको बोली- ‘बाबजी ! बाहर बहू को कुछ मत कहना, नहीं तो म्हारे लड़ाई होय जावेला।’

जानकारी करने पर मालूम हुआ कि उसके चार बेटे हैं। उसने सभी पुत्रों को मेहनत से पढ़ाया, लिखाया, सर्विस लगाई, शादियाँ की। पति स्वर्गस्थ हो गए। चारों बेटे आज ऊँचे ओहदों पर हैं, अच्छा वेतन पाते हैं पर बुद्धिया की स्थिति नौकरों से भी गई बीती है। मैंने बुद्धिया से पूछ लिया-वह बाहर कुर्सी पर बैठी हुई बहन क्या मकान मालिकन है ?

बुद्धिया ने दर्द भरे स्वर में कहा- ‘महाराज ! वह इस अभागिन बूढ़ी के बेटे की मालकिन है।’ अब आप विचार करें, कैसी स्थिति है आज के युवा-युवतियों की ? बेटा मास्टर, बेटे की बहू भी मास्टर और इन दोनों की सेवा के लिए एक नौकर.....बुद्धिया सास ।

भगवती सूत्र में वर्णन आया है, ‘जिन्होंने शरीर का निर्माण किया है, संस्कारों का निर्माण किया है, जीवन का निर्माण किया है, ऐसे माता-पिता के लिए शरीर की चमड़ी उतार कर उनके पैरों की जूती बनाएँ तो भी उनके ऋण से उऋण और उनके उपकारों से बरी नहीं हो सकते। आज उन माता-पिता की समाज में क्या दशा है ? आप जरा भीतर की आँख से देखने की कोशिश करिए।

### पुत्र का पिता से अविनय

एक बार एक प्रसंग पढ़ने में आया था। एक गरीब किसान ने पेट काट कर, कष्ट उठा कर अपने पुत्र को वकालात की शिक्षा दिलाई। पुत्र वकील बन गया, शहर में वकालात करने लगा। एक समय आवश्यकतावश बूढ़ा बाप उससे मिलने गया। वकील साहब तो कोर्ट जा चुके थे। बूढ़ा व्यक्ति संध्या तक वापस अपने ग्राम पहुँचना चाहता था। बेटे से मिलना आवश्यक था, कुछ द्रव्य भी चाहिए था। अतः धीमी चाल से चलता हुआ कोर्ट तक पहुँच गया। भीतर कोर्ट लगा था, बहस चल रही थी। बूढ़ा व्यक्ति बाहर बैठ गया। बहस लम्बी थी, बेसब्र बूढ़े ने अंदर झाँककर देखा, एक बार नहीं, कई

बार देखा। अन्त में न्यायाधीश को वकील से कहना पड़ा- ‘वकील साहब ! शायद कोई आपका बाहर इन्तजार कर रहा है।’

वकील साहब बाहर आए। पिता को देखा और वापस मुँह फेर कर कोर्ट में चले गये। न्यायाधीश से कहा- ‘कोई नहीं, मेरे गाँव का एक आदमी है।’ बाहर बैठे वृद्ध पिता ने सुन लिया। उसकी सहनशक्ति जवाब दे बैठी। उससे रहा नहीं गया। वह दनदनाता हुआ भीतर चला गया और न्यायाधीश से बोला- ‘जज साहब ! मैं इसके गाँव का आदमी नहीं, इसकी माँ का आदमी हूँ। जिस बेटे को मैंने अनेक तकलीफें सहकर आज यहाँ आपके समक्ष कानूनी बहस करने लायक बनाया, आज उसके भीतर की कालिख को, उसकी अयोग्यता को प्रत्यक्ष देख लिया। मिलने आया था, पर अब मुझे इससे नहीं मिलना है। कुछ पैसे-वैसे की जरूरत थी, पर अब इस कपूत से तो पैसे भी नहीं लेने हैं। वृद्ध बुजुर्ग जिन पाँवों से आया, उन्हीं पाँवों से पुनः अपने ग्राम चला गया। जिस बेटे को पिता को पिता कहने में शर्म आती हो, उससे क्या आशा रखी जाए ?

### विनय : सर्वत्र आवश्यक

विनय का व्यवहार श्रमण और श्रावक सभी के लिए आवश्यक है। घर, परिवार, मुहल्ले, समाज सर्वत्र ही विनय जरूरी है। कई व्यक्ति आते हैं जो अनुभव सुनाते हैं कि जिनको आप लोगों ने अध्यक्ष बनाया है, मंत्री बनाया है-वे जब कार्यकारिणी आदि की बैठकें बुलाते हैं तो जो कुछ और जैसा कुछ वहाँ होता है, सुनकर अचम्भित रह जाते हैं। सोचता हूँ यह ओसवालों की, जैन समाज की मीटिंग है या और कुछ।

### संस्कार निर्माण और विनय

विनय जितना भूतकाल में आवश्यक था, उससे भी अधिक उसकी

वर्तमान में आवश्यकता है। पहले तो पूर्वजों से, बड़े-बूढ़ों से घर में, गुरुजनों से शाला में संस्कार मिल जाते थे पर आज.....?

आज समाज शनैः शनैः संस्कारहीन बनता जा रहा है। शिशु थोड़ा-सा बड़ा हुआ और ढाई-तीन वर्ष की उम्र में ही उसे स्कूल भेज दिया जाता है। बहनें खुश कि चलो इंजट मिटी, तीन-चार घण्टे तो आराम से बीतेंगे। आप लोग भी खुश कि बच्चा स्कूल जा रहा है, पढ़ रहा है, सीख रहा है। जिस उम्र में बच्चे को माँ की गोद में स्नेह-ममता प्राप्त होनी चाहिए, पिता की छत-छाया, प्यार-दुलार संस्कार मिलना चाहिए। आज उस बच्चे को स्कूल भेजकर भारी-बोझ से दबा दिया जाता है। भारभूत बना वह ऐसी शिक्षा प्राप्त कर रहा है, जो उसके जीवन में शायद ही काम आए। संस्कार-निर्माण का तो वहाँ प्रश्न ही कहाँ है ? अब सोचिए-बच्चों में संस्कार कहाँ से आएँगे, कहाँ से सीखेगा जीवन-निर्माण की कला वह बच्चा ? क्या यही बच्चे की समुचित व्यवस्था है?

### गुणों का आचरण करें

बन्धुओं ! संसार में गुणी भी हैं, अवगुणी भी। आप गुणी हैं तो आपकी नजर दूसरों के गुणों पर जाएगी, आप गुण ही ग्रहण करेंगे। आप कहने को तो कहते हैं-अहिंसा परमो धर्म की जय, सत्य धर्म की जय, दीनानाथ दीनबन्धु की जय। जय तो बोल दी आपने पर क्या जैसा बोलते हैं, वैसा आचरण भी करते हैं? जीवन में संस्कारों का निर्माण करने वाले, ज्ञान-दर्शन चारित्र के गुणों को प्रकट करने वाले विनय को पग-पग पर स्वीकार कर जीवन में उसका आचरण करेंगे तो जीवन में सुख-शान्ति-आनन्द पा सकेंगे।

## जीवन-निर्माण का सूत्र : विनय (3)

(विनय का जीवन-निर्माण में कितना महत्व है, इसी प्रवचन शुंखला में प्रस्तुत प्रवचन जोधपुर चातुर्मासि में 30 जुलाई 1994 को फरमाया गया था।)

तीर्थঙ्कर भगवान महावीर के अन्तिम सन्देश उत्तराध्ययन सूत्र में जीवन के प्रमुख गुण ‘विनय’ पर विवेचन चल रहा है।

विनय शिष्टाचार है।

विनय अनुशासन है।

विनय धर्म है।

### विनय-शिष्टाचार

उत्तराध्ययन-सूत्र में शिष्टाचार-रूप विनय का वर्णन करते हुए प्रभु महावीर ने बताया है कि विनयशील साधक को अपने गुरु के समक्ष कैसे बैठना चाहिए ? सूत्र का यह कथन जितना श्रमण जीवन के लिए उपयोगी है, उतना ही आप श्रावकों के जीवन के लिए भी हितकर है। कहा है-

न पक्खओ न पुरओ नेव किच्चाण पिद्वओ।

न जुंजे उरुणा उरुं, सयणे नो पडिस्मुणे ॥ उत्तरा. 1.18 ॥

गुरुजन के आगे पीछे, ना बाजू में अड़कर बैठे।

ना शव्या पर से उत्तर दे, ना जाँध सटा कर ही बैठे॥

अर्थात् शिष्य को चाहिए कि वह गुरु से कन्धा भिड़ाकर नहीं बैठे,

उनके आगे नहीं बैठे, उनके पीछे अविनीतता से नहीं बैठे। इतना निकट भी नहीं बैठे कि उसके घुटने से गुरु का घुटना स्पर्श हो जाय। शय्या पर लेटे हुए उत्तर नहीं दे।

यह गुरु-शिष्य की बात है। शिष्य गुरु से ज्ञान सीखता है। ज्ञान मिलता है विनयवान् शिष्य को। अनेक बातें हैं विनय की। ज्ञान प्राप्त करते समय गुरु के सामने सीने पर हाथ बाँध कर नहीं बैठे, पैर पर पैर रखकर नहीं बैठे। यह अभिमानसूचक मुद्रा है, अंग से अंग स्पर्श करके नहीं बैठे-यह अविनय है। मुनि ब्रह्मचारी है, उसने तीन करण, तीन योग से ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर रखा है। ब्रह्मचारियों को अपने अंग का कोई हिस्सा दूसरे के अंग से भिड़ा कर वैसे भी नहीं बैठना चाहिए।

विनय के साथ बैठना शिष्टाचार है। बैठना ऐसा भी होता है, जिससे विकार वृद्धि हो। बैठने का एक ढंग ऐसा भी हो सकता है जिससे राग बढ़े। बैठने का ढंग कभी-कभी शरीर की चंचलता को बढ़ाने वाला भी हो सकता है। बैठने का ढंग व्रत-नियम, चारित्र से गिराने वाला भी बन सकता है। भगवान् भी कहते हैं-

**णेव पलहस्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजाए।**

**पाए पसारिए वावि, ण चिड्हे गुरुणं तिए॥ उत्तरा.1.19॥**

बैठे नहीं बाँधकर पलथी, पक्षपिण्ड से भी न कहीं।

गुरुजन के सम्मुख अविनय से, मुनि पाद-प्रसारण करे नहीं॥

जहाँ गुरुजन या बड़े लोग विराजमान हों तो उनके सम्मुख पाँव पर पाँव चढ़ाकर नहीं बैठे, घुटने छाती के लगाकर नहीं बैठे, पाँव पसार कर नहीं बैठे।

**अविनय विकारों को पैदा करता है**

कहाँ है ऐसा विनय आज ? हालात ऐसे हैं कि माताजी सिर ढककर

नम्रता से बात कर रही हैं पर बहूजी सिर ही नहीं, पेट तक उघाड़ा रखती हैं और पटर-पटर उत्तर देती हैं। विनय रूप शिष्टाचार पालन के लिए शरीर के अंगों की चेष्टाओं में चंचलता नहीं झलकनी चाहिए अन्यथा रूप या शृंगार की झलक सामने वाले में विकारों की उत्पत्ति का कारण बन सकती है।

आप सभी धर्मसभा में बैठे हैं, प्रभुवाणी का श्रवण कर रहे हैं। धर्म को जीवन में ग्रहण करने के लिए विकारों को त्याग कर चलना होता है, शिष्टाचार से सम्पन्न होकर चलना होता है। अतः शिष्टाचार-रूप विनय से सम्बद्ध एक-एक बात का खुलासा किया जा रहा है।

### प्रश्न कैसे करें गुरु से ?

गुरुजनों से या अपनों से बड़े हों उनसे कभी कुछ पूछने का प्रसंग उपस्थित हो तो अपने आसन पर बैठे-बैठे ही प्रश्न नहीं करे। शिक्षा और उपदेश का उद्देश्य होता है, संस्कार धारण करना। जिज्ञासु शिष्य को प्रश्न करना है तो गुरु के समीप जाकर खड़े होकर विनय-पूर्वक प्रश्न करे। कक्षाओं में विद्यार्थी भी प्रश्न पूछते हैं तो खड़े होकर पूछते हैं। आप को यदि गुरुमहाराज से प्रश्न करना हो तो.....? कई बार हमारे पास राठौड़ी प्रकृति वाले ऐसे भी व्यक्ति आते हैं जो न वंदना करते हैं और न विनय। बस सीधे कह उठते हैं- महाराज ! एक बात पूछनी है।

### गलियार घोड़ा और जातिवान् अश्व

जीवन में जितना विनय होगा, ज्ञान देने वाले गुरु का मन उतना ही ज्ञान-दान के लिए उमड़ेगा। गलियार घोड़े और जातिवान् अश्व में अन्तर होता है। वही स्थिति ज्ञानार्जन करने वाले ज्ञानेच्छुओं की है। प्रवचन के समय कोई आगे आकर तो बैठ जाएगा पर गर्दन झुकाकर नींद लेने लगेगा। यदि ऐसा हो तो ज्ञान वाले, सुनाने वाले, उद्घोधन करने वाले के दिल पर क्या

बीतेगी ? उसका उत्साह मुरझा जायेगा । उसका मन तो तभी उत्साहित होगा जबकि आपको सुनने की सजग जिज्ञासा हो ।

शास्त्रकार कहते हैं- “जो विनय बाहर में है, उसे आचरण में लाने की भावना होनी चाहिए ।” यहाँ कई लोगे ऐसे भी हैं जो हम संतों की परीक्षा लेने की भावना से आते हैं । महाराज हमारे शहर में पधरे हैं, चलो देखा जाए कि वे कैसा प्रवचन करते हैं, क्या कहते हैं, किस ढंग से समझाते हैं ? यह धर्मस्थान है, कोई परीक्षा का स्थान नहीं है । यहाँ सैकड़ों अच्छी बातें सुनने, समझने को मिलेंगी । आप को जो भी अच्छी लगे, जीवन में ग्रहण कर लीजिए-यह विनय है, यही शिष्टाचार है ।

### अनुशासन रूप विनय

अनुशासन ही विनय है । गुरुदेव ने पुकारा-भाई कहाँ हो ? शिष्य ने, आपके जोधपुर की भाषा में जैसा कहते हैं, कहा-आयोसा । गुरु पुकारते रहे और शिष्य-“आयोसा, आयोसा” कहता रहा । सुनना और सुने का अनसुना करना, यह आज्ञा का उल्लंघन है, अनुशासनहीनता है, अविनय है । समय का उल्लंघन करने वाला, समय को टालकर काम करने वाला भी शास्त्रों की दृष्टि में विनय नहीं कहलाता । गुरुवर को प्यास अभी लगी है और शिष्य जी कहें कि दस गाथा पूरी करके आऊँ । दवा की जरूरत अभी है और वह बाद में दी जाए तो.... ! धर्म की आराधना की जरूरत आज है और आज नहीं कर पाए तो कल किसने देखा है ? एक पल की भी किसे खबर है ? पता नहीं आने वाले क्षण में स्थिति क्या होगी ?

### कृतधनता त्यागें

अनुशासनहीनता का एक रूप है-कृतधनता । नीतिकार कहते हैं-“बुराइयों का मूल कारण मनुष्य की कृतधनता है ।” साधना सूत्र में एक दृष्टान्त है । एक ऋषि गंगा स्नान करअपनी कुटिया की ओर जा रहे थे । राह में

उन्हें एक चाण्डालिन बहिन दिखाई दी। बहिन के हाथ खून से सने, हाथ में खप्पर, सिर पर मृत श्वान, जात चाण्डालिन, फिर भी चलती हुई अपने आगे-आगे राह पर खप्पर से पानी छिड़क रही थी। ऋषि ने पूछा-

कर खप्पर, सिर श्वान है, लहुज खरड़े हत्थ ।

छिड़कत मग चण्डालिनी, ऋषि पूछत है बत्त ॥

ऋषि के पूछने पर कि ऐसा क्यों कर रही हो बहिन, उसने कहा-  
मैं गंदी, सिर गंदगी, छिड़कत फिर भी मग ।  
आगे गयो कृतध्नी, रेत न जाए लग ॥

ऋषिवर ! मैं नीच हूँ, गन्दी हूँ, गन्दगी ढोती हूँ। मेरे सिर पर मरा हुआ कुत्ता और हाथ लहू से भरे हैं पर अभी-अभी मेरे आगे-आगे इसी राह से एक कृतध्नी गया है। मैं दुनिया की गन्दगी दूर कर, सफाई का काम कर रही हूँ पर मेरी समझ में मरा जानवर उतना गंदा, खतरनाक नहीं होता जितना कृतध्न होता है। आगे-आगे गए कृतध्नी की रेत कहीं मुझे नहीं लग जाए, मेरे पानी छिड़कने का यही कारण है। मेरे जानवर को ले जाने में मुझे कोई शर्म, दिक्कत नहीं पर मेरे भीतर कृतधनता आ गई तो मेरा जीवन ही बरबाद हो जायेगा। नीति भी यही कहती है-

गुरुद्रोही कृतध्नश्च, स्तेयी विश्वासघातकः ।

चत्वारो नरकं यान्ति, यावच्चन्द्र-दिवाकरौ ॥

जब तक सूरज और चाँद हैं, तब तक चार तरह के व्यक्ति नरक में ही जायेंगे। इन्हें कोई बचाने वाला नहीं हैं। पहला-गुरुद्रोही ! जिस गुरु ने शिक्षा दी, दीक्षा दी, पूज्य बनाया, मोक्ष-मार्ग का पथिक बनाया, शिष्य यदि ऐसे गुरु से द्रोह करता है, विपरीत जाता है, विरोधी बनता है तो वह नरक में जाएगा ही। दूसरा है-कृतध्न। चाहे गृहस्थ-धर्म में, चाहे श्रमण-धर्म में यदि कृतध्नी है तो उसके सारे अच्छे कार्य व्यर्थ हैं। सन्तान को माता-पिता कितना

कष्ट उठाकर पालते-पोषते एवं बड़ा करते हैं। स्वयं कष्ट उठाकर सन्तान को सुखी बनाने का प्रयास करते हैं। खुद गीले में सोते हैं, सन्तान को सूखे में सुलाते हैं। सर्दी, गर्मी, वर्षा से उसे बचाते हैं..... क्या क्या नहीं करते वे ! पर सन्तान उन्हीं स्नेही माता-पिता को मारने की बात सोचे, उनके धन को हड़पने की योजनाएँ बनाए, उन्हें दुःखी करे तो इसे क्या कहेंगे ? यह है कृतधनता ।

### आज कितने कोणिक ? कितने कंस ?

कोणिक राजा श्रेणिक का पुत्र था। जिस पिता ने अपने पुत्र की पीड़ा के दर्द को कम करने के लिए उसकी पीप (रस्सी-मवाद) भरी अँगुली को मुख में लेकर चूसा, उसी पिता को संतान ने क्या बदला दिया ? कहाँ डाल दिया उन्हें कारागार में। इसी तह कंस ने कितने दुःख दिए अपने माता-पिता को। आज भी है कंस और कोणिक ! एक, दो नहीं.....सैकड़ों की संख्या में मिलेंगे। गिनना शुरू करें तो गिनती अधूरी रह जायेगी और लिखना शुरू करें तो लम्बी सूची बन जायेगी।

### थावच्चा-पुत्र के कथानक से सीख

विनय साक्षात् धर्म-स्वरूप है। दूसरे शब्दों में कहूँ तो विनय धर्म का मूल है और अविनय अर्थात् अभिमान पाप का मूल है। ज्ञाताधर्मकथाङ्ग में विनय को धर्म के रूप में दर्शाया गया है। अरिहन्त अरिष्टनेमि के चरणों में एक हजार साथियों के साथ दीक्षित होने वाले थावच्चापुत्र का प्रसंग इसमें आता है। अपनी माता के नाम से पहचाने जाने वाले ये मुनिराज धर्म को विनय और विनय को ही धर्म बताते हैं।

माँ थावच्चा ने अपने पुत्र को छोटी अवस्था में घर के काम में विघ्न डालने वाला देखकर कहा-बेटा ! ऊपर छत पर जाकर खेल।

थावच्चा का पुत्र ऊपर पहुँचा। पड़ोस के घर में पुत्र जन्म होने के कारण संगीत और गीतों की मधुर स्वर लहरियाँ उसके कानों में पड़ती हैं। कर्णप्रिय गीत-संगीत सुनता हुआ नीचे उतर कर माँ से पूछता है-माँ ! पड़ोस के घर में आज क्या बात है ?

माता बताती है-‘बेटा ! उनके घर आज एक नौनिहाल पुत्र का जन्म हुआ है, इसी खुशी में गीत-संगीत हो रहा है, खाना-पीना भी होगा।’

क्या मेरे जन्म पर भी ऐसा ही हुआ था ?’-पुत्र ने पूछा।

‘हाँ बेटा ! तेरे जन्म पर ऐसे ही, इससे भी अधिक खुशियाँ मनाई गई थी’-माता ने कहा।

बच्चा संगीत की सुहानी ध्वनियों के आकर्षण में बँधा फिर ऊपर पहुँचता है। कुछ देर व्यतीत होने के पश्चात् वातावरण एकदम बदल जाता है। क्रूर काल हँसी-खुशी के वातावरण को रुदन-क्रन्दन में परिवर्तित कर देता है। बालक हैरान रह जाता है, अचानक यह क्या हो गया ? पहुँचता है नीचे, अपनी माता के निकट। उसका तो जो कुछ है माँ ही है। जैसे शिष्य का सहारा गुरु है, विद्यार्थी का सहारा शिक्षक है, जीवन-निर्माण का एकमात्र सहारा धर्म है, वैसे ही लघु सन्तान का एकमात्र सहारा माँ है।

पूछता है माँ से-‘माँ ! अब वहाँ गीत-संगीत के स्थान पर रुदन-क्रन्दन हो रहा है। क्यों ?’

माँ कहती है-‘बेटा ! परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है। पड़ोस में जो नया मेहमान नौनिहाल बालक पैदा हुआ था, वह चला गया, मृत्यु को प्राप्त हो गया।’

अब थावच्चा पुत्र की चिन्तन-धारा चलने लगी-‘क्या मैं भी चला जाऊँगा ? मैं जाऊँगा तो सभी ऐसे ही रोयेंगे ? माँ भी ऐसे ही रोयेगी ?’

संसार के ममत्व में उलझा रागी ऐसी बातों पर चिन्तन नहीं करता।

कोई पूछे तो जवाब नहीं देता। यदि देता भी है तो कहेगा- ‘बेटा ! ऐसे शब्द नहीं बोला करते।’ दूसरे शब्दों में राग-भाव से विचरण करने वाले इस तरह भी कहते हैं- ‘तुँ क्यों मरे, मरे तेरे दुश्मन।’

थावच्चा माता, जिसके सिद्ध-बुद्ध होने वाले पुत्र का असली नाम क्या है ? शास्त्रों में इसका वर्णन भी नहीं मिलता। वह तो थावच्चा माँ के पुत्र रूप से ही प्रसिद्ध है। थावच्चा अपने पुत्र से कहती है- ‘बेटा ! यह धृव सत्य है कि जो जन्म लेता है, उसे मरना ही पड़ेगा।’

बेटा फिर माँ से प्रश्न करता है- ‘माँ ! मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का भी कोई उपाय है ?’

माता बताती है- ‘बेटा ! मृत्युञ्जयी-साधना है धर्म की आराधना। धर्म जन्म और मरण के बन्धन काटने वाला है। अभी तू इस लायक नहीं है। इसलिए मुझे काम करने दे, तू भी अपना काम कर, जा खेल।’

प्रसंग आया गया हो गया, पर थावच्चा पुत्र के दिल में माता की एक बात घर कर गई- ‘मरना मुझे भी है।’ संस्कार देने वाला समझाने वाला अगर सुघड़ है तो संस्कारों की अमिट छाप श्रोता के मन पर पड़ ही जाती है। इसके परिणाम भी सुखद होते हैं।

### एक देशना में एक हजार के साथ दीक्षा

एक बार जब अर्हन्त-अरिष्टनेमि वहाँ पधारते हैं तो थावच्चा भी अपने पुत्र के साथ तीर्थङ्कर-देशना सुनने जाती है। थावच्चा पुत्र केवल एक देशना श्रवण करते हैं और दीक्षित हो जाते हैं। महावीर अकेले दीक्षित हुए, ऋषभदेव चार हजार साथियों के साथ दीक्षित हुए, थावच्चा पुत्र एक हजार के साथ दीक्षित होते हैं।

### विणयमूले धर्मे

श्रमण बनकर थावच्चा पुत्र ज्ञानार्जन करते हैं। ग्राम-नगर-पुर विचरण

करते हुए वे एकदा सौंगंधिका नगरी पहुँचते हैं। वहाँ के निवासी श्रेष्ठी-सुदर्शन जो शुचिमूल धर्म को स्वीकार कर चलने वाले हैं, मुनिवर के चरणों में पहुँच कर बंदन करते हैं। मुनिश्री के सौम्यभाव एवं समाधिकान्ति को देखकर एक जिज्ञासा व्यक्त करते हैं-भगवन् ! आपके धर्म का मूल क्या है ? शास्त्र के शब्दों में-‘तुम्हाणं किं मूलेऽधम्मे ?’

मुनि थावच्चा पुत्र तब कहते हैं-‘सुदंसणा विणयमूले धम्मे’ अर्थात् सुदर्शन ! धर्म विणयमूल वाला है। तात्पर्य यह है कि धर्म का मूल विणय है। धर्म वही है जहाँ विणय स्थित है।

‘सेवि य विणए दुविहे पण्णते तंजहा-आगारविणए य अणगार विणए य।’ यहाँ शास्त्रकार ने विणय दो प्रकार का बताया है-आगार विणय और अणगार विणय।

स्थानाङ्ग सूत्र में भगवान् महावीर दो प्रकार का चारित्र धर्म बताते हैं-आगार धर्म व अणगार धर्म। ‘धम्मे दुविहे पण्णते तंजहा-सुयधम्मे य चरित्तधम्मे य। चरत्तिधम्मे दुविहे पण्णते तंजहा-आगारधम्मे य अणगारधम्मे य।

जो चारित्रधर्म के भेद बताए, वही विणय के भी भेद बताए अर्थात् धर्म ही विणय है, विणय ही धर्म है।

### विणय बिना सुगति नहीं

शास्त्र कह रहा है-मानव ! विणय धर्म का मूल है। यदि तेरे जीवन में शिष्टाचार, अनुशासन, कृतज्ञता आदि विणय रूप गुण नहीं आए तो कितना ही पद-सम्मान प्राप्त कर ले, तेरी गति सुधरने वाली नहीं है। आपने पचासों दृष्टांत देखे-सुने-भोगे हैं और घर-गृहस्थी छोड़ने के बाद हम भी सुनते हैं। एक मामूली-सी-बात को लेकर सन्तान माता-पिता से बोलना बंद कर देती है। उन्हें दुःख पहुँचाने की बातें भी कानों में आती हैं। लड़कों के पास लाखों की माया है पर माता-पिता के नसीब में दो समय का पूरा खाना भी नहीं है।

बन्धुओं ! जिस माँ ने पुत्र के बोझ को नौ महीने तक गर्भ में ढोया, उसे सुखी बनाने के लिए खुद कष्ट उठाए। जिस पिता ने खून-पसीना एक कर बच्चे को पढ़ाया-लिखाया, योग्य बनाया। उसी योग्यता के बल पर वह आज बँगलों में रहता है, कारों में घूमता है, पर माता-पिता को रोटी नहीं देता तो क्या कहना चाहिए ? एक भाई ने मेहनत-मजदूरी करके अपने अनुज को, पढ़ा-लिखा कर डॉक्टर बनाया। भाई की लड़की बीमार पड़ जाती है। डॉक्टर भाई से कहा तो बोलता है-पहले इलाज की फीस के पैसे रखो।' बड़ा भाई कहता है-पैसे तो नहीं है लल्ला ! पर इलाज नहीं हुआ तो यह लड़की मर जायेगी। डॉक्टर भाई कहता है-‘मर जायेगी तो मर जाए। मैं क्या कर सकता हूँ ?’ क्या ऐसी भी कृतघ्नता सम्भव है ? आज आप पत्थर पर नाम लिखवाने के पाँच-दस हजार दे देंगे पर माँ-बाप की सेवा का मौका आएगा तो मुँह फेर लेंगे। यह कृतघ्नता है।

### सुदृढ़ रहें विनय धर्म में

सुणिया भावं साणस्स, सूयरस्स नरस्स य ।  
विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो ॥

॥उत्तरा. 1.6 ॥

कुर्ती सूअर नर-दुर्गति सुन, विज्ञ विचारो निज मन में।

अपने हित की इच्छा हो तो, तुम धरो विनय इस जीवन में॥

“सड़े कान वाली कुतिया तथा चावल को छोड़कर भिष्टा खाने वाले शूकर की तरह अविनीत व्यक्ति सर्वत्र दुत्कारा जाता है, तिरस्कृत होता है, ऐसा दुष्परिणाम जानकर अपनी आत्मा का हित चाहने वाला अपने आप को विनय में स्थित करे।” इसके विपरीत कुछ लोग हस्ती स्नान की तरह पहले जल में नहाकर शरीर स्वच्छ करते हैं और उसके बाद अपने पर रेत डाल लेते हैं अर्थात् पहले तो धर्माचरण कर आत्मशुद्धि की ओर बढ़ते हैं पर बाद में.... ! ऐसे सैंकड़ों दृष्टान्त हो सकते हैं।

## आराधना को विराधना में न बदलें

कई घरों में जहाँ बुजुर्ग-अभिभावक धर्मनिष्ठ होते हैं, वहाँ बच्चे प्रारम्भिक काल में वातावरण से धार्मिक संस्कार ग्रहण कर लेते हैं। वे सामायिक करते हैं, दया करते हैं, व्याख्यान-वाणी सुनते हैं, पर बड़े होने पर, कॉलेजियट बन जाने पर गृहस्थ बन जाने पर अपना धार्मिक-ज्ञान, धार्मिक संस्कार भुला बैठते हैं। इससे जीवन के मूल्यों का उत्थान नहीं, पतन होता है। आराधना को विराधना में किसी हालत में न बदलें।

## विनय से सुख, शान्ति और आनन्द

आप जप कर लें, तप कर लें, व्रत कर लें पर यदि आप में कृतज्ञता नहीं, विनय नहीं तो सारे जप-तप व्यर्थ हैं। भगवन्त (पूज्य गुरुदेव स्व. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) फरमाते थे कि बारह महीने तक लड़का हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू सीखता है पर परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है.... ! कारण यही है कि वह गुरु, माता-पिता का अहसान नहीं मानता। आप अपने माता-पिता और सम्माननीय गुरुजनों को, सज्जनों को पीड़ा देते हैं तो आपका तप-त्याग, शिक्षा-दीक्षा कोई काम की नहीं। आप जप-तप करने के साथ विनयी बनिये, कृतज्ञ बनिये, उपकारी के उपकार को ब्याज सहित चुकाना सीखिए। इससे आपको शान्ति मिलेगी, आप आगे बढ़ सकेंगे और आपका जीवनदर्शन भावी पीढ़ी को रोशन कर सकेगा। आप विनय धर्म को स्वीकार कर चलेंगे तो जीवन में सुख, शान्ति व आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।



## सुख का द्वार : अनुशासन

(आत्मानुशासन से समाज का अनुशासन बनता है। आत्महित और समाजहित में अनुशासन की प्रेरणा करते हुए, अगस्त 1994 को फरमाये गए इस प्रवचन में द्वेष न माँगने पर भी बल दिया गया है।)

### अनुशासन सुख का द्वार है

विनय; मन की, वचन की और शरीर की समस्त प्रवृत्तियों पर अनुशासन रखता है। अनुशासन सुख का द्वार है। जिसने अनुशासन स्वीकार कर लिया वह स्वयं भी सुखी होता है और दूसरों के हित एवं सुख में भी सहायक बनता है। जिसने अनुशासन रूप विनय को जीवन में स्वीकार नहीं किया, वह स्वयं तो कष्ट भोगता ही है, दूसरों के द्वारा भी दमित और अनुशासित किया जाता है। इस दमन में कभी बन्धन और कभी वध के द्वारा जीव अत्यन्त दुःख पाता है। भगवान् महावीर की अन्तिम अनुपम वाणी उत्तराध्ययन के ‘विनयश्रुत’ नामक प्रथम अध्ययन की सोलहवीं गाथा में यही बात कही जा रही है-

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।

माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य॥

॥उत्तरा. 1.16 ॥

अपने द्वारा तप संयम से, दमन स्वयं का है अच्छा।

वध-बन्धन द्वारा परजन से, है दमन नहीं लगता अच्छा॥

प्रभु फरमाते हैं-तप और संयम के द्वारा स्वेच्छा से अपने आप का स्वयं नियन्त्रण (दमन) करना ही उत्तम है। दूसरे लोग मार-पीटकर, बन्धनों में डालकर एवं विविध प्रकार के दण्ड देकर किसी का दमन करें, यह अच्छा नहीं है।

### नियन्त्रण स्वयं किया जाए

यह सत्य है, क्योंकि जब दूसरों के द्वारा दमन या नियन्त्रण किया जाएगा तो मानव-मन में भयंकर प्रतिक्रिया की भावना जागृत होगी, क्रोध बढ़ेगा, द्रेष फैलेगा, शत्रुता उत्पन्न होगी, आत्म-ग्लानि और पुण्य-हानि होगी। अतः भलाई इसी में है कि प्राणी अपनी विकृतियों, अपनी इन्द्रियों और अपने अनिगृहीत कषायों को अपने आप नियन्त्रित करे। सारभूत शब्दों में कहूँ तो न तू दूसरों के लिए कष्टदायी बन और न ऐसे कार्य कर कि दूसरे तुझे कष्ट पहुँचाए। प्रयत्न कर कि तेरा कोई आचरण दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधक न बने।

### समाज में भी अनुशासन

अनुशासन, नियन्त्रण, विधि-विधान ये सभी एकार्थक हैं और समाज के लिए अत्यावश्यक हैं। जो विधि-विधान है, वह अनुशासन का ही एक रूप है और जो अनुशासन है वही विधि-विधान। जहाँ भी समाज है, वहाँ विधि-विधान होंगे, नियम होंगे, अनुशासन होगा। जहाँ नियम, अनुशासन, विधि-विधान नहीं वह समाज नहीं, एक झुण्ड है। पशु और पक्षियों के झुण्ड होते हैं। उसे ‘समज’ के नाम से पुकारा जा सकता है, पर समाज के नाम से नहीं। जहाँ समाज है, वहाँ कुछ रीति-नीति है। वहाँ सामाजिक एक-दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधक नहीं बनकर अपनी दिनचर्या को अनुशासित रखते हैं। यदि ऐसा नहीं हो तो वह ‘समाज’ कहलाने योग्य नहीं।

## अनुशासन का अर्थ

अनुशासन और विधि-विधान को एकार्थक बताया गया है। विधि-विधान अर्थात् ऐसे बैठो, ऐसे चलो, इस तरह बोलो, इस तरह व्यवहार करो। यही अनुशासन है। दो आदमी बात कर रहे हों तो बीच में नहीं बोलना चाहिए-यह अनुशासन की बात है। बिना पूछे नहीं बोलना, पूछने पर मिथ्याभाषण नहीं करना, बात को छुपाकर विपरीत कथन नहीं करना आदि सभी अनुशासन में आ जाते हैं।

**अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्य अंतरा-दशवै. 8/47**

## दण्ड द्वारा दमन उचित नहीं

सामाजिक विधि-विधान से विपरीत व्यवहार करने वालों के लिए दण्ड का विधान है। दण्ड में विरोध-भाव है, प्रतिशोध जागता है, क्रोध भी आता है। किसी व्यक्ति को आप यदि अनुशासित करने का प्रयत्न करेंगे और वह व्यक्ति यदि अनुशासित नहीं बनना चाहता तो फिर दूसरे-दूसरे व्यक्तियों को देखेगा, उनके अवगुण, अविनय, अनुशासनहीनता को निहारेगा और क्रोध में आकर उनको संकेतित करेगा।

## कमजोरी छिपाने के लिए व्यक्ति दूसरों के अवगुण देखता है

गुरुजी ने चेले को शिक्षा दी-भाई ! नीचे देखकर चलो। चलते समय इर्या-समिति का ख्याल रखो। साढ़े तीन हाथ जमीन को देखकर चलोगे तो जीवों की विराधना से बच सकोगे।

गुरुजी ने एक बार कहा, दो बार कहा, तीन बार कहा, बार-बार कहा। शिष्य ने सोचा-कैसे गुरु हैं ये ? मुझे ही मुझे कहते हैं, दूसरे भी तो शिष्य हैं, पर उनको कुछ नहीं कहते। इस तरह वह दूसरों के अवगुणों पर नजर

रखने लगा। दूसरों की अपेक्षा से अपने आपको तौलने लगा, पर अपनी बात उसे भला नजर क्यों आती? कमजोरी छिपाने के लिए भी व्यक्ति दूसरों की ओर देखता है। शिष्य विचारता है-दुश्मनी मेरे से है, मैं इनके मन को नहीं भाता इसीलिए ये अपने मन की सारी भड़ाँस मुझ पर निकाल रहे हैं।

### अपनी भूल स्वयं मानो

दूसरों की तरफ देखना, उनकी कमजोरियों को प्रकट करना और अपनी कमजोरियों को छिपाना, ये बातें समाज में हैं, राजनीति में हैं, यहाँ तक कि धर्मव्यवस्था में भी आ गई हैं। जहाँ दण्ड व्यवस्था है, वहाँ गलती को स्वीकार न करना, बहाने बनाना, झूठ बोलना, दोष कम करके कहने की चेष्टा आदि अनेक बातें पाई जा सकती हैं, किन्तु आध्यात्मिक-क्षेत्र में कपट, झूठ या बहानेबाजी का कोई स्थान नहीं है। वहाँ तो चिन्तन होना चाहिए। यह मेरे हित में कहा जा रहा है, मेरे जीवन-निर्माण के लिए कहा जा रहा है। ये बातें मेरे अपने सुख के लिए हैं। जहाँ छल है, वहाँ दण्ड है। अपनी गलती स्वयं स्वीकार कर ली जाए, वह अनुशासन है।

### विकृतियों के मूल में व्यक्ति

समाज में विकृतियाँ निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। उन विकृतियों के मूल में कहीं न कहीं व्यक्ति स्वयं है। अतः उन्हें दूर करने के लिए व्यक्ति स्वयं अपने से पहल करे। किसी समस्या का समाधान यदि व्यक्ति स्वयं अपने द्वारा कर लेता है तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी। अपने अभावों, अपनी प्रतिकूलताओं को आप स्वयं अपनी अनुकूलताओं में बदलने की चेष्टा करें। दूसरों को बदलने की अपेक्षा स्वयं को बदलें-यही श्रेष्ठ है।

यदि आपने स्वयं अपने को नहीं बदला तो परिणाम वही होगा जो आज हो रहा है। जब-जब आप दूसरों के वैभव, उनकी उन्नति, उनकी

सम्पदा-वृद्धि को देखेंगे तब-तब जलन, दुःख, प्रतिशोध की भावनाएँ जन्म लेंगी। उन्हें जैसे-तैसे गिराने, उनकी सम्पदा को हड़पने की कुचेष्टाएँ आप करने लगेंगे और ऐसा करने के लिए निकृष्टतम् तरीके भी अपना लें तो आश्चर्य नहीं। विवाह-शादी के प्रसंगों पर कच्ची साई, पक्की साई आदि अनेक रीति-रिवाज बढ़ते जा रहे हैं। माँगने पर नहीं मिले तो दबाव भी डाला जाता है। अन्तर की राक्षसी प्रवृत्ति फिर भी शान्त नहीं हुई तो मार-पीट, हत्या, आगजनी भी की जाती है। सगाई में अपनापन है, स्वत्व है और साई..... ? पहले यह शब्द सुनने में नहीं आता था। पिछले कुछ वर्षों में इसका प्रचलन हो गया है। ऐसा लगता है कि लेन-देन की बात के पीछे आदमी अपनी कुलीनता खोता जा रहा है। व्यक्ति की श्रेष्ठता, उसका सत्त्व समाप्त हो रहा है। कहा गया है-

**वेपथुमलिनं वक्त्रं, दीनवाग् गदगदस्वरः।**

**मरणे यानि चिह्नानि, तानि चिह्नानि याचके॥**

मरना और माँगना बराबर है। मरते समय जो-जो चिह्न शरीर पर दृष्टिगोचर होते हैं, प्रायः वैसे ही चिह्न माँगने की मुद्रा में दिखाई देते हैं। मुख पर दीनता, आँखे नीची और गिड़गिड़ाते हुए हाथ फैलाना आदि। सभी जानते हैं, कहते हैं कि “‘माँगण गया सो मरि रह्या, मरे सो माँगण जाहि’” पर माँगना कोई छोड़ता नहीं।

### **दहेज समाज का एक अभिशाप**

आज यह लेन-देन का रोग किसी एक जाति या समाज तक ही सीमित नहीं है। आज लड़के वाले माँग कर भिखर्मंगे बनने तक ही सीमित नहीं रहते, वे एक कदम आगे बढ़कर लुटेरे बन रहे हैं, लड़की के पिता को जबरन, विवश करके लूट रहे हैं। नहीं कहना चाहता था मैं यह बात, पर जो

कुछ देखता, सुनता, पढ़ता हूँ तो दिल में बड़ा दर्द महसूस करता हूँ। शब्दों में कठोरता आ गई है पर विपरीतता नहीं है। भगवान् महावीर ने अविनीत की तुलना सड़े कान वाली कुतिया और विष्ठा खाने वाले शूकर से की है। मैं यदि लुटेरा कहता हूँ तो भी शब्द शायद कमजोर ही पड़ता है, क्योंकि लुटेरा धन लेता है, शील नहीं। अगर उसे जितना आपके पास है वह दे दिया जाए तो वह आपके शरीर के हाथ भी नहीं लगाएगा इसके विपरीत दहेज के लोभी व्यक्ति केरोसिन डाल कर बहू को जला डालते हैं, गैस खुला छोड़कर बहू को चाय बनाने भेजते हैं और वह मौत के मुँह में समा जाती है, ऐसे ही और न जाने कितने तरीके निकाले जा रहे हैं।

एक बार एक मुस्लिम भाई मेरे पास आया। मैंने उसकी तरफ ध्यान दिया। कुछ बातें की तो सहज ही मैं कह गया-महाराज ! बहुत दुःखी हूँ। लड़की की शादी में अपनी हैसियत से अधिक लगा दिया, पर लड़के वाले तीस हजार रुपये की और माँग कर रहे हैं। सुनकर मुझे लगा कि आपके ओसवाल समाज में पैदा हुआ यह रोग छुआछूत और कोढ़ की तरह अन्य समाजों में भी फैल गया है, आज भी निरन्तर बढ़ ही रहा है। कितने ही किसानों को जीवनदायिनी अपनी खेती की जमीनों को इस राक्षसी प्रवृत्ति के लिए बेचते देखा जा सकता है। न मालूम कितने लोग दहेज की बलिवेदी पर चढ़कर बर्बाद हो चुके हैं। लगता है कि मातृत्व की धारक, आप सभी की जननी, ममता की सागर जब शिशुकन्या किसी घर में उत्पन्न होती है तो वह अपने पितृ-परिवार को तबाह करने का परवाना साथ लेकर आती है। क्या कन्या का जन्म एक हँसते-खिलते परिवार को मुरझाने, मृत प्रायः बनाने, दाने-दाने के लिए मोहताज बनाने के लिए है ? यदि ऐसा है तो ऐसा किसने बनाया उसे ? स्पष्ट है दहेज माँगने की प्रवृत्ति ने।

संवत् 2013 या 14 के आसपास की बात है। एक बार आचार्य पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज विजयनगर से हुरड़ा पथारे। वहाँ उन्होंने एक दिन अपने ओजस्वी प्रवचन में फरमाया कि दहेज माँगने वाले लोग, घर में रहकर क्यों माँगते हैं ? मैं भी माँगता हूँ, वे भी माँगते हैं तो वे हमारे इस घर में क्यों नहीं आ जाते। चाहे सुई माँगनी हो या कपड़ा, चाहे रोटी माँगनी हो या पानी, पर चोटी रहते क्यों माँगते हो। चोटी निकाल कर माँगो, फिर कोई मना नहीं करेगा। तात्पर्य यह कि माँगना ही है तो इस तरह माँगो कि समाज आदर की नजर से देखे, पूजा करे, गुण गाए।

घर में करोड़ों की सम्पदा, अच्छा-खासा लम्बा चौड़ा लाभ कमाने वाला व्यवसाय, नौकर-चाकर, गाड़ी-बँगले सब कुछ हैं पर लड़की वालों से कह रहे हैं- ‘आपरी बाई फूटरी है, दाय भी आय गई पर..... फलाणचंद जी आपरी बाई रे वास्ते आया हा अर वे इतरो-इतरो देवण रो कयो। अबे आप सोच लो।’ कहने के और भी ढंग हो सकते हैं, आप अधिक जानते हैं। चिड़ियों से खेत क्या छाने हैं ?

### सौगन्ध है पर तृष्णा नहीं बुझी !

कभी-कभी वृद्ध-बुजुर्गों से बात होती है। मैं उन्हें कहता हूँ- ‘भले आदमी ! अब तो अपनी अवस्था को देखो, ये प्रपञ्च छोड़ो। कम से कम इतना तो करो कि दहेज न माँगेंगे और न माँगने देंगे।’ तपाक से जवाब मिलता है- ‘अरे बाबजी ! मैं तो दहेज लेवण रा गुरु महाराज सूँ सौगन्ध ले लिया हूँ। अब तो मैं व्याह-शादी रा सारा काम छोड़ दिया हूँ। छोरा जाणे अर वाणो काम जाणे।’ सुनकर मैं समझ जाता हूँ कि सौगन्ध तो लिए, पर तृष्णा अभी समाप्त नहीं हुई। माँग नहीं सकते, अतः शादी-व्याह के सारे कार्य छोड़ दिए। छोरे ही करेंगे, क्योंकि आप करें तो दहेज आदि का कुछ भी कह नहीं सकते।

## वरं मे अप्पादंतो

क्या इस तरह माँगने के सहारे जीवन चल सकता है। अगर माँगने से ही जीवन चले, निखरे, प्रगति करे तो आज विश्व में जगह-जगह भिक्षावृत्ति में लगे हजारों-लाखों विवश भिखारी कार-बँगले वाले, धन-सम्पत्ति वाले बन गए होते, माँगने से तो पेट-भराई भी कठिन है। सुख-शान्ति-समृद्धि होती है मेहनत से, बुद्धि से और अनुशासन से। अतः प्रभु महावीर कहते हैं- ‘वरं मे अप्पादंतो।’ अपने आप पर अपना नियन्त्रण ही श्रेष्ठ है। समाज वाले अँगुलि उठाएँ, समाज वाले मुँह फेर कर बात करें, समाज वाले..... ! जाने दीजिए आगे के शब्द मैं नहीं कहूँ, यही बेहतर है। तो आपके हित में सर्वोत्तम यही है कि आप स्वयं अपने आप पर कन्ट्रोल करें।

## सुधार में पीछे, लेने में आगे

आज प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृत्ति ऐसी बन चुकी है कि जहाँ भी कुछ प्राप्त करने की बात होगी, सुविधा या सुख प्राप्ति के अवसर होंगे वहाँ सबसे पहले पहुँचने का प्रयत्न करेंगे। अगर कोई कुछ देने वाला मिल जाए-कोई मंत्र देने वाला, कोई तंत्र करने वाला, कोई लाभप्रद जाप बताने वाला तो आप शायद वहाँ सबसे पहले पहुँचेंगे। सर्वप्रथम वहाँ से कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। अपना नाम सबसे ऊपर लिखवायेंगे। इसके आगे धर्मध्यान गौण हो जाता है। ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग और सुधार करने की बात यदि आपसे कही जाए तो आप कहेंगे- ‘अरे बाबजी ! हाल म्हारो नम्बर कठे। हाल तो अध्यक्ष जी हैं, मन्त्री जी हैं अमुक-अमुक हैं, उनके नाम पहले, फिर मैं तो हूँ ही।’ सुधार में पीछे और लेने में पहले-बस दुःखी होने की, अनुशासनहीनता की जड़ यही है।

## सामायिक से सुधार

आचार्य भगवन्त ने सामायिक-साधना के अनमोल अनुभव में एक बात सामने रखी थी-

सामायिक से जीवन सुधरे, जो अपनावेला ।  
निज सुधार से देश-जाति सुधरी हो जावेला ॥  
करलो सामायिक....

जीवन सुधार का एक ढंग है-सामायिक । सामायिक को आप किसी भी साधन से जोड़ सकते हैं । स्वाध्याय, आत्मचिन्तन, तप, ध्यान किसी भी धार्मिक अनुष्ठान के साथ सामायिक को जोड़िए परिणाम है-जीवन का सुधार । समता-भाव ही है सामायिक और बिना समता-भाव के कोई भी अनुष्ठान अपूर्ण या अधूरा है । जो भी समझाव रूप सामायिक को धारण करेगा, उसका जीवन सुधर जायेगा । गुरु भगवन्त कहते हैं-व्यक्ति यदि अपना सुधार करले तो सम्पूर्ण जाति, सम्पूर्ण राष्ट्र, सम्पूर्ण विश्व का स्वतः सुधार हो जायेगा । कितनी सही बात कही है गुरु भगवन्त ने । व्यक्ति-समूह ही समाज है और समाज-समूह ही राष्ट्र है । व्यक्ति-सुधार से राष्ट्र-सुधार है । बूँद-बूँद से सागर बनता है । बूँद-बूँद निकालो तो सागर सूख जाता है । एक-एक व्यक्ति बिखरे तो फिर कैसा समाज ? एक-एक व्यक्ति अपने आप को सुधारे तो समाज, राष्ट्र को सुधरते क्या देर लगती है ?

## कभी स्वर्णाभूषण प्रतिष्ठा की बात थी

परिवर्तन संसार का अपरिवर्तनशील नियम है । यहाँ के तौर-तरीके, रीति-रिवाज, रहन-सहन परिवर्तित होते रहते हैं । कभी समाज में स्वर्ण-आभूषण पहनना प्रतिष्ठा की बात थी । प्राचीन लोग राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार सोने के आभूषणों से अपने को एड़ी से चोटी तक सजाए रखते थे ।

पर्व, त्यौहार, शादी आदि अवसरों पर नारियाँ आभूषणों से लदी सज-धज कर निस्संकोच जाती थीं। अधिक सम्पन्न सेठ-सेठानियों, राजा-रानियों आदि को आभूषणादि से सुसज्जित देख लोग हर्षित होते थे कि हमारे क्षेत्र के नरेश, हमारे गाँव-शहर के सेठ आदि इतने सुखी, इतने सम्पन्न हैं। जब तक ये हैं तब तक हमें कोई चिन्ता नहीं।

आज युग बदल गया, युग की भावना बदल गई, युग-दृष्टि बदल गई। आज स्वर्ण के आभूषण धारण करने का रिवाज धीरे-धीरे समाप्त प्रायः हो गया है। क्यों हुआ ऐसा ? स्पष्ट है, धनवानों ने समाज का अंग बनने के स्थान पर अपने को कुल-विशिष्ट बना लिया है। यही कारण है कि सोना आज जानलेवा हो गया है। चलती हुई रेलगाड़ी में औरत-मर्द के गले की सोने की चैन झपट कर कोई खींच लेता है और कूद जाता है बाहर। रास्ता चलते बाजार में कान के सोने के इयरिंग या झूमर खींच लिए जाते हैं-कान टूट जाता है, कोई नई बात नहीं। सोना रखना, सोने के आभूषण पहनकर निकलना खतरा बन गया है। पर सोने का लेनदेन, माँगणी, दहेज अभी भी बदस्तूर चलन में है।

### दहेज का वास्तविक रूप

क्या है यह दहेज ? दो शब्द हैं- ‘द’ और ‘हेज’ अर्थात् हेज के साथ, प्रेमपूर्वक देना। लड़का पिता के धन का, चल-अचल सम्पत्ति का मालिक बन जाता था पर उस समय लड़की पिता की सम्पत्ति में हिस्से की हकदार नहीं थी, अतः पिता अपनी बेटी की शादी के समय अत्यन्त प्रेम से, स्वेच्छापूर्वक सोना, चाँदी, कपड़े, बर्तन आदि देता था। उस समय स्वेच्छया इस प्रकार प्रेमपूर्वक दिया गया ही दहेज होता था। इससे परस्पर प्रेम में अभिवृद्धि होती थी। यदि दहेज में प्रेम (देने से हेज) न हो तो उसे परहेज ही अच्छा। पहले न

कोई माँग थी, न देने की बाध्यता। देना व लेना सभी स्वानुशासित था। कोई रुकावट नहीं, पंचायती नहीं, प्रदर्शन नहीं, बातें नहीं।

### आज ‘दहेज’ भयंकर समाज-दानव

आज वही ‘दहेज’ विकृत रूप में भयंकर समाज-दानव बन गया है। आज के दहेज से ‘हेज’ तो जैसे समाप्त ही हो गया। आज दहेज प्रेम और प्रीति को नष्ट करने वाला, व्यक्ति के हृदय को लोभ की प्रवृत्ति से कलुषित कर देने वाला, कोमलता के गुण को मिटाकर क़्रूरता पैदा करने वाला बन चुका है। दहेज के लिए अपमानित कर देना, कष्ट देना और जान तक ले लेना आज का चलन हो गया है। जानलेवा इस व्यापारिक-प्रवृत्ति की समाप्ति होनी चाहिए। शादी-ब्याह के रस्मों-रिवाजों में आमूल चूल परिवर्तन होना चाहिए। कौन करेगा यह परिवर्तन? बन्धुओं! परिवर्तन कराने के लिए कोई बाहर से नहीं आएगा। परिवर्तन दूसरों के द्वारा नहीं होगा। हर व्यक्ति के द्वारा परिवर्तन होगा। देना है बिना प्रदर्शन, प्रीतिपूर्वक, स्वेच्छया दें। लेना है-माँगे बिना जो मिले उसमें संतोष करें।

### ये कितने बैचने? तुम कितने प्रसन्न?

पुस्तकों में कहीं शेखसादी की बात पढ़ी थी। बड़ा विद्वान् था। एक दिन किसी कार्य से जा रहा था। सड़क पर चलते हुए उसने एक भिखारी को देखा। भिखारी की एक टाँग टूटी हुई थी। लकड़ी के सहारे लँगड़ाते हुए भीख माँग रहा था। भिखारी के चेहरे पर प्रसन्नता के भाव थे, जैसे वह बहुत सुखी हो। शेखसादी आश्चर्य में पड़ गया। एक भिखारी होकर माँगते हुए भी तुम में ऐसी मस्ती, ऐसी प्रसन्नता, ऐसा सन्तोष। यहाँ तो सभी धन के लिए चिन्तित एवं भागते-दौड़ते दिखाई देते हैं। लखपति, करोड़पति भी तृष्णा के वशीभूत

हाय-हाय मचाते रहते हैं। निन्याणवें के चक्कर में पड़े ये लोग कितने असन्तुष्ट, बैचेन नजर आते हैं और तुम इतने प्रसन्न।

भिखारी ने कहा-साहब जी ! यह ठीक है कि मैं गरीब हूँ, अपंग हूँ, लाचार हूँ। यह भी ठीक है कि मैं भीख माँगता हूँ, पर मैं यह विचार कर प्रसन्न बना रहता हूँ कि यहाँ हजारों, लाखों लोगों की स्थिति मुझसे भी बदतर है। उनके न हाथ है न पाँव। कुछ अन्धे और बहरे भी हैं तो कुछ गूँगे हैं, बोल नहीं सकते। मेरे तो भाग्य योग से दो कान हैं जिनसे मैं सुन सकता हूँ तथा दो आँखें हैं जिनसे मैं देख सकता हूँ, दो हाथ हैं जिनसे मैं खा-पी सकता हूँ तथा जिन्हें फैलाकर भीख माँग सकता हूँ और कभी मेरे योग्य कार्य मिले तो इन्हीं हाथों से कर भी लेता हूँ। कितना बेहतर हूँ मैं उन लोगों से, फिर भला रोऊँ क्यों ? हँसू क्यों नहीं ? मुझे मेरी स्थिति से सन्तोष है।

बन्धुओं ! उस भिखारी से आपकी स्थिति हजार-हजार गुणा अच्छी है पर क्या उसके जैसा सन्तोष है आपके पास ? शादी-ब्याह, टाणा-टूमणा में थोड़ी-सी कसर रह गई हो तो बहू को ये तो नहीं कहते होंगे आप कि- ‘है काँई थारे बाप कने देवण ने, जिको म्हारे जेड़ा ने दे सके। दियो काँई है थारो बाप ?’ और इससे भी अधिक कटुक, कठोर शब्द आप निकालते तो नहीं ?

**दहेज न माँगने का संकल्प लीजिए-प्रेरणा दीजिए !!!**

दहेज आज के युग का अभिशाप है। ‘माँगना’ आपके मन की राक्षसी-वृत्ति का द्योतक है। आपमें से कितने हैं जो खड़े होकर कह सकते हैं कि हम दहेज की माँग नहीं करेंगे ? जो मिलेगा, लड़की का पिता जो प्रेम-पूर्वक खुशी से अपनी कन्या को देगा, वह हमें स्वीकार है। हम इस विषय में कुछ नहीं कहेंगे। इस तरह कन्याओं के पिता भी संकल्पित हों कि ‘माँग’ करने वाले भिखारियों के घर, लोभी भेड़ियों के घर अपनी बेटी को नहीं देंगे।

आप स्वयं संकल्प लीजिए और दूसरों को भी प्रेरणा दीजिए। दहेज-दानव को जड़मूल से नष्ट करना है तो इस तरह संकल्प लेकर इस बुराई के निकन्दन में सहभागी बनिए। इस कोढ़ जैसे छूत के भयंकर रोग को दूर करने में सचेष्ट बनिए। (अनेक बहिनों व कुछ भाइयों के हाथ जुड़े हुए, आवाज-‘हमारे नियम लिए हुए हैं।’ कुछ ने नियम लेने की स्वीकृति दी)

### स्वानुशासन ही मंगलकारी !

दहेज की तरह ही अनेक और भी विकृतियाँ हैं समाज में। व्यक्ति-विकार ही तो समाज को विकृत करते हैं। विकृतियों को हटाना है तो व्यक्ति को विकृतियों से, विकारों से अलग होना पड़ेगा। व्यक्ति का अपने आपको विकारों से अलग करना, स्वानुशासन है, आत्मा का विनय है, जीवन का धर्म है। इसी से संघ व समाज में आनन्द होता है, इसी से स्व और पर का कल्याण होता है।

आपके भीतर में जो भी बुराइयाँ हैं, अहंकार का भाव है, मायालोभ, क्रोध-मान है उसे आप खुद ही दूर करें, इससे बढ़कर और कोई अच्छा रास्ता नहीं है। जो विनय करेगा, अनुशासन में रहेगा वह सुख-शांति-आनन्द का भागी होगा।



## अहंकार को त्यागें, आत्मानुशासित बनें

(31 जुलाई, 1994 को जोधपुर में दिए गए इस प्रवचन में आत्मानुशासन को अपनाने के साथ अहङ्कार, आडम्बर एवं प्रदर्शन को त्यागने तथा समाजसेवा करने की प्रेरणा मिलती है।)

तीर्थंकर भगवान् महावीर की जिस अन्तिम अनमोल वाणी ने ढाई हजार वर्ष पूर्व सुख का द्वार उद्घाटित किया था, आज भी वह वाणी प्रत्येक प्राणी को सुख-समाधिवान् बनाने में उतनी ही सक्षम, अचूक एवं रामबाण-औषधि है। भगवान् ने दुःखों के निवारण, समस्याओं के समाधान और सुख-प्राप्ति का मन्त्र देते हुए कहा है-

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्मो।

अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ॥

उत्तरा. 1.15 //

आत्मो को वश में है करना, कारण आत्मा ही दुर्दम है।

इस भव परभव में सुख पाता, जो दान्त आत्मा सक्षम है॥

सुख-प्राप्ति एवं दुःखों के नाश के लिए अपना दमन करो, स्व को वश में करो, अपनी आत्मा को नियन्त्रित एवं अनुशासित करो। अपनी आत्मा का, अपने अहं का दमन करना ही दुष्कर है। जो प्राणी जितेन्द्रिय बन दान्त बन जाता है, वह दान्त-आत्मा ही इस लोक एवं परलोक में सुखी बनता है।

## दुःखों का कारण ‘अहं भाव’

दुःखों का एक मात्र कारण है अपने आप पर नियन्त्रण नहीं रखना। जिसने अपनी आत्म-शक्ति पर, स्व-सामर्थ्य पर, अन्तर्निहित कोष पर नियन्त्रण नहीं रखा, वह स्वयं तो दुःखी बना ही है साथ ही उसने अपने परिवार, समाज और विश्व तक को भी दुःखी किया है। विश्व की जितनी भी समस्याएँ आपके समक्ष हैं, उन सबका मूल कारण है-प्राणी का ‘अहं भाव।’ अपने नाम, यश, कीर्ति के लिए प्राणी अपना भान खो देता है और ‘अहं’ में भर कर स्वयं समस्या बन जाता है।

## अहं को त्याग कर समाज के लिए जीएँ

अगर व्यक्ति अपने आपको इस समाज का, इस राष्ट्र का और समस्त जनता का एक पुर्जा मानकर, एक अज्ञ समझकर चले तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी। ऐसे व्यक्ति का हर कदम, हर कार्य, प्रत्येक वचन नपा-तुला आत्म-चिन्तन से जुड़ा तथा पर-हित-चिन्तन से युक्त होगा। मुझे कितना चलना है, कैसी हरकत करनी है, कितनी गति और प्रगति करनी है-इन सब बातों का सोच अर्थात् अपना स्वयं का आकलन समाज के सामने रखकर करना ही समस्याओं का सही निदान है। जब प्राणी का चिन्तन इस दिशा में बढ़ेगा और जीवन-शैली इसी विचार से चलेगी तो समाज में प्रदर्शन की भावना समाप्त हो जाएगी। न बाह्य आडम्बर रहेंगे और न परेशानियाँ पैदा होंगी।

यह सही है कि व्यक्ति यदि पुण्यशाली है तो उसके चाल-चलन, रहन-सहन, खान-पान सभी में उसकी ऋद्धि-सिद्धि झलकेगी। आदमी बुद्धिशाली है तो उसके संभाषण में, उसकी बातों में उसका ज्ञान लक्षित होगा। रूपवान् प्राणी चौबीसों घण्टे किसी एक स्थान में कैद होकर बैठ जाए, यह

मुमकिन नहीं। इतना होते हुए भी व्यक्ति का प्रयत्न यह होना चाहिए कि वह पुण्यार्जित ऋद्धि-सिद्धि का उपयोग समाज के उत्थान में करे, प्राप्त बुद्धि से जन-समस्याओं का समाधान करे और प्राप्त सौन्दर्य में सात्त्विकता का समावेश कर सत्यं शिवं, सुन्दरं की सृष्टि करे।

### बड़े-बड़े धनिक हो गए

क्या तो आपकी सम्पदा है और क्या है आपकी सामर्थ्य। सम्पदा तो थी शालिभद्र जी के पास, पर उस अखूट सम्पदा का जरा भी अहं उनकी आत्मा में नहीं था। उन्हें तो पता ही नहीं कि धन क्या है, व्यापार क्या है? एक अँगूठी गिर गई राजा श्रेणिक की, शालिभद्र जी के घर में और शालिभद्र जी की माता ने उसी नाप की थाल भर कर अँगूठियाँ उनके समक्ष कुछ ही देर में प्रस्तुत कर दी। समय आया तो शालिभद्र जी ने उस देवोपम ऋद्धि-सिद्धि को त्याग कर संयम ले लिया, ‘पर’ पदार्थों की जगह ‘स्व’ का चिन्तन जग गया, आत्म-दमन की, अपने आप पर नियन्त्रण करने की भावना उत्पन्न हो गई और वे क्षणिक सुखों से, सुखाभास देने वाले पदार्थों से विमुख होकर शाश्वत सुख-प्राप्ति की ओर मुड़ गए।

धन-सम्पत्ति थी रीयाँ के सेठ जीवनसिंह जी मुणोत के पास। जोधपुर नरेश पर विपदा पड़ी, धन की कमी हो गई। जरूरत पड़ी राजा को धन की। दीवान जी रीयाँ सेठ के पास गए। देखा वहाँ, जिसके बारे में सुना था कि अरबपति सेठ है, अखूट सम्पदा है-वह सेठ साधारण से कपड़ों में है एवं गोबर बीन रहा है।

बन्धुओं! आपका धन कितना? आपके घर में नौकर कितने? आज थोड़ा सा धनार्जन किया नहीं कि आप नौकर के भरोसे जीने लगते हैं। आपकी चाय नौकर के भरोसे, आपके कपड़ों की धुलाई नौकर के भरोसे, झाड़ू लगाने

से लेकर बिस्तर लगाने तक सारे कार्य नौकर के भरोसे। गन्दगी की सफाई भी करनी है तो मशीन है। क्यों? आपमें अहं है, आप समझते हैं कि मैं बड़ा हूँ, मेरा धन बड़ा है। सेठ जीवनसिंह जी क्या समझते थे? वे समझते थे बड़ा मैं नहीं, समाज बड़ा है, राष्ट्र बड़ा है। मेरा जीवन ऐसा हो कि जिससे समाज के लिए समस्या पैदा न हो। वही बात जो मैंने प्रारम्भ में कही थी कि दमन अपना करो, नियन्त्रण अपने पर करो।

### कंकर नहीं, आँख में काजल बन कर रहिए

मानव! अपने आपका, अपनी इन्द्रियों का, अपने मन का, अपने अहं भाव का, अपने कषाय-भाव का ऐसा दमन कर कि जिससे तू समाज की, मानव-मात्र की आँखों में काजल की तरह रह सके, किसी को खटके नहीं। आँख में कंकर की तरह खटकने वाला मत बन, अन्यथा समस्याएँ ही उत्पन्न करेगा। कंकर तो क्या तिनका भी बन गया, तो खटकेगा ही।

मुणोत जी काजल बन कर समाज की आँखों में शृंगार बने हुए थे। समय आया समाज के लिए कुछ करने का तो स्वर्ण-मुद्रा से भरी गाड़ियों की अन्तहीन पंक्ति खड़ी कर दी, जोधपुर से रीयाँ तक। जोधपुर नरेश तक चकित रह गए-वह सम्पदा, वह स्वर्णराशि देखकर और उससे भी ज्यादा चकित थे वे सेठ के त्याग-भाव को देखकर।

### प्रदर्शन एवं आडम्बर से बचें

उन प्राचीन धनपतियों के जीवन को आप देखिए। क्या भामाशाह के पास धन नहीं था? क्या वे सज-धज कर इन्हें सेंट से नहाकर अपने धन का प्रदर्शन करते थे? क्या कहूँ मैं उनकी शालीन-सम्पदा के विषय में? उनका अर्जन भी नीति का था और विसर्जन भी परहित में था। आज कैसे-कैसे रास्ते हैं धन कमाने के, सुनता हूँ तो आश्चर्य होता है। कमाने की बात छोड़िए, पर

दूसरों से उधार लेकर धन का प्रदर्शन। बँगला उधार के पैसों से, रंगीन टी.वी., कार, फ्रिज, सोफासेट भी उधार की किश्तों पर। थोड़ी-सी भी स्थिती बदली, कहीं धोखा खाया कि सामान और बँगले सब बेचने पड़ते हैं।

अरबों, खरबों की सम्पत्ति वाले वे धनाधिपति समाज के दूसरे भाइयों को खटके नहीं, इस तरह समाज में रहने की सोचते थे। कार्य ऐसा और इस ढंग से करते थे कि अन्य-अन्य व्यक्तियों के लिए समस्या खड़ी न हो। उनकी भावना हर समय यही रहती थी कि मेरा रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा एवं धन खर्च करने का तरीका ऐसा हो कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति उससे निभ सके।

### लोक-व्यवहार को व्यापार मत बनाइए

आज विवाह-शादियों के मामले बड़े जटिल बन गए हैं। गरीब व्यक्तियों के लिए पुत्री की शादी एक समस्या बन गई है। धनिक वर्ग व्याह-शादी में आडम्बर का इतना बखेड़ा करता है कि सामान्य व्यक्ति के लिए वैसा करना दूभर हो जाता है। विवाह तो पहले भी होते थे। आपके पूर्वज बुजुर्ग लोग पुत्र-पुत्री की शादियाँ बड़े व्यवस्थित ढंग से करते थे। किन्तु लोक-व्यवहार को भी आज व्यापार बना दिया गया है। दृढ़ता हो, इच्छा-शक्ति मजबूत हो, आत्मानुशासन हो तो यह सब पुनः परिवर्तित किया जा सकता है।

एक मुसद्दी साहब के लड़के की शादी थी। सम्बन्ध रुणगाँव के एक प्रतिष्ठित घराने में किया था। बारात लेकर धूमधाम से रुण पहुँचे। सब कुछ तय हो गया, पर मुसद्दी साहब ने लड़की वालों से कह दिया-देखिए ! हम अच्छा खाना-पीना पसंद करते हैं। शादी के भोजन में आप आलू-प्याज जरूर प्रयोग में लें, इससे खाना स्वादिष्ट होगा, बाराती सन्तुष्ट होंगे। रुण में तब शादी में जमीकंद के उपयोग का रिवाज नहीं था। लड़की वालों ने कहा-

“यहाँ हमारे समाज में शादी-ब्याह आदि ग्राम-भोजों में आलू, प्याज जैसे जमीकन्द के उपयोग का रिवाज नहीं है। यद्यपि मैं करना चाहूँ तो कर सकता हूँ। मैं इतनी सामर्थ्य भी रखता हूँ कि समाज को जवाब दे सकूँ, पर मैं उसमें सार नहीं मानता, न मैं अपने आपको समाज के अन्य लोगों से बड़ा दिखाना चाहता हूँ। समाज ने रिवाज बनाया है तो मेरे सिर-माथे पर है। मैं जमीकन्द का प्रयोग नहीं करूँगा।”

मुसद्दी ठहरे मुसद्दी। बात पर अड़ गए। एक तो मुसद्दी ऊपर से लड़के वाले, भला नाक नीची कैसे होने देते। बोले- “आप न करें तो भले न करें, हम करेंगे। आलू-प्याज की बोरियाँ अभी मँगवाते हैं, कोई कमी थोड़े ही है।” इस पर लड़की के पिता ने दृढ़ता से कह दिया- “न मैं जमीकन्द का प्रयोग करूँगा और न आपको ही करने दूँगा। मैं समाज की मर्यादा तोड़ने वाला नहीं बनना चाहता।”

### ढोल में पोल न हो

आज परिवार के, समाज के, जाति के, राज्य और राष्ट्र के जो मुखिया हैं, नेता हैं, एम.एल.ए. या एम.पी. हैं- उनके स्वयं के आचरण में कहीं न कहीं कमजोरी है तो उसका प्रभाव अन्य लोगों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। ढोल में यदि पोल है तो समस्याएँ उत्पन्न होंगी ही। मुखिया स्वयं अपने अहं की तुष्टि करना चाहते हैं, खराबी बस यही है। धन को प्रमुखता देकर जिनको आपने मुखिया बनाया है, वे ही जब विपरीत-आचरण में लग जाते हैं तो समस्याएँ उत्पन्न हो ही जाती हैं। कानून बनाने वाले ही जब कानून तोड़ने में लगते हैं तो व्यवस्था कैसे रहेगी ?

### समस्त बुराइयों की जड़ है- अर्थ

समस्या का समाधान है कहाँ ? आप जिनको चुनकर भेज रहे हैं, वे

कल्लखाने खुलवा रहे हैं। एक ओर शराब बन्दी की बात करते हैं तो दूसरी ओर शराब-विक्रय के नए-नए लाइसेंस जारी किए जाते हैं। समस्त बुराइयों की जड़ में है अर्थ, और अर्थ-व्यवस्था बनाए रखने के लिए ही ऐसा किया जा रहा है। आश्चर्य यह है कि इतना सब कुछ कर देने पर भी आर्थिक-स्थिति निरन्तर डावाँ डोल होती जा रही है, बजट घाटे में रहता है और कोष रिक्त। इन मुखिया-लोगों का चिन्तन समाज की तरफ नहीं है। उन्हें अपने अहं, अपने पद, अपनी कुर्सी, अपने नाम, अपने धन की चिन्ता है। वे अपने ‘अहं’, की डेढ़ चावल की खिचड़ी, अलग पकाना चाहते हैं, पर उससे समस्याएँ मिटेंगी नहीं, बढ़ेंगी। दो फोड़े ठीक होंगे तो चार नए उभरेंगे। खराबी खून में है, व्यक्ति के अन्तर में है, उसे साफ करने की आवश्यकता है। खराबी अहंकार वृत्ति की है, खराबी नाम प्राप्ति की चाह में है। यही कारण है कि अपनी झूठी प्रतिष्ठा और नामवरी के लिए व्यक्ति आज समाज को रसातल की ओर धकेल रहा है।

### अहं की जगह समाज के पोषण में लगें

बन्धुओं ! प्राणी जगत् का सबसे बड़ा शत्रु है यह अहंकार। आज मानव-समाज की रग-रग में अहंकार रमा हुआ है। मनुष्य की हड्डी और मज्जा में, खून की एक-एक बूँद में अहंकार बसा हुआ है। यह अहंकार समाज के लिए जहर है। इस जहर को आपको नष्ट करना होगा, अपने अन्दर के अहं को निकाल फेंकना होगा। कार्य सरल नहीं है, बड़ा जटिल, बड़ा मुश्किल कार्य है ‘अहं भाव’ को छोड़ना।

धन से बढ़कर शरीर से बढ़कर इन्द्रियाँ हैं और इन्द्रियों से बढ़कर मन है तथा मन से बढ़कर अहंकार है। अगर आप समाज की समस्याओं का समाधान चाहते हैं तो भामाशाह बनिए, जगदूशाह बनिए, खेमादेदरानी बनिए।

अपने नाम, अपनी प्रतिष्ठा की चाह को मिटा दीजिए। अपने अहं के पोषण की जगह, समाज के पोषण में लग जाइए, फिर एक भी समस्या नहीं रहेगी।

### शिक्षा की दुर्दशा

आप अपने बच्चे को इंग्लिश मीडियम स्कूल में भेजना चाहते हैं, किन्तु नमस्कार मन्त्र एवं विनय का शिक्षण उन्हें नहीं देते। बच्चा अंग्रेजी-माध्यम की किसी प्रतिष्ठित स्कूल में जाए, तगड़ी फीस दे, उसे आप स्टेण्डर्ड समझते हैं। आप भारत में रहकर अपने इन भावी राष्ट्र कर्णधारों के माध्यम से देश में किस संस्कृति को पनपाना चाहते हैं ? जैन होकर, हिन्दू होकर, भारतीय होकर आप सत्य, अहिंसा, करुणा, शील और सदाचार के संस्कारों से बच्चों को क्यों दूर रख रहे हैं ? उन शिक्षा संस्थानों का तो धन्धा है। शिक्षा के इस व्यवसायीकरण के सुनहरे जाल में आप भी उलझते जा रहे हैं। उन शिक्षा-व्यवसायियों को संस्कारों से क्या लेना-देना ? वे उन ब्राह्मणों की तरह हैं, जिनका सिद्धान्त है-‘दूब चाहे तिर, रूपया नारियल धर।’ यह सब क्यों ? क्योंकि आपको अपने पर, अपनी शिक्षा पर अपनी शिक्षा पद्धति पर विश्वास नहीं। जिस दिन आपका अपने पर विश्वास हो जाएगा, अपने आप पर आपका स्वयं का अनुशासन हो जाएगा-इस राष्ट्र को फिर विश्व का गुरु बनने में देर नहीं लगेगी।

### सर्वात्मभाव अपनाएँ

समाज में जो मात्र अर्जन करना जानते हैं, संग्रह करना जानते हैं, वे भला इस देश की संस्कृति की क्या रक्षा कर सकेंगे ? संस्कृति की रक्षा त्याग से, करुणा से एवं प्रेम से होगी। अचम्भा होता है कि कोई-कोई करोड़पति अपने नाम का पत्थर लगाने के लिए बीस लाख देने को तत्पर है, पर अपनी

माँ को दस रुपये देने के लिए ना कर देता है। स्वयं अरबपति है और भाई रोड़पति फिर भी भाई को कुछ भी देना स्वीकार नहीं।

### नाम एवं अहं की भूख को मिटाएँ

जब तक आपके जीवन में नाम की यह भूख एवं अहं का विष-वृक्ष है तब तक समाज में, राष्ट्र में शान्ति आई नहीं, आएगी नहीं। आज जाट, माली आदि जैनेतर जातियों के समाज की संभाए होती हैं तो चाय, चिलम-अमल बन्द करने के निर्णय लिए जाते हैं और आप ओसवालों की, जैन समाज की सभा में शोर होता है वाद-विवाद होता है, किन्तु ठोस निर्णय नहीं हो पाते। समाज के उत्थान का चिन्तन बनाइए, अपने आपको समाज का एक अंग, एक इकाई मानकर चलिए। अपने आपको बीज की तरह मिट्टी में मिल जाने दीजिए, फिर देखिए परिणाम ! एक सुखद भविष्य, एक समृद्ध समाज ! आपने केवल अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ी अपने आप को बनाए रखने की कोशिश ही की तो कुछ होने वाला नहीं है। आप समाज के अंग हैं, समाज के अंग रहेंगे।

आडम्बर, नाम, वाहवाही की कामना आदि को त्याग कर अन्तर की तरफ 'मुड़ना होगा। आत्मशक्ति को उजागर करने के लिए अपने अहंकार का दमन करना होगा। आप अपने आप का दमन कर अहंकार पर विजय प्राप्त करेंगे तो सुख, शान्ति व आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।



## परीषह से साधक का समत्व-परीक्षण

(उत्तराध्ययन के द्वितीय अध्ययन 'परीषह-प्रविभक्ति' को आधार बनाकर आचार्य श्री द्वारा 3 अगस्त 1994 को जोधपुर में प्रदत्त प्रवचन।)

तीर्थंकर भगवान् महावीर की जिस अन्तिम अनमोल वाणी उत्तराध्ययन-सूत्र में मोक्ष-मार्ग के चार उपायों ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का विवेचन चल रहा है। ज्ञानादि गुणों के लिए साधक के जीवन में प्रथम आवश्यकता है 'विनय' की। विनय, नम्रता, स्वानुशासन ज्ञानादि के आधार रूप माने गए हैं। हमने इस सूत्र में पढ़ा-विनय धर्म का मूल है।

### प्रतिकूलता में आज्ञाराधन

अनुकूलता में इच्छानुसार आज्ञा मिलने पर विनय-भक्ति पूर्वक आज्ञा-पालन में तत्पर रहने वाले अनेकानेक व्यक्ति मिल जाएँगे, पर प्रतिकूलता में आशाओं-इच्छाओं के विपरीत आदेश-पालन करने का कभी अवसर प्राप्त हो तो बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है। वस्तुतः प्रतिकूलता में भी आज्ञा की आराधना की जाए तभी विनय में निखार आता है, पात्रता आती है, व्यक्तित्व प्रशंसनीय बनता है।

आज्ञा-पालन, विनयाचरण और स्वानुशासन में प्रतिकूलताओं का आना बड़ी बात नहीं है। बाधाएँ, कष्ट, प्रतिकूलताएँ सर्वत्र पद-पद पर मुँह

बाएँ खड़ी रहती है। सुयोग्य और विनयवान् साधक इन बाधाओं को पार करता है और कष्टों को समझाव पूर्वक सहन करता है।

लौकिक और पारलौकिक, स्वार्थपूर्ण और परमार्थपूर्ण सभी तरह के कार्यों में प्रतिकूलताएँ आती हैं। प्राणी इन प्रतिकूलताओं में यदि विषम बने तो साधना के पथ से पतित होने का खतरा भी बन जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र में ‘विनय-श्रुत’ नामक प्रथम अध्ययन के पश्चात् ‘परीषह-प्रविभक्ति’ नामक द्वितीय अध्ययन में साधक की साधना के पथ में आने वाले कष्टों को, उपस्थित होने वाली प्रतिकूलताओं को परीषह के नाम से पुकारा है और ऐसे बावीस परीषहों का विवेचन किया है।

### परीषह क्या है ?

‘परीषह’ शब्द का अर्थ करते हुए शास्त्रकारों ने कहा है- ‘परि समन्तात् सह्यते इति परीषहः।’ अर्थात् चारों ओर से आने वाली प्रतिकूलताओं को, आने वाले कष्टों को सहन करना परीषह है। यहाँ प्रश्न खड़ा होता है कि क्या प्रत्येक प्राणी के जीवन में आने वाले कष्ट, उपस्थित प्रतिकूलताएँ परीषह हैं? यदि ऐसा है तो फिर प्रत्येक प्राणी को परीषह युक्त मानना होगा, अर्थात् प्रत्येक प्राणी परीषह वाला गिना जाएगा; क्योंकि जीवन-जगत् में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो कष्ट सहन नहीं करता हो।

### क्या वेदना को सहना परीषह है ?

नरक के नारकी हों या तिर्यञ्च के पक्षु-पक्षी, विकसित जीवों में मनुष्य हों या देवता, सभी तो कष्ट सहते हैं। कहीं अधिक कष्ट हैं, कहीं कम। नारकी-जीवों का तो हर-पल, हर-क्षण कष्टों, पीड़ाओं, बाधाओं एवं प्रतिकूलताओं की पराकाष्ठा वाला है। नरक-भूमि अति उत्कट उष्णता-

शीतलता आदि लिए हुए होती है। इतनी भयंकर उष्णता कि लोहे का गोला भी पल भर में गल जाए। शीतलता ऐसी कि शरीर शुष्क होकर भिद जाए। वहाँ की भूमि का स्पर्श तीक्ष्ण शूल और तलवार की धार जैसी भयंकर वेदना देने वाले स्पर्श के तुल्य होता है। उनके शरीर सद्यः प्राणहारी महाभयंकर रोगों से युक्त होते हैं। इतना सब प्रकृति जन्य होने के साथ नारकी को परमाधामी देवों द्वारा ऐसी भयंकर वेदनाएँ दी जाती हैं कि जिन्हें सुनकर ही हमारे रोंगटें खड़े हो जाते हैं।

### क्या प्रतिकूलताएँ परीष्फह हैं ?

तिर्यज्च गति के पशु-पक्षी प्राकृतिक एवं मानवीय पराधीनता के अधीन कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। इनका खाना-पीना, चलना, खड़े रहना आदि सभी कार्य उनकी अपनी इच्छा से नहीं, अपितु उनके मालिक की इच्छानुसार होते हैं। खाने की इच्छा है, पर खूँटे से बाड़े में बँधा खड़ा है। अब कोई आकर खोले और बाड़े से बाहर निकाले या फिर वहीं लाकर कोई चारा डाले, तभी वह भूख शान्त कर सकता है। चलते-चलते थक गया, विश्राम की इच्छा है, पर विश्राम कहाँ ? मालिक को जरूरी काम है, अतः दौड़ना ही है अन्यथा डण्डे की चोट से दौड़ना पड़ेगा। सर्दी, गर्मी, वर्षा से बचना है पर इसके लिए भी मालिक पर निर्भर है वह। कितनी पीड़ा, कितने कष्ट कितनी प्रतिकूलताएँ ?

क्या नारकी और तिर्यज्चों की ये प्रतिकूलताएँ परीष्फह की परिभाषा में आती हैं ? नहीं।

### सन्तान के लिए माता के कष्ट भी परीष्फह नहीं हैं

मानव के कष्टों का भी कहाँ पार ? जितने मानव उतने कष्ट, एक-एक मानव के अनेक-अनेक कष्ट। अज्ञान और मोह के जाल में फँसा-मानव,

जैसा दुःख सहन करता है, शायद अन्य प्राणियों की तुलना में वह अधिक ही होगा। एक माता के ममतामय जीवन को ही लीजिए। अपनी सन्तान के लिए कितनी-कितनी पीड़ाएँ गर्भकाल से उसके सज्जान बनने तक वह सहती है। उसकी ममता, उसका वात्सल्य भाव ही उसे यह सब सहन करने को विवश करता है। गर्भ के और जन्म के कष्ट तो अवर्णनीय हैं। बच्चा जब पैदा होता है तो उसके अशुचि-निवारण, स्तन-पान, सुरक्षा आदि के लिए वह क्या-क्या नहीं करती? स्वयं गीले में सोती है पर सन्तान को सूखे बिस्तर पर सुलाती है। स्वयं सर्दी सहन करती है पर उसे यत्न से ओढ़ाकर रखती है। चलते-चलते माँ थक जाती है, पर बच्चे को बिलखता-बिसूरता देख उसे गोदी में उठा कर चलने लगती है। एक हाथ दर्द करने लगता है, तो दूसरा हाथ बदल लेती है। दोनों हाथ थक जाएँ तो कंधे पर बिठा कर चल देती है। स्वयं कितना ही कष्ट उठा लेती है, पर सन्तान को रंच मात्र भी तकलीफ नहीं होने देती। ममता के वशीभूत एक माँ यह जो कष्ट उठाती है, क्या उसे परीष्ह कहा जाए? नहीं यह भी परीष्ह नहीं है।

### **कष्ट तो मजदूर भी सहन करते हैं**

एक मजदूर एवं छोटा व्यवसायी श्रावक और श्रमण से अधिक कष्ट भोगता है। मैंने देखा है, आपने भी देखा होगा। भरी गर्मी में बिना जूते, कंधे पर पोट रखकर आवाज लगाते चलता है-‘साड़ी लो, फेन्सी साड़ी।’ ठेले वाले, खोमचे वाले, सर्दी-गर्मी वर्षा को सहन करते हैं, भूख-प्यास सहन करते हैं। लोगों के तिरस्कार भाव को सहन करते हैं, क्यों? इसलिए कि इसी से उनका पेट पलता है, स्वार्थ सिद्ध होता है। आजीविका के लिए परिवार और पेट की आवश्यकता पूर्ति के लिए वह बड़े से बड़ा कष्ट उठाता है। क्या उसका कष्ट उठाना भी परीष्ह में शामिल है? नहीं।

## देव-दुर्लभ मनुज-भव

आपने और हमने मानव-जन्म पाया है। नरक और तिर्यज्च में नहीं गए इस बार। असह्य, अनंत कष्टों से, पराधीनता से छुटकारा पा गए हैं। कहना होगा कि हमारी, आपकी आत्मा ने पूर्वभवों में कुछ ऐसे शुभ कर्म किए हैं, पुण्योपार्जन किया है और धर्म का यत्किञ्चित् सहारा लिया है जिसके परिणामस्वरूप यह देव-दुर्लभ अनमोल मानव-जन्म मिला है। आज आप जो शास्त्र-वचन, आगम-वाणी, धर्म-प्रवचन सुन रहे हैं, उसे कभी न कभी पूर्व भवों में जीवन में उतारा है, तभी तो आप नारकी के नेरिये नहीं हैं, तिर्यज्च के पशु, पक्षी, कीट आदि नहीं हैं। आप हैं मानव। चार परम दुर्लभ अंगों में से एक दुर्लभ अंग मनुष्य देह के प्राप्तकर्ता।

### मानव-भव का लक्ष्य क्या ?

मानव-जन्म तो मिल गया, पूर्वकृत शुभकर्मों के परिणाम से। अब आगे के लिए क्या सोचा है ? क्या इसी तरह अज्ञान में पड़े रहकर, असंयत बनकर पीड़ाएँ एवं कष्ट उठाना चाहते हैं ? क्या आपने अपने जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारित किया है ? आत्मचिन्तन कर आत्मधर्म का लक्ष्य बना लीजिए। बिना लक्ष्य के जीवन घाणी के बैल की तरह समय बर्बाद करने वाला होता है। सैंकड़ों मील यात्रा कर ले, चक्र लगा ले, पर रहता वहीं का वहीं है। यहीं हाल बिना आचरण के आपका भी होने वाला है। अनेक कष्टों को सहन करके भी चौरासी का चक्कर नहीं मिटा पाएँगे। अनन्त-अनन्त जन्मों से भयंकर प्रतिकूलताएँ सह रहे हैं, दारुण पीड़ाओं से दग्ध हो रहे हैं, पर कर्मों की निर्जरा नहीं हो पाती।

### मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः

तप, अभिग्रह, काया-क्लेश आदि परीषह नहीं हैं। व्रत, नियम,

प्रत्याख्यान भी परीषह नहीं हैं। महाब्रत और पाँच-समिति व तीन-गुप्ति भी शास्त्र की भाषा में परीषह नहीं। अब समझना यह है कि परीषह है क्या ? तत्त्वार्थ-सूत्र में आचार्य उमास्वाति ने इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा है- “मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः।” (तत्त्वार्थसूत्र, 9.8) अर्थात् धर्म-पालन करते समय आने वाले कष्टों को धर्मपथ से विचलित हुए बिना निर्जरा के लिए धर्मबुद्धि से सम्भाव पूर्वक सहन करना ही परीषह है। धार्मिक-कार्यों के प्रति संकल्पित मन को दृढ़ रख कर संकल्प को सम्यक् प्रकार से निभाना और स्वीकार किए हुए ब्रतों को, नियमों को, मर्यादाओं को निभाते हुए, उनका पालन करते हुए अनायास जो कष्ट, बाधाएँ, प्रतिकूलताएँ उपस्थित हों, उन्हें सम्भाव पूर्वक सहन करने का नाम है ‘परीषह’।

### परीषह में आगार कमजोरी का घोतक

आप भगवान् की वाणी सुन रहे हैं, पर उसे कितना उतारते हैं अपने जीवन में ? सुनते तो बहुत कुछ हैं पर सीखते क्या हैं ? ब्रत, नियम, प्रतिज्ञा और प्रत्याख्यान ग्रहण करने में भी आप अपनी चतुराई दिखा ही देते हैं। मजाल है थोड़ा सा भी कष्ट कहीं से आ जाए। रास्ता ही नहीं रखते आप कष्टों को आने का। प्रतिज्ञा पालन में पसीने की बूँद भी झलक जाए, तो फिर प्रतिज्ञा ही क्या ली? आपके सामने ज्यों ही किसी प्रतिज्ञा को लेने का अवसर आता है, सबसे पहले छूट सामने रखेंगे। आप अणगार नहीं हैं, सागारी-श्रावक हैं अतः आगार वाली बात पहले। आपको सामायिक का नियम करवाया जाता है तो आप कहते हैं- “बाबजी ! बारे माँये (बाहर-भीतर) की छूट, हाज-माँद (स्वस्थ-अवस्थ) की छूट, कोई कारण विशेष बणजा तो छूट, कदेई भूल जाऊँ तो दूसरे दिन कर लूँ ला।” मेरी समझ में नहीं आता कि यह छूट है या कमजोरी।

## आपत्काले मर्यादा नास्ति

परीषह का वास्तविक रूप है-जो प्रतिज्ञाएँ साधक ने स्वीकार कर रखी हैं, उनमें यदि प्रतिकूलताएँ आती हैं तो उन्हें समझावपूर्वक सहन करते हुए अपनी प्रतिज्ञाओं का अविचलित रूप से पालन करना। चाहे जैसी स्थिति हो, चाहे जितनी बाधाएँ आएँ पर प्रतिज्ञाओं से अलग नहीं हटना। आपका सूत्र निराला है। प्रतिज्ञा ग्रहण तो करते हैं, पर इस सूत्र के साथ कि ‘आपत्काले मर्यादा नास्ति।’ मर्यादा कहाँ तक ? जब तक पसीना न झलके, अड़चन न आवे, सुख-समाधि बनी रहे।

### परीषह-जय : श्रमणवर्ग के लिए

शास्त्रकारों, ज्ञानियों, विद्वानों के अब तक प्रकाशित साहित्य में, आगम-भाष्य-टीका-चूर्णि आदि में परीषह-जय का उल्लेख या निर्देश साधु के लिए तो मिलता है, पर श्रावक के लिए नहीं। उपासकदसांग और नन्दीसूत्र में श्रावक-साधना में आई बाधाओं के लिए ‘उपसर्ग’ शब्द ही मिलता है। प्रतिक्रमण-सूत्र में, व्यवहार में तथा वर्णित साहित्य में भगवान् द्वारा हुई देशना में साधुओं के बावीस परीषह की तो गणना है, पर श्रावकों के कष्ट, प्रतिकूलताओं आदि की गणना व नामोल्लेख परीषह के नाम से कहीं नहीं मिलता। व्यवहार में यही कहा जा सकता है कि परीषहों का उल्लेख केवल संयमी साधकों, श्रमण-श्रमणियों के लिए ही हुआ लगता है।

### क्या मिथ्यादृष्टि भी परीषह-जयी ?

एक विचारधारा में अभवी अथवा मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थानवर्ती) को भी अपनी ली हुई मर्यादा के निर्वहन में जो कष्ट-पीड़ा, वेदना, प्रतिकूलता होती है और वह उसे सहन करता है तो परीषह मान लिया जाता है। उनका कथन है- ‘मर्यादा-पालन का नियम और प्रतिज्ञा के निर्वहन हेतु जो सहन

किया जाए, वह परीषह है।” यहाँ इस धारा के विचारक या मानने वाले सम्यक्त्व को गौण मानकर प्रतिज्ञा-पालन में कष्ट सहन करने को ही परीषह मानते हैं।

### महाब्रती के लिए ही परीषह-जय का उल्लेख

अधिकाँश विचारकों की मान्यता दूसरी है। उनका मानना है कि समकित के साथ महाब्रती ही परिषह-जय का अधिकारी है। कारण बताते हुए वे कहते हैं कि सकाम निर्जरा सम्यक् दृष्टि वाले के ही कही गई है। परीषह-अध्ययन में भगवान् ने स्पष्ट कहा है-

“इह खलु बावीं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सोचा, नच्चा, जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्ययंते पुट्ठो नो विहन्नेज्ज।”

### अब्रती के कैसा परीषह

परीषह में सहन करने और प्रतिकूलताओं को जीतने की बात है। ली हुई प्रतिज्ञा को निभाने के लिए संकट कौन सहन करेगा? मिथ्यादृष्टि की तो व्रत-चारित्र-प्रतिज्ञा-नियम जैसी कोई बात ही नहीं है। जो अब्रती है, उसके कैसा व्रत! इस दृष्टि से ‘परीषह’ चारित्र-आत्माओं के लिए ही उपयुक्त लगता है।

### समभाव से परीषह-जय

क्या चारित्र लेने मात्र से कष्ट परीषह बन जाते हैं? नहीं। हर चारित्रात्मा परीषह सहन कर सके, यह कहाँ मुमकिन है? लिए हुए व्रतों में कष्ट आने पर, प्रतिकूलताएँ आने पर जो अपनी क्षमता और समभाव कायम रखते हैं, स्थिर रहते हैं-वे ही परीषह-जयी होते हैं।

जो साधक ऐसा नहीं कर पाते उनके लिए प्रभु फरमाते हैं- ‘सोच्चा, नच्चा, जिच्चा अर्थात् सुनकर, जानकर और पुनः पुनः अभ्यास द्वारा परीषहों से परिचित हो, उन्हें जीतें। जीतना भी सम्भाव से है। परीषह आने पर पश्चात्ताप या ग्लानि आदि के भाव न आने दें, बल्कि सम्भावपूर्वक सहन कर विजेता बनें।

### सम्भाव से सहें : निर्जरा करें

हमारी और आपकी आत्माएँ आज तक अनन्त संसार में भटक रही हैं। इसका यह भटकना तभी बन्द होगा जब एकान्त निर्जरा-भाव होगा। अपने में खेद नहीं करते हुए-दूसरों में दोष नहीं निकालते हुए सम्भाव से सहन कर निर्जरा करने से ही आत्मकल्याण संभव है। राग-द्वेष के परिहार की भावना से कष्टों को जीतने का लक्ष्य रखेंगे तो कर्मों की निर्जरा कर सुख-शान्ति व आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।



# **सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

## **के विविध सेवा सोपान**

**जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन**

**जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन**

**अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद् का संचालन**

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के  
रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

**सम्पर्क सूत्र**

**मंत्री**

**सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

**दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार**

**जयपुर-302003 (राजस्थान)**

**दूरभाष : 0141-2575997**

**फैक्स : 0141-4068798 ई-मेल : sgpmandal@yahoo.in**